श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

(६३)

समस्थान सूत्र षष्ठ स्कन्ध

रचयिता

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

सम्पादक

महावीरप्रसाद जैन बैङ्कर्स सदर मेरठ

प्रकाशक

मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

२०१ पुलिस स्ट्रीट सदर मेरठ (उ० प्र०)

१ जनवरी १९५८

[एक आना प्रति रुपया कमीशन
८ प्रति खरीदने पर १ प्रति भेंट]

न्योछावर दो रुपया

प्रिय स्वाध्याय प्रेरी पाठक-वृन्द ।

आपकी सेवा में सहजानन्द शास्त्र माला का ६३ वां पुष्प सम-स्थान सूत्र का षष्ठम स्कन्ध समर्पित किया जा रहा है।
इसमें २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, अक्षरों का जिनमें समावेश होता है। उनके सूत्र बनाकर अध्यात्म योगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज ने महान उपकार किया है इनमें बहुत से उपयोगी मंत्रो का भी संकलन आ गया है। जिनका जप कर आप कल्याण कर सकेंगे। हम पाठक बृन्दो से प्रेरणा करेंगे कि वे उससे पूर्व के स्कन्धो को मंगा कर अध्ययन करें जिससे बहुत से नवीन भेदो का ज्ञान होगा इसमे संशोधन बहुत सावधानी से किया है। फिर भी कोई प्रेस वालों के छपाई के कारण अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक महोदय सुधार कर पढे तथा हमे सूचित करें ताकि आगामी संस्करण में शुद्धि की जा सकें।

मैनेजर सहजानन्द शास्त्र माला,

आपका सेवकः पं० बिहारीलाल जैन शास्त्री;

आत्म कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

—ॐ—

हूँ स्वतन्त्र निश्चंत निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥

१

मैं वह हूँ जो हैं भगवान। जो मैं हूँ वह हैं भगवान॥
अन्तर यही ऊपरी जान। वे विराग यहां राग वितान॥

२

मम स्वरुप है सिद्ध समान। अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान॥
किन्तु आशबश खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अजान॥

३

सुख–दुख दाता कोइ न आन। मोह राग रुष दुखकी खान॥
निजको निज परको पर जान। फिर दुखका नहिंलेश निदान॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम। विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम॥
राग त्यागि पहुँचू निजधाम। आकुलता का फिर क्या काम॥

५

होता जगत स्वयं परिणाम। मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम। 'सहजानन्द' रहूं अभिराम॥

❀ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ❀

सप्तमस्थानसूत्र षष्ठ स्कन्ध

❀ छब्बीसवां अध्याय ❀

सूत्र—सम्यक्प्रकृतिसंज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदाः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणदानलोभभोगोपभोगवीर्योन्तरायाः देशघातिप्रकृतयः ॥१॥

अर्थ—कर्मकी उन प्रकृतियोंको जो जीवके स्वाभाविक गुणोंका पूर्णतः घात न करते हुए एक देश रूपसे घात करती हैं उन प्रकृतियोंको देशघाति प्रकृति कहते हैं। ऐसी देश घाति प्रकृतियोंकी संख्या छब्बीस है। प्रकृतियोंके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) सम्यक्त्व प्रकृति नामक देशघातिप्रकृति (२) संज्वलन क्रोध (३) संज्वलन मान (४) संज्वलन माया (५) संज्वलन लोभ (६) हास्य (७) रति (८) अरति (९) शोक (१०) भय (११) जुगुप्सा (१२) पुंवेद (१३) स्त्रीवेद (१४) नपुंसकवेद (१५) मतिज्ञानावरण (१६) श्रुतज्ञानावरण (१७) अवधिज्ञानावरण (१८) मनःपर्ययज्ञानावरण (१९) चक्षुर्दर्शनावरण (२०) अचक्षुर्दर्शनावरण (२१) अवधिदर्शनावरण (२२) दानान्तराय (२३) लाभान्तराय (२४) भोगान्तराय (२५) उपभोगान्तराय (२६) वीर्यान्तराय।

सूत्र—अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा अकषायश्च कषायमार्गणाः ॥२॥

अर्थ—उन क्रोधमानमायादिरूप परिणामोंका नाम कषाय है जो आत्माके गुणोंका घात करते है। इनको कषाय इसलिये भी कहते है कि ये आत्माके साथ कर्म सम्बन्ध होनेमें लाखके समान चिक्कणता पैदा करके परतन्त्रताके बन्धनमें कारण होती हैं। इसकी विवेचना करने वाले अधिकारका नाम कषाय मार्गणा है। कषाय मार्गणाके छब्बीस भेदोंके

नाम इस प्रकार हैं.—

(१) अनन्तानुबन्धी क्रोध (२) अनन्तानुबन्धी मान (३) अनन्तानुबन्धी माया (४) अनन्तानुबन्धी लोभ (५) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (६) अप्रत्याख्यानावरण मान (७) अप्रत्याख्यानावरण माया (८) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (९) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१०) प्रत्याख्यानावरण मान (११) प्रत्याख्यानावरण माया (१२) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१३) संज्वलन क्रोध (१४) संज्वलन मान (१५) संज्वलन माया (१६) संज्वलन लोभ (१७) हास्य नोकषाय (१८) रति (१९) अरति (२०) शोक (२१) भय (२२) जुगुप्सा (२३) पुंवेद (२४) स्त्रीवेद (२५) नपुंसक वेद (२६) अकषाय।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिविकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥३॥

अर्थ—इस सूत्रमे जीवसमासोके छब्बीस भेद गिनाये गये हैं। उनके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् (जल) पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर बनस्पति पर्याप्त (१८) बादर बनस्पति अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म बनस्पति पर्याप्त (२०) सूक्ष्म बनस्पति अपर्याप्त (२१) विकलेन्द्रिय पर्याप्त (२२) विकलेन्द्रिय अपर्याप्त (२३) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (२४) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (२५) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (२६) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—मिथ्यात्वानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभाःहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा मोहनीयतृती-

य सत्त्वस्थानप्रकृतयः ॥४॥

अर्थ—इसमें मोहनीय कर्मके तीसरे सत्त्व स्थानकी प्रकृतियाँ गिनाई गई हैं। प्रकृतियोंकी संख्या छब्बीस हैं और नाम उनके अलग अलग इसप्रकार हैं:—

(१) मिथ्यात्व नामक प्रकृति (२) अनन्तानुबन्धी क्रोध (३) अनन्तानुबन्धी मान (४) अनन्तानुबन्धी माया ५) अनन्तानुबन्धी लोभ (६) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (७) अप्रत्याख्यानावरण मान (८) अप्रत्याख्यानावरण माया (६) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१०) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (११) प्रत्याख्यानावरण मान (१२) प्रत्याख्यानावरण माया (१३) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१४) संज्वलन क्रोध (१५) संज्वलन मान (१६) संज्वलन माया (१७) सज्वलन लोभ (१८) हास्य (१६) रति (२०) अरति (२१) शोक (२२) भय (२३) जुगुप्सा (२४) पुंवेद (२५) स्त्रीवेद (२६) नपुंसकवेद।

सूत्र—मिथ्यादर्शनालिगितमतिविनीतस्वभावताप्रकृतिभद्रतामार्दवार्जवसमाचारसुखप्रज्ञापनीयतावालुकाराजिसदृशरोषप्रगुणव्यवहारप्रायताऽल्पारंभपरिग्रहसंतोषाभिरतिप्राण्युपघातविरमणप्रदोषकर्मनिवृत्ति-स्वागताभिभाषणामौखर्यप्रकृतिमधुरतालोकयात्रानुग्रहौदासीन्याननुसूयाऽल्पसंक्लेशतागुरुदेवतातिथिपूजासंविभागशीलताकपोतपीतलेश्योपश्लेष-धर्मध्यानमरणकालताजातीया मनुष्यायुराश्रव हेतवः ॥५॥

अर्थ—चारों आयुमें सबसे श्रेष्ठ, प्राणी जिसमें रहते हुए अपनी साधनाके बल पर उत्कृष्टतम पदको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखता हो तथा अपने निकृष्ट क्रिया कलापोंसे नीचतम नरकादि कुगतियोंमें जो गिरनेकी योग्यता रखता हो ऐसी यदि कोई आयु है तो वह है मनुष्य आयु। इस आयु सम्बन्धी कर्म परमाणु जिनकारणोंसे आकृष्ट होकर आत्मासे सम्बद्ध हो मनुष्यायुकी प्राप्तिमें सहायक होते हैं उनकी संख्या मोटे रूपमें छब्बीस है। नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) मिथ्यादर्शन-आलिङ्गितमति नामक मनुष्यायु आश्रवहेतु

(२) विनीतस्वभावता (३) प्रकृतिभद्रता (४) आर्दव (५) आर्जव (६) समाचारसुखप्रज्ञापनीयता (७) बालुकासदृशरोष (८) प्रगुण व्यवहारप्रायता (९) अल्पआरम्भ (१०) अल्प परिग्रह (११) संतोषाभिरति (१२) प्राण्युपघातविरमण (१३) प्रदोषकर्मनिवृत्ति (१४) स्वागताभिभाषण (१५) अमौखर्य (१६) प्रकृतिमधुरता (१७) लोकयात्रानुग्रह (१८) औदासीन्य (१९) अननुसूया (२०) अल्पसंक्लेशता (२१) गुरुपूजा (२२) देवतापूजा (२३) अतिथिसंविभाग शीलता (२४) कपोत लेश्या-उपश्लेष (२५) पीतलेश्या उपश्लेष (२६) धर्मध्यानमरणकालता।

(१) मिथ्यादर्शन आलिङ्गित मतिः—अनतत्त्वश्रद्धानकी ओर बुद्धिका झुकाव बने रहना, उस ओर क्रियात्मक सहयोग प्रदान करना और प्रेम, और आदरभाव हृदयमे रखते हुए मिथ्यात्व संवर्धक आयोजनोमें रुचि, लगन और तत्परतासे लगे रहना मिथ्यादर्शन आलिगितमति कहलाती है। इसमे अतत्त्वश्रद्धा वाली भावनायें होती हुई भी उनमे हठग्राहिता या एकान्तरूपसे चिपके रहनेकी मति नहीं रहती अतः ऐसी–मति भी मनुष्यायु के आश्रवकी कारण हो जाती है।

(२) विनीत स्वभावताः—स्वभावमे विनम्रताका होना, पदके अनुकूल वृद्ध, सम और बाल वयस्कोके प्रति आदर साम्य और वत्सलताके भावोंका होना, गर्व या अहंकारकी भावनाओसे मनका मुक्त होना, विनीत स्वभावता है।

(३) प्रकृतिभद्रताः—प्रकृतिका भद्र या सरल एव निश्छल होना।

(४) मार्दव गुणः—घमंड प्राणीको मानके शिखरपर चढ़ा औंधे मुंह गिरा देता है और दुर्गतियोमे अनेक दुःखोको भोगना पड़ता है ऐसा सोच त्याग मानको देना मार्दव गुण है।

(५) आर्जवगुणः–माया कपट या छल हृदयस्थित गुत्थियोंको बजाय सुलझानेके उलझाने वाला है और प्राणी पतनकी ओर पैर बढ़ाता जाता है ऐसा सोच मनवचन कायकी चेष्टाओमे सरलता लाना आर्जव गुण है।

(६) समाचारसुखप्रज्ञापनीयताः–प्रदर्शनकी भावनासे रहित प्राणियोसे

क्षेमकुशलके समाचार पूंछना, उनके दुःख सुखमें संवेदना हर्षादि भाव व्यक्त करना समाचार सुखप्रज्ञापनीयता कहलाती है। यह भी मनुष्यायुके कारणोंमें से एक है।

(७) बालुकाराजिसदृश रोषः—एक तो गुस्सेसे अपनेको बचाये रखना और यदि आजाय तो उसकी तीव्रता या स्थिरता उसी ढंगकी होनी चाहिये जैसी रेतीके बीचमें खिची हुई लकीर होती है। अर्थात् रेतके बीचमें खिची हुई लकीर गहरी नहीं होती और यहां वहां बहावके कारण जल्दी ही पट जाती है तथा कुछ समय बाद उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। इसी तरहका जल्दी ही शान्त हो जाने वाला क्रोधका होना बालुकासदृश रोष कहलाता है।

(८) प्रगुणव्यवहारप्रायता:—मनमें कोई गुड़ी या गांठ न रखते हुए सरल सत्य एवं निःसंकोच व्यवहार प्रगुणव्यवहारप्रायताके अन्तर्गत आता है।

(९) अल्प आरम्भः—अपनी और अपने पारिवारिक जनोंकी आजीविका जितने आरंभ से हो जाती है उतने ही आरंभको कर अपने आत्मपरिणामोंको निराकुल रखना, ज्यादा आरंभ और झंझटोंमें न फंसना अल्पआरंभ कहलाता है। इससे परिणाम शांत रहते हैं और यह नियम है कि अच्छे परिणामोंसे अच्छी गति मिलती है अतः इससे मनुष्यायुका आस्रव होता है।

(१०) अल्प परिग्रहः—अपनी इच्छाओंको सीमित कर ज्यादा वैषयिकसाधनों, रुपये पैसे, विभवादि के बटोरनेमें न लगे रहना अल्प परिग्रह कहलाता है।

(११) संतोषाभिरतिः—"संतोषं परमं धनम्" को दृष्टिमें रखते हुए संतोष धारणकी ओर अपने आकृष्ट करना संतोषाभिरति कहलाती है।

(१२) प्राण्युपघातविरमणः—प्राणीके प्राणोंकी हिंसा न हो जाय, उसे आघात या ठेस न पहुँच जाय इस प्रकार सदय भावोंसे युक्त होते हुए अपने आपको प्राणिवधसे दूर रखना प्राण्युपघात विरमण कहलाता है।

(१३) प्रदोषकर्मनिवृत्तिः—रात्रिके समय जीव जंतुओंका संचार बहुत ज्यादा बढ़ जाता है ऐसा सोच कर जीव रक्षाकी दृष्टिसे रात्रिके समय धन्धा (जीवघातक-भट्टी आदि सम्बन्धी) न करना प्रदोष कर्म निवृत्ति अथवा रात्रिके समय भोजन बनाना, खाना पीना आदि क्रियाओंका न करना यह भी इसके अन्तर्गत है।

(१४) स्वागताभिभाषणः—अपने घरपर आये हुए व्यक्तिके प्रति हर्ष, स्नेह, और शिष्टता पूर्ण शब्दोंके साथ स्वागत क्रियाको करना, पदके योग्य सन्मानादि प्रदान कर उसके प्रति ग्राह्य भावको व्यक्त करना यथा योग्य शब्दोंमे क्षेमकुशलके समाचारादि पूंछना स्वागताभिभाषण कहलाता है।

(१५) अमौखर्य—सभ्यता और शिष्टतासे रहित जो कुछ भी अच्छे बुरे भद्दे शब्द मुंहमें आये उनको बकने लग जाना, वेलगाम हो बहुत बकवास करना मुखरता कहलाती है। तथा उसके अभावका नाम अमौखर्य है। इसके अपनानेपर व्यक्ति अपने वचनोंको संयमित कर लेता है और आवश्यकता पड़नेपर ही शिष्टता पूर्ण शब्दोंमे वचनालापादि क्रियाओंको करता है।

(१६) प्रकृतिमधुरताः—स्वभावमें कटुता, परुषता और निर्दयताकी वृत्तिको दूर करते हुए मधुर भावनाओंसे उसे ओतप्रोत रखना प्रकृतिमधुरता कहलाती है।

(१७) लोकयात्रानुग्रह—सामाजिक समुन्नति, देशिकसमृद्धि एवं धार्मिक प्रभावनाओंके कार्योंमें सहयोग देना उसमे अनुग्रह बुद्धिका रखना लोकयात्रानुग्रह कहलाता है। इसमे समाजधर्म-पालनको भी कारण बतलाया है।

(१८) औदासीन्य—संसारसे ममत्व हटा कर ऐन्द्रियिक विषयोंसे उदासीन होना, धन धान्य; दासी दास आदि मे पाई जाने वाली अधिकार एवं स्वामित्वकी भावनाका परित्याग करके निस्पृह वृत्तिसे जीवन यापन करना औदासीन्य कहलाता है।

(१६) अननुसूया:—असूया और अनुसूया पर्यायवाची शब्द हैं। इनका अर्थ होता है परकी वृद्धि देख मनमे ईर्ष्या या द्वेषकी भावनाका पैदा होना, इसके होनेसे प्राणीका पतन होता है जबकि उसका अभाव अनेक सुखोंका दायक है। ईर्ष्या द्वेष आदिकका न पाया जाना अननुसूया कहलाता है।

(२०. अल्पसंक्लेशता:—जब तक आत्मा कर्मबंधनसे बद्ध हो, संसारमें निवास कर रही है तब तक संक्लेश, वेदना, आधि, व्याधि आदिका सम्पर्क भी सुनिश्चित है। संक्लेश वेदनादिके उदय आनेपर मनमें शांति रखते हुए उसे सहन करना, उस विकलताके कारणको हंसते २ सहन करते हुए पारकर जाना अल्पसंक्लेशता कहलाती है।

(२१) गुरुपूजा:—गुरुका साधारणतया अर्थ गुणोसे, वयसे, अनुभवसे वृद्ध माता पिता शिक्षक आदि होता है, लेकिन सच्चे अर्थों में गुरु वही है जो परम अपरिग्रही होते हुए आत्मसाधनामें सतत लगा रहता है। वह स्वयंके उद्धारमे लगा रहता हुआ अपने भक्त जनोको भी उद्धार मार्गका निर्देशन करता है। इसतरह सामान्य और विशेष गुरुजनोंमे पूज्य बुद्धि रखना गुरुपूजा कहलाती है।

(२२) देवतापूजा:—अष्टादश दोषोसे रहित परम वीतरागी, केवलज्ञानसे सम्पन्न, हितकारी मार्गका उपदेश प्रदान करने वाले जिन कहलाते हैं वेही सच्चे देवता हैं उनमे पूज्य बुद्धि रखना देवतापूजा कहलाती है। इससे आत्मा स्वयंमे देवत्वका अनुभवन करनेकी योग्यतासे सम्पन्न हो जाता है।

(२३) अतिथिसंविभाग-शीलता:—जिसके आगमनकी कोई तिथि निश्चत नहीं ऐसे समागत पाहुने या उत्तम मध्यमादि पात्रोंको पदके अनुकूल, सन्मान, क्रिया आदि करके भोजनादिक कराना अतिथिथिसंविभाग-शीलता कहलाती है। इससे मनुष्यायुके कारणभूत कर्मपरमाणुओंका आश्रव होता है।

(२४) कपोतलेश्योपश्लेष:—कपोत लेश्याके अनुरूप विषय क्रोधादि

परिणामोंका होना, वैसे परिणामोसे युक्त होते हुए संसारके चक्करमें घूमते रहना।

(२५) पीत लेश्योपश्लेषः—पीत लेश्यामे जैसे परिणाम होते हैं उनके अनुरूप परिणामोसे युक्त हो संसारके कार्योंमें लीन बने रहना पीतलेश्योपश्लेष कहलाता है।

(२६) धर्मध्यानमरणकालता:—मरणका काल (समय) समीप आनेपर शुभधर्मध्यानरूप परिणामोसे युक्त हो प्राणोको छोड़ना धर्मध्यानमरणकालता कहलाती है। इन उपरिलिखित कारणोसे तथा इन्हीं सदृश अन्यभी कारणोसे मनुष्य आयुका आश्रव होता है।

सूत्र—औदयिकौपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकसान्निपातिकौदयिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकपारिणामिकसान्निपातिका औपशमिकक्षायिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकाः क्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौ क्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिक औदयिकौपशमिकक्षायिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिका औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातकौ औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिक औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिका औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिका औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकः सान्निपातिकभावाः ॥६॥

अर्थ—सान्निपातिकभावके द्वारा उन आत्मीय भावोको ग्रहण किया जाता है जो मिले हुए हो। जीवके स्व तत्त्व पांच हैं:—

(१) औपशमिक, (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक (५) पारिणामिक। इनके संयोगजन्यभावों को सान्निपातिक भाव कहते है ऐसे भावोंकी संख्या छब्बीस है, नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) औदयिक-औपशमिकसान्निपातिकभाव (२) औदयिकक्षायिक सान्निपातिकभाव (३) औदयिकक्षायोपशमिक सान्निपातिकभाव (४) औदयिकपारिणामिक सान्निपातिकभाव (५) औपशमिक–क्षायिक सान्निपातिकभाव (६) औपशमिकक्षायोपशमिक सान्निपातिकभाव (७) औपशमिकपारिणामिक सान्निपातिकभाव (८) क्षायिकक्षायोपशमिक सान्निपातिकभाव (९) क्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (१०) क्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (११) औदयिकौपशमिकक्षायिकसान्निपातिकभाव (१२) औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकभाव (१३) औदयिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (१४) औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकभाव (१५) औदयिकक्षायिकपारिणामिक सान्निपातिकभाव (१६) औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (१७) औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकभाव (१८) औपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (१९) औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (२०) क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिकभाव (२१) औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (२२) औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिकभाव (२३) औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव (२४) औदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपान्निपातिकभाव (२५) औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकभाव (२६) औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव।

(१) औदयिक-औपशमिक सान्निपातिक भाव:—कर्मके उदय तथा उपशमसे जो मिला हुआ भाव पैदा होता है वह इस कोटिका होता

है। जैसे मनुष्यगत्यापन्न उपशम सम्यक्त्व भाववाला जीव।

(२) औदयिक-क्षायिक-सान्निपातिक जीवभाव—वे भाव इसके अन्तर्गत आते हैं जो कर्मके उदय तथा क्षय से पैदा होते हैं। जैसे मनुष्य क्षीणकषायवाला भाव।

(३) औदयिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीवभाव—वे भाव जो कर्मके उदय और क्षयोपशमसे मिश्र रूपमे पैदा होते हैं, औदयिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीव-भाव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य-मतिज्ञानीभाव।

(४) औदयिकपारिणामिकसान्निपातिक जीवभावः—वे मिश्ररूप जीवके परिणाम जो कर्मोंके उदय तथा परिणामसे पैदा होते हैं, औदयिक-पारिणामिक-सान्निपातिक जीवभाव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य-जीवत्व-भाव।

(५) औपशमिकक्षायिक सान्निपातिक जीवभाव—कर्मोंके उपशम तथा क्षयसे उत्पन्न होने वाले मिले हुए परिणाम औपशमिकक्षायिकसान्निपातिक जीवभाव कहलाते हैं। जैसे उपशान्तलोभी होते हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टित्व।

(६) औपशमिकक्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव—उन मिश्र दशापन्न जीवके परिणामोको इस नामसे पुकारते हैं जो कर्मोंके उपशम और क्षयोपशमसे होते हैं। जैसे उपशान्तमानवाला होता हुआ आभिनिबोधक (मतिज्ञानादि) ज्ञानी।

(७) औपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभावः—कर्मोंके उपशम और परिणामसे उत्पन्न होनेवाले जीवके मिले हुए परिणाम हैं। जैसे उपशान्तमायावाला होता हुआ भव्यत्व रूप परिणाम।

(८) क्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीवभावः—कर्मोंके क्षय और क्षयोपशमसे पैदा होनेवाले मिले हुए परिणाम इस कोटिमें आते हैं। जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रुतज्ञानी।

(९) क्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकजीवभावः—कर्मोंके क्षय

और परिणामसे पैदा होने वाले मिले रूप परिणाम क्षायिकपारिणामिक-सान्निपातिकजीवभाव कहलाते हैं। जैसे क्षीणकषाय वाला भव्यत्व रूप परिणाम।

(१०) क्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक भावः—कर्मोंके क्षायोपशम तथा परिणामसे पैदा होने वाले मिले रूप परिणाम इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे अवधिज्ञानी जीव।

(११) औदयिक-औपशमिक-क्षायिक सान्निपातिक जीवभावः—कर्मोंके उदय उपशम और क्षयसे उत्पन्न होने वाले जीवके मिले रूप परिणाम इस नाम वाले होते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तमोह क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप परिणाम।

(१२) औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव-भावः—कर्मोंके उदय उपशम और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले जीव के मिले हुए परिणामों को इस नाम से पुकारते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तमानकषायी वाग्योगी रूप परिणाम।

(१३) औदयिक-औपशमिक-पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मोंके उदय उपशम और परिणामसे उत्पन्न होनेवाले जीवके मिले हुए परिणाम इस कोटिमें आते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तक्रोधी भव्यत्व रूप परिणाम।

(१४) औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीवभावः—ऐसे भाव जो कर्मोंके उदय, क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं तथा मिले हुए होते हैं वे भाव इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे मनुष्य क्षीणकषायी श्रुतज्ञानी।

(१५) औदयिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिक जीवभावः—कर्मोंके उदय क्षय और परिणामके निमित्तसे होने वाले मिलेहुए भाव इस नामसे पुकारे जाते हैं। जैसे मनुष्य क्षीणदर्शनमोही जीवत्व रूप मिश्रपरिणाम।

(१६) औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिक जीव-

भाव—जिनके होनेमे कर्मोके उदय, क्षयोपशम और परिणामके निमित्तकी आवश्यकता होती है ऐसे भाव इस भेदके अन्तर्गत आते हैं। जैसे मनुष्य मनोयोगी जीवत्व रूप परिणाम ।

(१७) औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीवभाव—इसके अन्तर्गत उन भावोंको समाविष्ट किया जाता है जिनके उत्पन्न होनेमे कर्मोंके उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी आवश्यकता होती है तथा जो मिले हुए होते हैं। जैसे उपशान्तमानी क्षीणदर्शनमोही काययोगी रूप परिणाम।

(१८) औपशमिकक्षायिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—वे भाव जिनके होनेमे कर्मोंके उपशम, क्षय, और परिणामकी जरूरत होती है तथा जो मिले हुए होते हैं, इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे उपशान्तवेदी क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्पन्न जीवत्व रूप परिणाम।

(१९) औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—जिनके होनेमे कर्मोंके उपशम, क्षयोपशम और परिणामके निमित्तकी आवश्यकता होती हैं ऐसे मिश्ररूप भाव इसके अन्तर्गत आते हैं जैसे उपशान्तमानी मतिज्ञानसम्पन्न जीवत्व रूप भाव ।

(२०) क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव—वे भाव जो कर्मके क्षय, क्षयोपशम और परिणामके निमित्तसे मिश्र रूप होते है वे इस कोटिमे आते हैं। जैसे क्षीणमोही पञ्चेन्द्रिय जीवत्व रूप भाव।

(२१) औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिक जीवभावः—वे मिश्ररूप परिणाम जिनके होनेमे कर्मोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशम और परिणामकी जरूरत होतीहै वे इस नाम वाले होते हैं। जैसे उपशान्तलोभी क्षीणदर्शनमोही पंचेन्द्रिय जीवत्व रूप भाव।

(२२) औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—ये मिश्ररूप भाव कर्मोंके उदय, क्षय, क्षयोपशम और परिणामसे पैदा होते है। जैसे मनुष्य क्षीणकषायी मतिज्ञानी भव्य-

रूप परिणाम ।

(२३) औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव—उन भावोंको इसमें सम्मिलित किया जाता है जो मिश्ररूप होते हुए कर्मोंके उदय, उपशम, क्षयोपशम और परिणामके निमित्तसे होते है। जैसे मनुष्य उपशान्तवेदी श्रुतज्ञानी जीवत्व रूप परिणाम ।

(२४) औदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिक जीव-भाव—उन मिश्र भावोंको इसमें सम्मिलित किया जाता है जो कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और परिणामके निमित्तसे होते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तरागी क्षीणदर्शनमोही जीवत्व नामक भाव ।

(२५) औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीव-भाव:—कर्मों के उदय, उपशम क्षय और क्षयोपशमके निमित्तसे होने वाले मिश्र भावोंको औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक जीवभाव कहते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तमोही क्षायिकसम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी ।

(२६) औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपा-तिक जीवभाव:—उन भावोंको इसमें सम्मिलित किया जाता है जिनके होनेमें कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम और परिणामके निमित्त-की जरूरत होती है। ऐसे मिश्र रूप परिणाम होते है। जैसे मनुष्य उपशान्तमोही क्षायिक सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय जीवत्व रूप परिणाम ।

इस तरह ये छब्बीस सान्निपातिक भाव हैं। इनका सम्बन्ध जीव-से है। यों भी कह सकते है कि ये जीवके स्व तत्त्व या असाधारण भाव हैं।

सूत्र—गर्भाधानप्रीतिसुप्रीतिधृतिमोदप्रियोद्भवनामकर्मवहिर्यानिनिषद्या-न्नप्राशनव्युष्टिचौललिपिसंख्यानोपनीतिव्रतचर्याव्रतावतारविवाहवर्णलाभ-कुलचर्यागृहीशिताप्रशान्तितागृहत्यागदीक्षाद्यजिनरूपतामौनध्यानसमाधि-मरणक्रियाः संस्काराः ।

अर्थ:—जीवके जीवनको सच्चे अर्थोंमें जीवन सिद्ध करनेके

लिये पूर्व पुण्य, सत्कुल, सज्जाति आदि जहां कारण हैं वहीं संस्कारोंका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है जीव (मानव) रूपी जौहरी जीवन जवाहरको संस्कारोंकी सांणपर घिसता है, काटता छांटता है। वह चमक उठता है और श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होजाता है। संस्कारोंकी संख्या छब्बीस है, नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैः—

(१) गर्भाधान नामक संस्कार (२) प्रीति (३) सुप्रीति (४) धृति (५) मोद (६) प्रियोद्भव (७) नामकर्म (८) बहिर्यान (९) निषद्या (१०) अन्नप्राशन (११) व्युष्टि (१२) चोल (१३) लिपिसंख्यान (१४) उपनीति (१५) व्रतचर्या (१६) व्रतावतार (१७) विवाह (१८) वर्णलाभ (१९) कुलचर्या (२०) गृहीशिता (२१) प्रशान्तता (२२) गृहत्याग (२३) दीक्षाद्य (२४) जिनरूपता (२५) मौनाध्ययन (२६) समाधिमरण नामक संस्कार।

(१) गर्भाधाननामक संस्कार.—गृहस्थाश्रमके सेवन करने वाले दम्पति (स्त्री पुरुष) का, विषयानुरागकी तीव्राभिलाषाके बिना केवल संतान-प्राप्तिकी दृष्टिसे समागमके पहिले, जो प्रथम रजस्वला हुई ऐसी स्नान की हुई स्त्रीको मुख्य कर गर्भाधानके पूर्व भगवान अरहंतदेवकी पूजाके द्वारा मंत्रपूर्वक जो विधिविधान या संस्कार किया जाता है उसे गर्भाधानसंस्कार कहते हैं।

(२) प्रीति नामक संस्कार.—गर्भाधानके तीसरे महीनेमे तोरण व दो पूर्ण कुंभकी स्थापनादि क्रिया करते हुए प्रीति नामकी क्रिया की जाती है।

(३) सुप्रीति नामक संस्कारः—दिनो दिन गर्भकी वृद्धि होते हुए जब पांचवा महीना आये तब अरहन्त देवकी पूजादि द्वारा विधि विधान कर आनन्द मानना सुप्रीतिसंस्कार कहलाता है।

(४) धृतिनामक संस्कार.—सातवें महीनेमे भी सुप्रीति क्रियाके समान पूजा आनन्दादि करना धृतिसंस्कार कहलाता है।

(५) मोद नामक संस्कारः—गर्भवतीका चित्त खिन्न न हो, गर्भ

की भली भांति पुष्टि और वृद्धि होती रहे तथा धर्मका विस्मरण न हो जाय इसलिये उपरिलिखित संस्कारोंके समान ही नवमें महीनेमें भी पूजा, आनन्द, उत्सवादि मनाना मोद संस्कार कहलाता है। इसमें गर्भिणीको आभूषण आदि पहिनाये जाते हैं। उसकी रक्षाके लिये कंकणसूत्र बांधा जाता है। इसके शरीरपर गात्रिकाबंध नामकी क्रिया भी की जाती है।

(६) प्रियोद्भवनामक संस्कार:—जब गर्भस्थित शिशु अपनी अवधिको समाप्त कर जन्म ले लेता है तब यह संस्कार किया जाता है। इसीका दूसरा नाम जातकर्म है। इसमें अनेक अवान्तर क्रिया कलापोंको करना पड़ता। उन्हें भी शास्त्रानुसार शास्त्रविज्ञ पुरुषोंके द्वारा कराना चाहिये।

(७) नामकर्म नामक संस्कार:—नवप्रसूत शिशु जब बारह दिनका हो जाय तब या बारहवे दिन अरहन्तदेव आदि की पूजा कर विधिविधान सहित नवजात शिशुका नाम रखना चाहिये। नाम सुन्दर, प्रशंसनीय, और वंश वृद्धिकारक होना चाहिये। इसके लिये घटपत्र विधिका आश्रय लिया जा सकता है।

(८) बहिर्यान नामक संस्कार:—इसके बाद नवजात शिशु दूजके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त होता हुआ दो तीन या चार माहका हो जाय तब शुभ दिनमे तुरही आदि मांगलिक द्रव्य वाद्योंके साथ बच्चेको प्रसूतिघरसे निकालना बहिर्यानसंस्कार कहलाता है। इस क्रियाके समय जो भाई बन्धु आदि पारिवारिक जन एवं परिचत स्नेही मित्र आदि जन उपस्थित हों उन्हें अपने अनुरूप भेंट देना चाहिये। इस वित्तको, जब बालक बालिग हो जाय तब उसे दे देना चाहिये।

(९) निषद्या नामक संस्कार:—बालकको लम्बी चौड़ी शय्या पर, मांगलिक क्रियाओंको करते हुए, बिठलाना निषद्या संस्कार कहलाता है।

(१०) अन्नप्राशन नामक संस्कार:—जब शिशु बढ़ कर आठ नौ

मासका हो जाय तब भगवानकी पूजा कर के अन्न खिलाना चाहिये इसको अन्नप्राशन क्रिया कहते है।

(११) व्युष्टि नामक संस्कार.—जब बच्चा पूरा एक वर्षका हो जाय तब व्युष्टि नामक क्रिया की जानी चाहिये। इसी को वर्षवर्द्धन या वर्षगांठ भी कहते है। इसमे इष्टमित्रादिको बुला भोजनादि कराया जाता है।

(१२) चौल नामक संस्कार —उपरिलिखित क्रिया या संस्कार के बाद जो पहिले पहिल शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उस्तरेसे बाल कटवा कर मुंडत कराया जाता है उसे चौल सस्कार कहते हैं। इसमे केशमुंडनके बाद स्नान, मुनि आदि गुरु जनोके प्रति बालकसे नमस्कार कराया जाता है। वयोवृद्ध गुरुजन उसे आशीर्वादादि देते है।

(१३) लिपिसंख्यान नामक सस्कार.—जब खेलते कूदते खाते पीते बालक पाचवे वर्षमे प्रवेश करे तो उसे सबसे पहिले अक्षरादिका ज्ञान करानेके लिये, विधिपूर्वक उनका (संख्या वर्णादि का) दर्शन कराना लिपिसंख्यान कहलाता है। इस समय सद्गृहस्थ अपनी शक्तिके अनुसार दान धर्मादि की क्रिया भी करता है।

(१४) उपनीति नामक संस्कार—इसीको जनेऊ या यज्ञोपवीत संस्कार नामक क्रिया कहते है। जब बालक गर्भसे आठवे वर्षमें प्रवेश करे तब उपनीतिसस्कार किया जाता है। इसकी विधि शास्त्रोमे विशेष रूपसे उल्लिखित है।

(१५) व्रतचर्या नामक संस्कार—यज्ञोपवीतधारण के साथ ही साथ अष्ट मूल गुणधारण, सप्तव्यसनत्याग अमद्यत्याग आदि पदके योग्य नियमोका पालन बालकसे कराना व्रतचर्यानामक संस्कार कहलाता है। बालक इन क्रियाओ और नियमोंको अपने अध्ययन काल पर्यन्त करता है।

(१६) व्रतावतार नामक सस्कार—विद्याध्ययन समाप्तिके बाद साधारण व्रतोका पालन करते हुए विशेष व्रतोका परित्याग विधि पूर्वक

कर देना व्रतावतार नामक क्रिया कहलाती है। व्रतधारणके यह रूप यज्ञोपवतीका भी व्रतोंके अवतारणके साथ अवतरण हो जाता है और आभूषण रूप जनेऊको धारण करता है।

(१७) विवाह नामक संस्कार:—अवस्था प्राप्त होने पर योग्य सत्कुलीन कन्याके साथ पाणिग्रहणसंस्कार करना विवाहसंस्कार कहलाता है। इसमें शास्त्रोक्त विधि गृहस्थाचार्य द्वारा कराई जाती हैं। वर और वधूकी विवाहके पूर्व सहमति आवश्यक है।

(१८) वर्णलाभ नामक संस्कार:—इस संस्कारसे बालक अपने पैरोंपर खड़ा होता हुआ स्वतन्त्र सद्गृहस्थ बन जाता है। इसमें पिता रहनेकेलिये मकान; आजीविकादिके लिये धनधान्य सम्पत्ति आदि देता है।

(१९) कुलचर्या नामक संस्कार:—गृहस्थोंके योग्य वह आवश्यक कर्मोंको करते हुए विशुद्धरीतिसे जीविकादि करना कुलचर्या कहलाती है। इसीको कुलधर्म भी कहते हैं जिसका पालन प्रत्येक सद्गृहस्थके लिये जरूरी है।

(२०) गृहीशिता नामक संस्कार:—कुलचर्या नामक संस्कारके अनन्तर गृहस्थको चाहिये कि वह धर्ममें दृढ़ता पैदा करे। जब धर्ममें दृढ़ता पैदा कर वह गृहस्थाचार्यके पदपर आसीन होता है तब गृहीशिता उसे प्राप्त होती है। वह प्रधान बन घरका शासक हो जाता है।

(२१) प्रशान्तता नामक संस्कार:—गृहस्थ जीवनको यापन करते हुए स्वयं योग्य वयप्राप्त पुत्रोंसे युक्त हो जाय तब उनको गृहका भार सौंप स्वयं शान्ति अनुभवनके प्रयत्नमें लग जाना प्रशान्तता क्रिया कहलाती है।

(२२) गृहत्याग नामक संस्कार:—अपनी आत्माको कृतार्थ मान जब गृहस्थाचार्य घर छोड़नेके लिये समुत्सुक होता है तब उसकी घरसे निवृत्त होनेकी क्रियाको गृहत्यागक्रिया कहते हैं। इसमें गृह भार बड़े पुत्रको दिया जाता है, और संतानोंको समझा कर कुछ द्रव्य दिया

जाता है।

(२३) दीक्षाद्य क्रिया (संस्कार) दीक्षा धारणके पूर्व क्षुल्लकके व्रत धारण कर जो कुछ क्रियाये की जाती हैं उन्हे दीक्षाद्य क्रिया कहते हैं।

(२४) जिनरूपतानामकसंस्कार (क्रिया)।—दैगम्बरी पद धारण के पूर्व उसका दीक्षाद्य अवस्थामे भली प्रकारसे अभ्यास कर जिसने वस्त्रादि परिग्रहका परित्याग कर दिया है और जो जैनेश्वरी दीक्षाधारण करता है उसकी क्रियाको जिनरूपता क्रिया कहते हैं।

(२५) मौनाध्ययन नामक संस्कार—जिन दीक्षाको धारण कर जिसने उपवास किया है तथा जो विधिपूर्वक पारणा करता हुआ शास्त्रज्ञानकी समाप्ति पर्यन्त मौनधारण कर पढ़नेमे अपनी प्रवृत्ति रखता है ऐसी क्रिया या प्रवृत्तिको मौनाध्ययन वृत्ति कहते हैं।

(२६) समाधिमरण नामक संस्कार—अपनाये हुए पदकी क्रियाओंका समुचित रीतिसे पालन करते हुए जब अवस्थादिके द्वारा प्रतीत होने लगे कि मृत्युकाल समीप आ रहा, जीवन शेष रहनेकी आशा नहीं के समान है, समागत उपसर्ग, विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि अब प्राण लेकर हीं टलेगे उस समय पूरी सक्रियता, सावधानी और दृढ़ताके साथ व्रत नियमादिका पालन करते हुए अन्तमे सबसे क्षमा याचना और सबके प्रति क्षमाभाव रखते हुए मरणको, बिना आगामी भोगोकी वांछा रखते हुए, शान्ति सहित वरण कर लेना समाधि मरण है।

सूत्र—" ॐ आ आ अं अः सर्वराजाप्रजामोहिनीसर्वजनवश्य कुरु कुरु स्वाहा" इतिगजमदनिवारणनिमित्तः षड् विंशत्यक्षरमंत्रः ॥८॥

अर्थः—छब्बीस अक्षर वाला यह एक ऋद्धि मंत्र है। इसके निमित्तसे मदसे मदोन्मत्त हाथीको वशमें कर तत्सम्बन्धी संकटको हटानेमें सहायता मिलती है, गज सम्बन्धी बाधा टल जाती है। मंत्रके छब्बीस अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं।

"ॐ आं आं अं अः स र्व रा जा प्र जा मो ह नी स र्व जन व श्यं कु रु कु रु स्वा हा"।

सूत्र—"ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय स्वाहा" इति शत्रुस्तमननिमित्तः ॥९॥

अर्थ—यह भी शत्रुको आगे बढ़नेसे रोक लगा देनेमें निमित्त भूत ऋद्धिमंत्र है। छब्बीस अक्षर इसके भी हैं। वे अलग अलग इस प्रकार हैं:—

ॐ न मो भ ग व ते ज य वि ज य मो ह य मो ह य स्तं भ य स्तं भ य स्वा हा।

सूत्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशान्तिव्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा इति सर्वशिरोरोगवारणनिमित्तः ॥१०॥

अर्थः—छब्बीस अक्षरों वाले मंत्रोंमें से एक यह भी है। यह ऋद्धि मंत्र है और सम्पूर्ण-सर्वप्रकारकी शिर सम्बन्धी पीड़ाओं या रोगोको दूर करनेमे (ये) निमित्त होता है। मंत्रोके अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:—

ॐ न मो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं प र ज न शा न्ति व्य व हा रे जयं कु रु कु रु स्वा हा।

❀ सताईसवां-अध्याय ❀

सूत्र—अष्टस्पर्शपचरसपचवर्णाद्विगधसप्तसशब्दस्वराः इन्द्रिय विषयाः ॥१॥

अर्थ—इस सूत्रमे पांच इन्द्रियो के सत्ताईस विषयोंको गिनाया गया है। स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी आठ प्रकारके स्पर्शों रसना इन्द्रिय सम्बन्धी पांच प्रकारके रसों, नेत्र इन्द्रिय सम्बन्धी पांच तरहके वर्णों, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी दो प्रकारकी गंधों और श्रोत्र इन्द्रिय सम्बन्धी सातप्रकारके शब्दस्वरोंको मिलानेसे सत्ताईस प्रकारके इन्द्रियविषय हो जाते हैं। अलग उनके नाम इस प्रकार हैं:—

स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी आठ प्रकारके स्पर्श:—

(१) शीत (ठन्डा) (२) उष्ण (गरम) (३) स्निग्ध (चिकना) (४) रूक्ष (रूखा) (५) गुरु (भारी) (६) लघु (हल्का) (७) मृदु (कोमल) (८) कठोर।

रसना इन्द्रिय सम्बन्धी पांच प्रकारके रस—

(९) मधुर (मीठा) (१०) आम्ल (खट्टा) (११) कटु (कडुआ) (१२) कषायला (१३) तिक्त (तीखा)

नेत्र इन्द्रिय सम्बन्धी पांच प्रकारके वर्ण (रूप)—

(१४) श्वेत (१५) पीत (पीला) (१६) रक्त (लाल) (१७) हरित (हरा) (१८) श्याम (काला)।

घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी-(१९) सुगन्ध (२०) दुर्गन्ध।

कर्णेन्द्रियके विषयभूत सप्त स्वर—

(२१) निषाद (२२) ऋषभ (२३) गांधार (२४) षड्ज (२५) मध्यम (२६) धैवत (२७) पंचम इन्हीं सात स्वरोंके संक्षिप्त (लघु) रूप ष, रे, ग, म, प, ध, नि होते हैं।

सूत्र—मिथ्यात्वज्ञानावरणान्तरायदशकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणतेजसकार्माणस्पर्शरसगंधवर्णस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणाः स्वोदयवध्यमानाः ॥२॥

अर्थः—जिन प्रकृतियोंका बंध अपने उदयकी दशामे होता है ऐसी प्रकृतियाँ स्वोदयबध्यमान कहलाती हैं। वे सत्ताईस हैं और उनके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) मिथ्यात्व प्रकृति (२ से ६) ज्ञानावरणीय की पांच-मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवल ज्ञानावरण। अन्तराय कर्म सम्बन्धी पांच प्रकृतियां (७) दानान्तराय (८) लाभान्तराय (९) भोगान्तराय (१०) उपभोगान्तराय (११) वीर्यान्तराय (१२) चक्षुर्दर्शनावरण (१३) अचक्षुर्दर्शनावरण (१४) अवधिदर्शनावरण (१५) केवलदर्शनावरण (१६) तैजसप्रकृति (१७) कार्माणप्रकृति (१८) स्पर्शप्रकृति (१९) रसप्रकृति (२०) गंधप्रकृति

(२१) वर्ण प्रकृति (२२) स्थिरप्रकृति (२३) अस्थिरप्रकृति (२४) शुभ-प्रकृति (२५) अशुभप्रकृति (२६) अगुरुलघुप्रकृति (२७) निर्माणप्रकृति।

सूत्र—अश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिराद्रापुनर्वसुपुष्याश्लेषामघापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रास्वातिविशाखानुराधाज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठाशतभिषापूर्वभाद्रपदोत्तरभाद्रपदरेवत्यो नक्षत्राणि ॥३॥

अर्थ—ज्योतिष शास्त्रमे सत्ताईस नक्षत्रोंका उल्लेख मिलता है। उनके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) अश्विनी (२) भरणी (३) कृत्तिका (४) रोहिणी (५) मृगशिरा (६) आद्रा (७) पुनर्वसु (८) पुष्य (९) आश्लेषा (१०) मघा (११) पूर्वाफाल्गुनी (१२) उत्तराफाल्गुनी (१३) हस्त (१४) चित्रा (१५) स्वाति (१६) विशाखा (१७) अनुराधा (१८) ज्येष्ठा (१९) मूल (२०) पूर्वाषाढ़ (२१) उत्तराषाढ़ (२२) श्रवण (२३) धनिष्ठा (२४) शतभिषा (२५) पूर्वभाद्रपद (२६) उत्तरभाद्रपद (२७) रेवती।

सूत्र—विष्कुम्भप्रीत्यायुष्मत्सौभाग्यशोभनातिगण्डसुकर्माधृतिशूलगण्डवृद्धिध्रुवव्याघातहर्षणवज्रसिद्धिव्यतीपातवरीयः परिघशिवसिद्धसाध्य शुभशुक्ल ब्रह्मैन्द्रवै धृतयो ज्योतिषियोगाः ॥४॥

अर्थ—इस सूत्र में ज्योतिषसम्बन्धी योगोको गिनाया गया है। इनकी संख्या सत्ताईस है और नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) विष्कुम्भ (२) प्रीति (३) आयुष्मान (४) सौभाग्य (५) शोभन (६) अतिगण्ड (७) सुकर्मा (८) धृति (९) शूल (१०) गण्ड (११) वृद्धि (१२) ध्रुव (१३) व्याघात (१४) हर्षण (१५) वज्र (१६) सिद्धि (१७) व्यतीपात (१८) वरीयान (१९) परिघ (२०) शिव (२१) सिद्ध (२२) साध्य (२३) शुभ (२४) शुक्ल (२५) ब्रह्म (२६) ऐन्द्र वैधृति।

सूत्र—पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता जीवसमासा ॥५॥

अर्थ—जीवसमासोंके कई प्रकारोंमें से सत्ताईस भेदवाला यह

एक प्रकार है। इसके सत्ताईस भेदोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं.—

(१) पृथ्वी पर्याप्त (२) पृथ्वी निर्वृत्यपर्याप्त (३) पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (४) अप् (जल) पर्याप्त (५) अप् निर्वृत्यपर्याप्त (६) अप् लब्ध्यपर्याप्त (७) तेज (आग) पर्याप्त (८) तेज निर्वृत्यपर्याप्त (९) तेज लब्ध्यपर्याप्त (१०) वायु पर्याप्त (११) वायु निर्वृत्यपर्याप्त (१२) वायु लब्ध्यपर्याप्त (१३) वनस्पति पर्याप्त (१४) वनस्पति निर्वृत्यपर्याप्त (१५) वनस्पति-लब्ध्यपर्याप्त (१६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (१७) द्वीन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्त (१८) द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त (१९) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (२०) त्रीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त (२१) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (२२) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (२३) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त (२४) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (२५) पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (२६) पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त (२७) पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त।

सूत्र—मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वे ऽनतानुबन्ध्यप्रत्यानप्रत्याख्यानाख्याना-वरणसज्वलनक्रोधमानमायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंसस्त्री-नपुंसकवेदा मोहनीयद्वितीयसत्त्वस्थानप्रकृतयः ॥६॥

अर्थ— मोहनीय कर्मके सत्ताईस प्रकृति वाले दूसरे सत्त्व- स्थानकी सत्ताईस प्रकृतियां अलग अलग इस प्रकारसे लिखी जावेगी —

(१) मिथ्यात्व प्रकृति (२) सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृति (३) अनन्तानुबन्धी-क्रोध (४) अनन्तानुबन्धी मान (५) अनन्तानुबन्धी माया (६) अनन्तानुबन्धी लोभ (७) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (८) अप्रत्याख्यानावरण मान (९) अप्रत्याख्यानावरण माया (१०) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (११) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१२) प्रत्याख्यानावरण मान (१३) प्रत्याख्यानावरण माया (१४) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१५) सञ्ज्वलन क्रोध (१६) संज्वलन मान (१७) संज्वलन माया (१८) संज्वलन लोभ (१९) हास्य (२०) रति (२१) अरति (२२) शोक (२३) भय (२४) जुगुप्सा (२५) पुंवेद (२६) स्त्रीवेद (२७) नपुंसकवेद।

सूत्र—" ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा" इति सप्तविंशत्यक्षरमंत्रः ॥७॥

अर्थः—सत्ताईस अक्षरो वाला यह मंत्र है। इसके अक्षर अलग अलग इसप्रकार हैं:—

ॐ ह्रीं श्री क्लीं क्रौं स र्व सं क ट नि वा र णे भ्यः सु पा र्श्व य क्षे भ्यो न मो न मः।

सूत्र—"ॐ ह्रीं श्री हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा इति चौरभयनिवारणनिमित्तः ॥८॥

अर्थ·—सत्ताईस अक्षर वाले मंत्रोंमे से यह भी एक है। चोर सम्बन्धी भय और बाधाओंको हटानेमे यह निमित्तभूत है। इसके अक्षर अलग अलग इस प्रकार है:—

ॐ ह्रां श्री हं सः ह्रौं ह्रां ह्री द्रां द्री द्रौ द्रः मो ह नी स र्व ज न व श्यं कु रु कु रु स्वा हा।

अट्ठाईसवां अध्याय

सूत्र—निर्माणागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्‌वासप्रत्येकशरीरत्रसबादरपर्याप्तिशुभसुभगसुस्वरस्थिरादेययशःकीर्तिसाधारणशरीरस्थावरसूक्ष्मापर्याप्त्यशुभदुर्भगदुःस्वरास्थिरानादेयायशःकीर्तयस्तीर्थकरत्वं च नामकर्मणोऽपिण्डप्रकृतयः ॥१॥

अर्थः—नर नारकादि पर्यायोंमे जो आत्माको नर नारकी आदि कहलावे व जो शरीरकी नाना रचनाओंका निमित्त हो उसे नामकर्म कहते हैं। सामान्यतया नामकर्मकी ब्यालीस प्रकृतियां हैं। उनमें कुछ पिण्ड प्रकृतियां हैं और कुछ अपिण्ड प्रकृतियां हैं। इस सूत्रमे अपिण्ड प्रकृतियोंके नाम गिनाये गये हैं। संख्या उनकी अट्ठाईस है और नाम अलग अलग रूपसे इस प्रकार है:—

(१) निर्माण नामक प्रकृति (२) अगुरुलघु प्रकृति (३) उपघात (४) परघात (५) आतप (६) उद्योत (७) उच्छ्‌वास (८) प्रत्येक शरीर (९) त्रस (१०) बादर (११) पर्याप्ति (१२) शुभ (१३) सुभग (१४) सुस्वर (१५) स्थिर (१६) आदेय (१७) यशःकीर्ति (१८) साधारण शरीर (१९) स्थावर (२०) सूक्ष्म (२१) अपर्याप्ति (२२) अशुभ (२३) दुर्भग

है उसे प्रत्येक शरीर प्रकृति कहते हैं।

(९) त्रस नामक नामकर्म प्रकृतिः—जिसके उदयसे द्वीन्द्रियादिक जंगम जीवोमे जन्म हो उसे त्रस प्रकृति कहते है।

(१०) बादर नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे दूसरेको बाधा पहुँचाने वाला तथा अन्यके द्वारा बाधित होनेवाला स्थूल शरीर हो उसे बादर नामक प्रकृति कहते हैं।

(११) पर्याप्ति नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे आत्मा आहार आदि पर्याप्तियोको प्राप्त कर अंतमुहूर्तमे उनकी पूर्णताको प्राप्त कर लेवे उसे पर्याप्ति प्रकृति कहते है।

(१२) शुभ नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर तथा रमणीय हो उसे शुभ नामकर्मप्रकृति कहते है।

(१३) सुभग नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे विरूप आकृति होते हुए भी दूसरे जीव अपनेसे प्रेम करे उसे सुभग नामक नामकर्म प्रकृति कहते है।

(१४) सुस्वर नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे प्राणी (जीव) के ऐसे स्वरकी उत्पत्ति हो जो मनोज्ञ तथा दूसरोको प्रिय लगनेवाला हो उसे सुस्वर नामकर्मप्रकृति कहते है।

(१५) स्थिर नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे दुष्कर उपवास आदि कठिन तपस्याके करते रहनेपर भी अङ्ग उपाङ्गोमे तथा शरीरकी धातु उपधातुओमे स्थिरता बनी रहती हो उसे स्थिर नामक नामकर्म-प्रकृति कहते है।

(१६) आदेय नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे शरीर प्रभासहित हो उसे आदेय नामक प्रकृति कहते हैं।

(१७) यशःकीर्ति नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे प्राणीके पुण्य गुणोका ख्यापन या कीर्तन संसारमे हो उसे यशःकीर्ति प्रकृति कहते है।

(१८) साधारण शरीर नामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे बहुतसे जीवोके द्वारा उपभोग योग्य शरीरकी प्राप्ति हो उसे साधारणशरीर प्रकृति

कहते है। अर्थात् साधारण शरीर नामकर्मके उदयसे एक शरीरमे अनन्त जीव एक अवगाहनारूप होकर रहते है।

(१९) स्थावर नामक प्रकृति·—जिसके उदयसे पृथ्वी, अप्, तेज वायु, वनस्पति रूप एकेन्द्रियोमे उत्पत्ति हो उसे स्थावर नामक नामकर्म प्रकृति कहते हैं।

(२०) सूक्ष्मनामक प्रकृतिः—जिसके उदयसे अन्य जीवोको उपघात न करने वाले शूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति हो तथा जो दूसरोसे न रुके ऐसा शरीर हो उसे सूक्ष्म शरीर कहते है।

(२१) अपर्याप्ति नामक प्रकृति·—जिसके उदयसे पर्याप्तियो की पूर्णता न हो उसे अपर्याप्ति प्रकृति कहते हैं।

(२२) अशुभनामक प्रकृति·— जिसके उदयसे सुन्दर शरीरके होते हुए भी देखने व सुनने वालोको वह अरमणीक लगे याने अवयव सुन्दर न हो उसे अशुभनाम कर्म प्रकृति कहते हैं।

(२३) दुर्भगनामक प्रकृति·—रूपादि गुणोसे युक्त होते हुए भी जिसके उदयसे दूसरोंको शरीरसे अप्रीति हो उसे दुर्भग प्रकृति कहते हैं।

(२४) दु स्वर नामकर्मप्रकृति·—जिसके उदयसे कर्णकर्कश अमनोज्ञ स्वरकी प्राप्ति हो उसे दु स्वर प्रकृति कहते हैं।

(२५) अस्थिर नामक प्रकृति·—जिसके उदयसे शरीरकी धातु उपधातु स्थिर नहीं रहतीं, जिससे थोड़ा सा श्रम करनेसे, उपवासादि करनेसे या जरा सी सर्दी गर्मी लगनेसे ही शरीर म्लान हो जाय, उसमे कृशता आजाय उसे अस्थिर प्रकृति कहते है।

(२६) अनादेय प्रकृतिः—जिसके उदयसे शरीरमे ओजप्रभाकान्ति आदि नहीं हो उसे अनादेय प्रकृति कहते हैं।

(२७) अयशःकीर्ति नामक प्रकृति—जिसके उदयसे संसारमे पापकृत्योंकी चर्चा चले, अपकीर्ति फैले, उसे अयशःकीर्ति प्रकृति कहते है।

(२८) तीर्थंकर नामक नामकर्म प्रकृतिः—जिसके उदयसे अपूर्व प्रभावशाली अर्हन्त पदके साथ धर्मका भी तीर्थप्रवर्तन करनेवाला हो उस प्रकृतिका नाम है तीर्थंकर प्रकृति। ये अठ्ठाईस प्रकृतियाँ हैं जो अपिन्ड प्रकृतियां कहलाती हैं उनमे फिर और अवान्तर भेद नहीं होते।

सूत्र—मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्प्रकृत्यनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलक्रोधमानमायालोभनोकषायाः मोहनीयप्रकृतयः ॥२॥

अर्थ—मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां होती हैं। उनके नाम अलग अलग इसप्रकार हैः—

(१) मिथ्यात्व प्रकृति (२) सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति (३) सम्यक्त्व प्रकृति (४) अनन्तानुबन्धी क्रोध (५) अनन्तानुबन्धी मान (६) अनन्तानुबन्धी माया (७) अनन्तानुबन्धी लोभ (८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (९) अप्रत्याख्यानावरण मान (१०) अप्रत्याख्यानावरण माया (११) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१२) प्रत्याख्यानावरणक्रोध (१३) प्रत्याख्यानावरणमान (१४) प्रत्याख्यानावरण माया (१५) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१६) संज्वलन क्रोध (१७) संज्वलन मान (१८) सञ्ज्वलन माया (१९) संज्वलन लोभ (२०) हास्य नोकषाय (२१) रति नोकषाय (२२) अरति नोकषाय (२३) शोक नोकषाय (२४) भय नोकषाय (२५) जुगुप्सा नोकषाय (२६) पुंवेदनोकषाय (२७) स्त्रीवेद नोकषाय (२८) नपुंसकवेद नोकषाय।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पति–द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥३॥

अर्थः—यह बताया जा चुका है कि जीवसमास कई प्रकारके होते हैं। इस सूत्रमें जीवसमास का वह प्रकार है जिसके कि अठ्ठाईस भेद होते हैं। भेदोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैः—

(१) बादरपृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी इसी प्रकार नामक जीवसमास पद जोड़ लेना

चाहिये। (२) बादरपृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म-पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् "जल" पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादरतेज "आग" पर्याप्त (१०) बादरतेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्मतेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्मतेज अपर्याप्त (१३) बादरवायु पर्याप्त (१४) बादरवायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्मवायु अपर्याप्त (१७) बादरवनस्पति पर्याप्त (१८) बादरवनस्पति अपर्याप्त (१९) सूक्ष्मवनस्पति पर्याप्त (२०) सूक्ष्म-वनस्पति अपर्याप्त (२१) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (२२) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (२३) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (२४) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (२५) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (२६) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (२७) पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (२८) पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्प्रकृतयोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्या-नप्रत्याख्यानावरणसज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा पुंस्त्रीनपुंसकवेदामोहनीयप्रथमसत्त्वस्थानप्रकृतयः ॥४॥

अर्थ—मोहनीय कर्मके प्रथम, अठ्ठाइस प्रकृतिक सत्त्वस्थानकी प्रकृतियां इस सूत्रमे गिनाई गई हैं। उनके नाम अलग अलग क्रमसे इस प्रकार है—

दर्शन मोहनीय कर्म संबंधी तीन प्रकृतियां—(१) मिथ्यात्व प्रकृति (२) सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति (३) सम्यक्त्व प्रकृति, चारित्र मोहनीय कर्म सम्बन्धी पच्चीस प्रकृतिया—(४) अनन्तानुबन्धी क्रोध (५) अनन्तानु-बन्धी मान (६) अनन्तानुबन्धी माया (७) अनन्तानुबन्धी लोभ (८) अप्र-त्याख्यानावरण क्रोध (९) अप्रत्याख्यानावरण मान (१०) अप्रत्याख्याना-वरण माया (११) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१३) प्रत्याख्यानावरण मान (१४) प्रत्याख्यानावरण माया (१५) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१६) संज्वलन सम्बन्धी क्रोध (१७) संज्व-लन मान (१८) संज्वलन माया (१९) संज्वलन लोभ (२०) हास्य

(२१) रति (२२) अरति (२३) शोक (२४) भय (२५) जुगुप्सा (२६) पुंवेद (२७) स्त्रीवेद (२८) नपुंसक वेद ।

सूत्र—अश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिरार्द्रापुनर्वसुपुष्याश्लेषामघापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनिहस्तचित्रास्वातिविशाखानुराधाज्येष्ठामूलपूर्वापाढोत्तरापाढश्रवणधनिष्ठाशतभिषगभिजित्पूर्वभाद्रपदोत्तरभाद्रपदरेवत्यो नक्षत्राणि ॥५॥

अर्थ—ज्योतिष शास्त्र संबंधी अट्ठाईस नक्षत्रोंके नाम इस सूत्र मे गिनाये गये हैं। अर्थात् नक्षत्र अट्ठाईस प्रकारके होते है, नाम उनके अलग अलग इस प्रकार है—

(१) अश्विनी (२) भरणी (३) कृतिका (४) रोहिणी (५) मृगशिरा (६) आर्द्रा (७) पुनर्वसु (८) पुष्य (९) आश्लेषा (१०) मघा (११) पूर्वाफाल्गुनी (१२) उत्तर फाल्गुनी (१३) हस्त (१४) चित्रा (१५) स्वाति (१६) विशाखा (१७) अनुराधा (१८) ज्येष्ठा (१९) मूल (२०) पूर्वापाढ़ (२१) उत्तरापाढ़ (२२) श्रवण (२३) धनिष्ठा (२४) शतभिषा (२५) अभिजित् (२६) पूर्वभाद्रपद (२७) उत्तरभाद्रपद (२८) रेवती। ये अट्ठाईस नक्षत्र, ज्योतिष्क देवोंके भेदोमे से नक्षत्र नामक चौथे भेदके है।

सूत्र—अहिंसासत्याचौर्यब्रह्मचर्यपरिग्रहत्यागमहाव्रतानीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनासमितयः समतावंदनास्तुतिप्रतिक्रमणस्वाध्यायकायोत्सर्गाःस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियविजयाःस्नानत्यागभूमिशय्याचेलक्यकचलु चैक्यभुक्तिदंतधावनत्यागास्थित्याहाराः साधुमूलगुणाः ॥६॥

अर्थ—ससारसे उदासीन, निर्ग्रन्थ अवस्थाधारी मुनि साधु कहलाते हैं। अपने पदमे रहते हुए उन्हे कुछ कर्तव्य कर्मोंका करन आवश्यक हुआ करता है। यदि इनको आचरणमें न उतारा जाय तो साधु साधु नहीं कहला सकता और न उसमे पूज्यता ही आ सकती है। यही कारण है कि इन कर्तव्य कर्मोंकी मूल गुण संज्ञा है। इस प्रकार इन मूल गुणोंकी जिनका कि पालन योगीके लिये जरूरी है,

संख्या अट्ठाईस तथा उनके अलग अलग नाम इस प्रकार है —

पांच महाव्रत-(१) अहिंसा महाव्रत (२) सत्य महाव्रत (३) अचौर्य महाव्रत (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत (५) परिग्रहत्याग महाव्रत, पांच समिति-(६) ईर्या समिति (७) भाषा समिति (८) एषणा समिति (९) आदान निक्षेपण समिति (१०) प्रतिष्ठापना समिति, छह आवश्यक-(११) समता (१२) वंदना (१३) स्तुति (१४) प्रतिक्रमण (१५) स्वाध्याय (१६) कायोत्सर्ग, पंच इन्द्रियविजय-(१७) स्पर्शन इन्द्रियविजय (१८) रसनेन्द्रियविजय (१९) घ्राणेन्द्रियविजय (२०) चक्षुरिन्द्रियविजय (२१) श्रोत्रेन्द्रियविजय, सात स्फुट-(२२) स्नानत्याग (२३) भूमिशय्या (२४) अचेलक्य (२५) कचलुञ्च (२६) एकभुक्ति (२७) दन्तधावनत्याग (२८) स्थित्याहार।

(१) अहिंसामहाव्रत —छह कायके जीवोंकी रक्षा करना तथा रागादिक विकारी भावोंका परिहार कर देना अहिंसा है, उसको पूर्ण रूपसे अपने जीवनमे उतारना अहिंसा महाव्रत है अर्थात् हिंसाका सर्वथा त्याग कर देना अहिंसा महाव्रत है।

(२) सत्यमहाव्रत —ऐसे कर्कश कठोर अप्रिय अप्रशस्त असत्य वचन भी बोलना छोड देना, जिससे कि दूसरेके प्राणोंकाघात होता है, सत्य महाव्रतके अन्तर्गत है। सत्य महाव्रतके धारकको अप्रशस्त एवं प्राणिपीडाकारक असत्य बोलनेका सर्वथा त्याग करना आवश्यक है।

(३) अचौर्य महाव्रत —दूसरेके स्वामित्वमे रहने वाले पदार्थको उसकी विना आज्ञा या स्वीकृतिके ले लेना चोरी है। इसका सर्वथा त्याग करदेना अचौर्य महाव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत —अठारह हजार शीलके भेदों सहित पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्यका परिपालन करना अर्थात् कामका परित्याग कर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

(५) परिग्रहत्याग महाव्रत —धनधान्यादि बाह्यपरिग्रहो व क्रोध-मान माया लोभ आदि अन्तरंग परिग्रहोंसे ममत्वका त्याग कर देना,

उनसे मोह नहीं करना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

(६) ईर्यासमिति—जाते आते समय देखभाल कर दिनके समय अच्छे अभिप्रायसे अच्छे कामके लिये गमनक्रिया करना ईर्यासमिति है।

(७) भाषा समितिः—हित मित प्रिय बचनोंको बोलना भाषा समिति है।

(८) ऐषणा समितिः—उद्गमादि दोषोसे रहित शुद्ध भोजन करना ऐषणा समिति कहलाती है।

(९) आदाननिक्षेपणसमिति—संयम और ज्ञानके उपकरणोंको देख भाल कर उठाना धरना आदाननिक्षेपण समिति कहलाती है।

(१०) प्रतिष्ठापना समितिः—जंतुरहित भूमिमें देख भाल कर मल, मूत्र, कफ आदिको छोड़ना प्रतिष्ठापना समिति है।

(११) समतानामक आवश्यकः—प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल-के समय अपने मन और इन्द्रियका निरोध कर आत्मामें स्थिर हो ध्यान करना समता नामक आवश्यक है। इसे सामायिक आवश्यक भी कहते हैं।

(१२) वंदनानामक आवश्यकः—सामान्य रूपसे भगवानकी स्तुति करना "जयवन्ते रहो" आदि रूपसे किसी तीर्थंकर विशेषके गुणस्तवनमें लगाना वन्दना कहलाती है।

(१३) स्तुति नामक आवश्यकः—चौबीस तीर्थंकरोंके स्तवनमे लगना, उनके यशोगानमें मनको लगाना स्तुति नामक आवश्यक है। इसीको चतुर्विंशतिस्तव भी कहते हैं क्योंकि स्तुतिमे चौबीस भगवान-की स्तुति की जाती है।

(१४) प्रतिक्रमणनामक आवश्यकः— साधुके द्वारा आचरित पंच महाव्रतादिरूप चारित्रमें लगे हुए दोषोंको दूर करनेमें तत्पर रहना, अपने दोषोको आचार्यादिसे प्रगट कर उनका शोधन करना प्रतिक्रमण है।

(१५) प्रत्याख्यान नामका आवश्यकः—आगामी कालके लिये

दोषोका मन, वचन और कायसे परित्याग करना प्रत्याख्यान आवश्यक है।

(१६) कायोत्सर्गनामक आवश्यक—भुजाओंको लम्बा करके तथा दोनों पैरोंके बीचमें मात्र चार अंगुलका अन्तराल रख शरीरको जमीन पर ठूंठया मृतके समान खडे रखना अथवा पद्मासनादि आसनसे निश्चल बैठकर शरीरसे ममत्व छोडना कायोत्सर्ग कहलाता है। इसका आचरण करने पर साधुको हाथ, पैर, शिर, ग्रीवा आंख, भोहों आदि-की क्रियाओंको बन्द कर देना चाहिये। इसका उत्कृष्ट प्रमाण बारह-मासका है, जघन्य अन्तर्मुहूर्तका है। यह दैवसिक, रात्रिक पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक आदि कई प्रकारका है। कायोत्सर्गके समय जिनेन्द्रदेवके गुणोंका चिन्तवन, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, शुक्लध्यान, धर्मध्यान, अनन्त ज्ञानादिचतुष्टय गुणोंकी भावना साधु भाता है।

(१७) स्पर्शनेन्द्रियविजय—सुख और दुःखके कारणभूत वनिता रुई आदिसे उत्पन्न स्पर्शके विषयमें अनभिलापा होना स्पर्शनेन्द्रिय विजय कहलाता है।

(१८) रसनेन्द्रियविजय—पंच प्रकारके रसोंसे युक्त, निर्दोष, प्रासुक, अशनादि चार प्रकारके आहारोंके प्राप्त होनेपर उनमें गृद्धता या लोलुपता आदि न करना रसनेन्द्रिय विजय है। इसमें जिह्वा सबंधी लोलुपतापर विजय प्राप्त की जाती है।

(१९) घ्राणेन्द्रियविजय—मुनिवरोंमें श्रेष्ठ साधुके मूल गुणोंमें जीव या अजीव द्रव्य सबंधी स्वाभाविक या अन्य द्रव्यके संबंधसे उत्पन्न होने वाली गंधपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। अर्थात् इष्ट गंध मिलने पर सुख और अनिष्ट गंध मिलने पर दुःख रूप परिणाम न करते हुए उसपर रागद्वेषादि न करना घ्राणेन्द्रिय विजय है।

(२०) चक्षुरिन्द्रियविजय—सजीव, देव मनुष्यादिकी स्त्रियोंके रूप और अजीव द्रव्य संबधी रूपके विषयमें अभिलापा, राग आदि न करना चक्षुरिन्द्रिय विजय है।

(२१) श्रोत्रेन्द्रियजयः—वीणादिसे तथा मनुष्यादि द्रव्योंसे उत्पन्न होने वाले षड्ज ऋषभ गांधार आदि सप्त स्वरोंसे जन्य शब्दोंके विषयमें निरभिलाषी होना, उनमें रागादिक न करना श्रोत्रेन्द्रिय विजय है।

(२२) स्नानत्यागः—महाव्रतोंके धारणसे पवित्र किन्तु पसीने, धूल आदिसे धूसरित शरीरपर स्नानादि क्रिया न करना स्नानत्याग नामक मूलगुण है।

(२३) भूमिशय्या—थोड़ा सा भी जिसपर विस्तर नहीं है ऐसे स्त्री, पशु, नपुंसकादिसे रहित गुप्त स्थानकी भूमिपर शयन करना, भूमिशय्या नामक मूलगुण है। जिस भूमिपर शयन किया जाय उसका प्राणिरहित होना अवश्य है।

(२४) अचेलक्य नामक मूलगुणः—निर्ग्रन्थ एवं दिगम्बर शरीर को पट, चीवर, कम्बलादि वस्त्रोंसे, मृग व्याघ्रादिसे उत्पन्न होने वाले चर्मोंसे वृक्षादिके वक्कलोंसे अथवा पत्तों आदिसे नहीं ढकना अचेलकत्व नामक मूलगुण है।

(२५) कचलुञ्च नामक मूलगुणः—सम्मूर्च्छन जीवोंकी रक्षा होती रहे, शरीरसे ममत्व कम हो जाय, अपनी परीषह सहनेकी शक्ति का प्राकट्य हो, सर्वोत्कृष्ट तपश्चरणका आचरण हो सके इस दृष्टिसे दूसरे, तीसरे अथवा चौथे मासमें मस्तक एवं मूंछोंके बालोंको घासके समान निस्पृह एवं निर्मम हो उखाड़ डालना केशलोंच नामका मूलगुण कहलाता है।

(२६) एकभुक्ति नामक मूलगुणः—सूर्योदयके तीन घड़ीके बाद तथा सूर्यास्तके तीन घड़ी पूर्वके समयको छोड़ मध्यके समय एक मुहूर्तमें, दो मुहूर्त्तों अथवा तीन मुहूर्त्तोंमें भोजन क्रियाको करना और वह भी एक दफे, उसे एकभुक्ति नामक मूलगुण कहते है।

(२७) दंतधावनत्याग नामक मूलगुणः—संयमके पालन एवं गुप्तिको दृष्टिमें रख अंगुलि, नख, काष्ठकी पतली लकड़ी, (सीक) तिनका, पत्थरकी कोन, वृक्ष छाल आदिसे दांतोंमें लगे हुए मलको दूर

नहीं करना, उन्हें नहीं धोना दन्तधावनत्याग नामक मूल गुण, है। साधु शरीरसे निस्पृह होनेके कारण दन्तधावनकी ओरसे उदासीन रहते है।

(२८) स्थित्याहारनामक मूलगुण —शुद्ध (जीव जन्तु रहित) भूमिके प्रदेशमे, जिसमे साकल आदि न लगी हो अर्थात् बन्द न हो, खुला हुआ हो, दोनो पैरोंके बीचमे चार अंगुलका अन्तराल दे खड़े होकर हाथोकी अञ्जुलिपुटमे आहार लेकर जो साधुका भोजन ग्रहण करना है उसे स्थित्याहारनामक मूलगुण कहते हैं।

सूत्र—औपशमिकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्यचारित्राणि मनुष्यगतिक्रोधमानमायालोभपुंस्त्रीनुपसकवेदाज्ञानासिद्धत्वशुक्ललेश्याजीवत्वभव्यत्वे ऽपूर्वकरणे भावाः ॥७॥

अर्थ—आठवे गुणस्थानका नाम अपूर्वकरण है। उस गुणस्थानमें पाये जानेवाले जीवके असाधारण अपने भावोंमे से अट्ठाईस भावोंको इस सूत्रमे गिनाया गया है। भावोके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं —

(१) औपशमिक सम्यक्त्व नामक भाव (इसीप्रकार आगेके प्रत्येक लिखे जाने वाले नामोके साथ "नामक भाव" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) क्षायिक सम्यक्त्व (३) मतिज्ञान (४) श्रुतज्ञान (५) अवधिज्ञान (६) मन पर्ययज्ञान (७) चक्षुर्दर्शन (८) अचक्षुर्दर्शन (९) अवधिदर्शन (१०) क्षायोपशमिक दान (११) क्षायोपशमिक लाभ (१२) क्षायोपशमिक भोग (१३) क्षायोपशमिक उपभोग (१४) क्षायोपशमिक वीर्य (१५) क्षायोपशमिक चारित्र (१६) मनुष्यगति (१७) क्रोध (१८) मान (१९) माया (२०) लोभ (२१) पुंवेद (२२) स्त्रीवेद (२३) नपुंसकवेद (२४) अज्ञान (२५) असिद्धत्व (२६) शुक्ललेश्या (२७) जीवत्व (२८) भव्यत्व नामक पारिणामिकभाव :

सूत्र—अनिवृत्तिकरणे च ॥८॥

अर्थ—चौदह गुणस्थानोंमे से एक गुणस्थानका नाम अनिवृत्ति-

करण भी है। यह नवमें गुणस्थानका नाम है। जैसे पूर्व सूत्रमें बतलाया है कि आठवें गुणस्थानमे अट्ठाईस भाव पाये जाते हैं वैसे ही उसी नामवाले अट्ठाईस भाव इस गुणस्थानमे भी पाये जाते हैं। अट्ठाईस भावोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:--

(१) औपशमिक सम्यक्त्व (२) क्षायिकसम्यक्त्व (३) मतिज्ञान (४) श्रुतज्ञान (५) अवधिज्ञान (६) मन पर्ययज्ञान (७) चक्षुर्दर्शन (८) अचक्षुर्दर्शन (९) अवधिदर्शन (१०) क्षायोपशमिक दान (११) क्षायोपशमिक लाभ (१२) क्षायोपशमिक भोग (१३) क्षायोपशमिक उपभोग (१४) क्षायोपशमिक वीर्य (१५) क्षायोपशमिकचारित्र (१६) मनुष्यगति (१७) क्रोध (१८) मान (१९) माया (२०) लोभ (२१) पुंवेद (२२) स्त्रीवेद (२३) नपुंसक वेद (२४) अज्ञान (२५) असिद्धत्व (२६) शुक्ललेश्या (२७) जीवत्व (२८) भव्यत्वनामक भाव।

सूत्र—" ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्षसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा" इति प्रेतबाधावारणनिमित्तोऽष्टाविंशत्यक्षरमन्त्रः ॥९॥

अर्थ—अट्ठाईस अक्षरवाला यह ऋद्धिमन्त्र है। इसके निमित्तसे प्रेत सम्बन्धी बाधायें या तकलीफ दूर हो जाती है। मन्त्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

"ॐ न मो भ ग व ती ज या व ती म म स मी हि ता र्थं मो क्ष सौ ख्यं कु रु कु रु स्वा हा"।

सूत्र—" ॐ नमो अट्टे मट्टे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रान्स्तंभय स्तंभय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा" इति शत्रुस्तंभननिमित्तः ॥१०॥

अर्थ:--अट्ठाईस अक्षर वाले मन्त्रोंमें से यह भी एक है। इसके निमित्तसे शत्रुसम्बन्धी भय हट जाता है, वह आगे नहीं बढ़ पाता। जहां रहता है उससे आगे नहीं बढ़ आ पाता। मन्त्रोंके अक्षर अलग अलग रूपसे इस प्रकार हैं:—

"ॐ न मो अ ट्टे म ट्टे क्षु द्र वि घ ट्टे क्षु द्रान् स्तं भ य स्तं भ य र क्षां कु रु कु रु स्वा हा"।

सूत्र—भेरीमुंजमु जमुरलीअलगोजातुरहीभेरीशखमुहचंगनादनफीरीमुहवरसैनाई—भोपूरनसिंग—नेरीवेणीकमलमेंगविनकर्णनगसरमसुरनाश्रृंगपुंगीरवरीशाग्नायूथीगोमुखपंचमसरलायु गाख्यास्तीर्थकृज्जन्मोत्सवे वाद्याः सुषिरप्रसिद्धवादित्रा ॥११॥

अर्थ—पंच कल्याणकप्राप्त जब तीर्थंकरका जन्मसम्बन्धी उत्सव नरनारियोंके साथ ही देवता लोग मनाते हैं, उस समय देव लोग आनन्द मनाते हैं, नाच गान करते हैं साथ ही अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रों (बाजों) को भी बजाते हैं। इस सूत्रमें उन वाद्य यन्त्रोंके नाम गिनाये गये हैं जो बांसुरीके समान छेदवाले होते हैं तथा भगवानके जन्मोत्सवकी पुण्य वेलामें अनेकों देवों द्वारा बजाये जाते हैं। वाद्ययन्त्रोंके प्रकार अट्ठाईस हैं, उनके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं—

(१) भेरी मुंज नामक सुषिरवाद्ययन्त्र (इसीप्रकार आगे और लिखे जाने वाले भेदोंके नामके साथ भी "नामक सुषिर वाद्ययन्त्र" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) मुंज (३) मुरली (४) अलगोजा (५) तुरही (६) भेरी (७) शंख (८) मुहचंग (९) सिंगी (१०) नाद (११) नफीरी (१२) मुहवर (१३) शहनाई (१४) भौपूरन (१५) सिंग (१६) नेरी (१७) वेणू (१८) कमल (१९) मेगविन (२०) कर्ण (२१) नगसरम (२२) सुरनाश्रृंग (२३) पुंगीरवरी (२४) शाखायूथी (२५) गोमुख (२६) पंचम (२७) मरला (२८) युंग।

❀ उनतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—निःशंकितनिःकांक्षितनिर्विचिकित्सामूढदृष्ट्युपगूहनस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनाः शब्दार्थोभयशुद्धिकालविनयोपधानबहुमानानिह्नवाः मनोवचनकायगुप्तीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनासमित्यहिंसासत्याचौर्यब्रह्मचर्यपरिग्रहत्यागमहाव्रता रत्नत्रयाङ्गाः ॥१॥

अर्थ—मानवसे मतलब उस मनुष्यसे नहीं जो अपने जीवनके अमूल्य क्षणोंको ऐन्द्रियिक साधनोंके बटोरनेमें खोता रहता है, किन्तु उस मुमुक्षु, संसारसे भीरु, सच्चे अर्थोंमें मानव कहलाने वाले विवे-

की व्यक्तिसे है जो संसारसे विमुख हो शान्ति सलिलसे समन्वित अध्यात्मसमुद्रमें गोते लगाता है और उसमेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र रूप रत्नोंको खोज निकालनेको चेष्टा करता है।

ये ही रत्न रत्नत्रय कहलाते है। मुमुक्षु मुक्तिमन्दिरके पथपर इनके सहारे बढ़ता है और अन्तमे अपने मंजिले मकसूद (अन्तिम ध्येय) को हासिल कर लेता है। इस रत्नत्रयकी प्राप्तिमे उनतीस बातें सहायक होती हैं। इन्ही को अंग या साधन कहते है। अंगोके नाम इसप्रकार हैं:—

सम्यग्दर्शनके आठ अंग अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) निःशंकित अंग (२) निःकांक्षित अंग (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढदृष्टि (५) उपगूहन (६) स्थितीकरण अंग (७) वात्सल्य अंग (८) प्रभावना अंग।

सम्यग्ज्ञान सम्बन्धी आठ अंगोके नाम इसप्रकार हैं:—

(९) शब्दशुद्धि (१०) अर्थशुद्धि (११) उभय (शब्दार्थ) शुद्धि (१२) काल अंग (१३) विनय अंग (१४) उपधान अंग (१५) बहुमान अंग (१६) अनिह्नव अंग।

सम्यक्चारित्र सम्बन्धी तेरह अंगोके नाम इसप्रकार हैं:—

(१७) मनोगुप्ति (१८) वचनगुप्ति (१९) कायगुप्ति (२०) ईर्यासमिति (२१) भाषासमिति (२२) ऐषणासमिति (२३) आदाननिक्षेपणसमिति (२४) प्रतिष्ठापनासमिति (२५) अहिंसामहाव्रत (२६) सत्यमहाव्रत (२७) अचौर्यमहाव्रत (२८) ब्रह्मचर्यमहाव्रत (२९) परिग्रहत्यागमहाव्रत।

(१) निःशंकित अंगः—जिनेद्र भगवानने जीवादिक सात तत्त्वोंका जैसा विवेचन किया है वह वैसा ही है, उतना ही है, अन्यथा नहीं है ऐसी दृढ़ता और स्थिरताको लिये संदेह रहित जिनवचमें श्रद्धान होनेको निःशंकित अंग कहते हैं। यह सम्यग्दर्शनके अंगोंमें से पहिला और प्रमुख अंग है।

(२) निःकांक्षित अंग—संसार और उसमें पाये जानेवाले इन्द्रिय विषय भोगके साधनोंके स्वरूपको ज्ञात कर, उन्हें निःसार, पापका कारण और क्षणिक मान कर उनसे उदासीन हो जाना, उनकी वाञ्छा न करना निःकांक्षित अंग कहलाता है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग—उत्तम व्रतके पालक, सकलसंयमके धारक साधु आदि सम्मान्य महात्माओंके ऊपरसे मलिन लगनेवाले शरीरके प्रति घृणा या तिरस्कारके भाव न होने देना निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है। इस अंगकी दृष्टि वाला व्यक्ति अंतरंग शरीरपर ध्यान देता है जो रत्नत्रय आदि रत्नोंमें सज्जित रहता है।

(४) अमूढदृष्टि अंग—स्वयंकी विवेक शक्तिको ठीक रखते हुए दुःखोंके कारण भूत मिथ्यात्वादि दुर्मार्गके विषयमें तथा उसमें फंसे हुए या झुके हुए कुमार्गगामियोंकी मनसे अनुमोदना, वचनसे विवेचना और कायसे संवर्धना न करना अमूढदृष्टि अंग कहलाता है।

(५) उपगूहन अंग—जो हित और अहितके विवेकसे रहित हो, व्रत नियमादिके करनेमें असमर्थ हो ऐसे प्राणीके द्वारा यदि रत्नत्रय धर्मके प्रति दोष या अपराध हो जाय तो उसके परिणामको दृष्टिमें रख प्रगट न होने देना, उसे छिपाना और समझाकर उस दोषकी निवृत्ति करा देना उपगूहन अंग कहलाता है। मार्दव क्षमा संतोषादि भावोंके द्वारा अपनी आत्माके शुद्ध स्वभावको निरन्तर वृद्धिकी ओर बढ़ाते रहना भी उपगूहन अंग कहलाता है।

(६) स्थितिकरण अंग—काम, क्रोध, मद, मोह आदिके कारण यदि धर्ममार्गसे च्युत होनेके परिणाम स्वयंके हो रहे हों अथवा कोई दूसरा प्राणी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि रूप धर्ममें चलायमान हो रहा हो तो उसे फिरसे प्रेम युक्त्यादिसे जैसे बने तैसे पुनः धर्ममें स्थापित कर देना, उसमें दृढतासे उसे लगा देना स्थितिकरण अंग कहलाता है।

(७) वात्सल्य अंग—मोक्ष सुखकी सम्पदाके कारणभूत धर्ममें अहिंसादि सद्गुणोंमें तथा उक्त गुणोंसे युक्त अपने सहधर्मियोंके प्रति

माया और छलसे रहित होते हुए उत्कृष्ट प्रेम या वात्सल्यभाव बनाये रखना, उनका यथायोग्य आदर सत्कारादि करना वात्सल्य अंग कहलाता है।

(८) प्रभावना अंगः—प्रभावनाका अर्थ अतिशय प्रगट करना अथवा महिमा फैलाना है। रत्नत्रयके तेजसे अपनी आत्मामे पाये जाने वाले अज्ञान अंधकारको हटाना और दान, तपश्चरण, पंचकल्याणकादि जिनपूजन, विद्याभ्यास आदिके चमत्कारोंसे जिनधर्म और मार्गकी महिमा फैलाना, प्रभावना अंग कहलाता है।

(९) शब्दशुद्धि नामक सम्यग्ज्ञानांगः—शब्द शास्त्र (व्याकरण) के अनुसार अक्षर, पद, वाक्यका पठन पाठन आदरपूर्वक करना शब्दाचार या शब्दशुद्धि कहलाता है। इसीके व्यञ्जनाचार, श्रुताचार, अक्षराचारादि भी नाम हैं।

(१०) अर्थशुद्धिः—प्रसंग संदर्भ आदिको देखते हुए जो यथार्थ शुद्ध अर्थका अवधारण करना है उसे अर्थाचार या अर्थशुद्धि कहते है।

(११) उभयशुद्धिः—शब्द और अर्थ दोनोंके लिहाजसे शुद्ध पठन पाठन करना उभयाचार या उभयशुद्धि कहलाता है। शब्दार्थ-शुद्धि भी यह कहलाती है।

(१२) कालाचारः—गोसर्ग काल (सूर्योदयसे दो घड़ी बादसे लेकर मध्याह्नसे दो घड़ी पूर्व तकका समय) अपराह्निक (मध्याह्नके दो घड़ी बादसे रात्रिसे दो घड़ी पूर्वका समय) प्रदोषकाल (रात्रिके दो घड़ी बादसे मध्य रात्रिके दो घड़ी पूर्व तकका समय) और विरात्रिकाल (मध्यरात्रिसे दो घड़ी पश्चात्से सूर्योदयसे दो घड़ी पूर्व तक का समय) रूप चार उत्तम कालोंमे पठन पाठनादि रूप स्वाध्याय करना कालाचार कहलाता है।

(१३) विनयाचार या विनय अंगः—हाथ पैर आदिको धोकर मुखशुद्धि कर, शुद्ध और पवित्र स्थानमें पर्यंकासनसे बैठकर नमस्कार पूर्वक शास्त्राध्ययन करना, उनका स्वाध्यायादि करना विनयाचार है।

(१४) उपधानाचार—जो कुछ पढ़ा है उसे उपधान सहित अर्थात् कालान्तरमें भूल न जाय इस रूपसे पढ़ना उपधान कहलाता है।

(१५) बहुमानाचारः—ज्ञानके साधनभूत शास्त्र, ग्रंथ, अध्यापक आदिका पूरी तौर पर आदर सत्कार करना बहुमान अंग या बहुमानाचार कहलाता है।

(१६) अनिन्हव अंग या अनिन्हवाचार—जिस गुरुसे, जिस शास्त्रसे ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको नहीं छिपाना अनिह्नव कहलाता है।

(१७) मनोगुप्ति—मनकी विषय भोगोंकी ओर प्रवृत्ति न कराते हुए उसका भली प्रकारसे नियमन करना, उसे उच्छृंखलित न होने देते हुए वशमें रखना मनोगुप्ति कहलाती है।

(१८) वचनगुप्ति—परके प्राणों और हृदयको ठेस न पहुंचाने वाले सीमित हितकारी वचनोंको आवश्यकता पड़नेपर ही बोलना वचनगुप्ति कहलाती है।

(१९) कायगुप्ति—शरीरको संयमित रखते हुए उससे ऐसी चेष्टा या क्रिया नहीं होने देना जिससे स्वयंके गुणोंमें खराबी हो अथवा दूसरे प्राणीके प्राणोंका अपघात हो, कायगुप्ति कहलाती है।

(२०) ईर्यासमिति—दिनके समय मनुष्य, घोड़े, बैल आदिके आवागमनसे मर्दित मार्गपर सदाशयसे सत्कार्यके लिये धीरे २ चलना और चलते समय उस दृष्टिसे कि प्राणिरक्षा होती रहे सावधानीके साथ चार हाथ भूमिको देखते हुए प्रवृत्ति करना ईर्यासमिति कहलाती है।

(२१) भाषासमिति—कर्कश कटु परुष आदि दश प्रकारके दुर्वचनोंसे रहित प्राण्युपकारक प्रियवचनोंको बोलना भाषासमिति कहलाती है।

(२२) एषणासमिति—उद्गमादि दोषोंसे रहित, संयमसाधक, शुद्ध योग्य आहारका ग्रहण करना एषणासमिति कहलाती है।

(२३) आदाननिक्षेपण समिति—सूर्यप्रकाश और नेत्रसे भली

प्रकार देखभाल कर पिच्छिकादिके द्वारा झाड़ फटकार कर फलक, कुण्डक, पुस्तकादि द्रव्योंको उठाना धरना आदाननिक्षेपण समिति कहलाती है।

(२४) प्रतिष्ठापना समितिः—जन्तुरहित, भली प्रकारसे देखे भाले गये पृथ्वीतलके ऊपर मल, टट्टी आदिका परित्याग करना प्रतिष्ठापना या व्युत्सर्ग समिति कहलाती है। ये पांच समितियां सम्यक्चारित्रके परिपालनमें संवर्धन प्रदान करती हैं।

(२५) अहिंसा महाव्रतः—छह कायके जीवोंकी रक्षामें प्रयत्नशील होनेसे द्रव्य हिंसाका त्याग होता है तथा अंतरंगमें पाये जाने वाले रागद्वेषादिक विभावोंके परित्यागसे भावहिंसाका हटना होता है। इस प्रकार दोनों हिंसाके परित्याग पूर्वक अपनी प्रवृत्ति करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है।

(२६) सत्य महाव्रतः—रागद्वेष आदि विकारी भावोंके कारण असमीचीन पीड़ाकारक वचनोंको कहना असत्य है और उसका सर्वथा परित्याग कर अपने वचनोंको समीचीन, हितकारक तथ्योंकी विवेचनामें प्रयोग करना, सत्य महाव्रतका परिपालन है।

(२७) अचौर्य महाव्रतः—दुर्गति वध, बन्ध आदि अपायोंका कारणभूत जो चौर कर्म है उसकापरित्याग कर देना अचौर्य महाव्रत कहलाता है। अहिंसा देवीकी आराधना या उपासना करनेवाले व्यक्तिकेलिये आवश्यक है कि दयासूत्रमें पिरोये हुए क्षमा, सत्य, अचौर्य आदि पुष्पोंकी मालाको चढ़ा भक्ति करे। दूसरेकी वस्तुको बिना स्वामीकी आज्ञाके ले लेना चोरी कहलाता है और इसका परित्याग, व्रतकी कोटिमें आजाता है।

(२८) ब्रह्मचर्य महाव्रतः—मनुष्यको पशुताकी कोटिमें ला पटक देनेवाले मैथुनको, स्त्री आदि विषयक कामवासनाको हृदयसे निकाल निरतिचाररूपसे ब्रह्मचर्यको पालना, आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लगे रहना ब्रह्मचर्यमहाव्रत है।

(२६) परिग्रहत्याग महाव्रत—दशप्रकारके बाह्य परिग्रहों एवं चौदह प्रकारके अन्तरंग परिग्रहोंसे निरपृह हो ममताका परित्याग कर देना परिग्रहत्याग महाव्रत है। इस परिग्रहग्रहसे ग्रसित व्यक्तिकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और परमें स्वत्वकी भावना पैदा कर अपने आपको मंझधार में डुबो बैठता है। ऐसा ख्याल कर परिग्रहसे ममत्व कम करना चाहिये और विरतिपरिणामोंको प्रोत्साहन देना चाहिये।

सूत्र—मायामिथ्यात्वोपष्टम्भाधर्मदेशनाऽनल्पारंभपरिग्रहनिकृतिकूटकर्मावनिभेदसदृशरोषनिःशीलताशब्दलिंगवंचनातिसंधानप्रियताभेदकरणानर्थोद्भावनवर्णगंधरसस्पर्शान्यत्वापादनजातिकुलशीलसंदूषणविसंवादनाभिसंधिमिथ्याजीवित्वसद्गुणव्यपलापासद्गुणख्यापननीलकपोतलेश्यापरिणामार्तध्यानमरणकालताजातीयास्तिर्यगायुराश्रवहेतवः ॥२॥

अर्थ—इस सूत्रमें उन बातोंका उल्लेख किया गया है जिनसे तिर्यग् आयुका आश्रव होता है। कारणोंकी संख्या उनतीस है और नाम उनके अलग अलग इसप्रकार हैं—

(१) मायानामक तिर्यग्–आयु—आश्रवहेतु (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी " नामक तिर्यग्–आयु–आश्रवहेतु पद " जोड़ लेना चाहिये) (२) मिथ्यात्वोपष्टम्भत्व (३) अधर्म देशना (४) अनल्प आरम्भ (५) अनल्प परिग्रह (६) निकृति (७) कूटकर्म (८) अवनिभेदसदृश रोष (९) निःशीलता (१०) शब्दवंचना (११) लिङ्गवंचना (१२) अतिसंधानप्रियता (१३) भेदकरण (१४) अनर्थोद्भावन (१५) वर्णान्यत्वापादन (१६) गन्धान्यत्वापादन (१७) रसान्यत्वापादन (१८) स्पर्शान्यत्वापादन (१९) जातिसंदूषण (२०) कुलसंदूषण (२१) शीलसंदूषण (२२) विसंवादन (२३) अभिसंधि (२४) मिथ्याजीवित्व (२५) सद्गुणव्यपलाप (२६) असद्गुणख्यापन (२७) नीललेश्या परिणाम (२८) कपोतलेश्यापरिणाम (२९) आर्तध्यान मरणकालताजाति।

(१) माया नामक हेतु—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न

हुआ जो आत्मामें कुटिलता लिये हुए स्वभावका होना है उसे माया कहते है। इसमें मन वचन और कायकी सरलता न होते हुए, टेढ़ापन पाया जाता है। मनकी कुछ वृत्ति होती है, वचनकी कुछ और ही प्रवृत्ति होती है तथा कायकी कुछ और ही चेष्टा होती है ऐसी मायावृत्तिसे तिर्यगायुका आस्रव होता है।

(२) मिथ्यात्व-उपष्टंभत्व:--मिथ्यात्वसे प्रयोजन विपरीत बुद्धि का है। विपरीत बुद्धिके कारण प्राणी जो अपने नही हैं, पर हैं उनको अपना समझ उनके संवर्धनमे लगा रहता है। इतनी तक ही बात होती तो ठीक है किन्तु परिणामोकी इससे दौड़ कही ज्यादा हो जाती है वह उनके साथ अपने आपको बांध लेता है। उनके नाश होनेपर अपना नाश और उनकी प्रसन्नतामे अपनी प्रसन्नताका अनुभवन करने लगता है। इस प्रकारकी भावनासे समन्वित रहना उसमे अपने आपको बिलकुल रचा पचा देना मिथ्यात्व-उपष्टंभत्व कहलाता है। इससे तिर्यग् आयुकी प्राप्तिमे कारण होनेवाले कर्मपरमाणुओका आश्रव होता है।

(३) अधर्मदेशना नामक हेतु:--मिथ्यात्वसे युक्त अधर्मका व्याख्यान, उपदेश आदि देना जहां दूसरे प्राणियोंको गड्ढेमें डालनेवाला है वही वह व्याख्याताके लिये तिर्यग्आयुके कर्मपरमाणुओंको आकृष्ट करने वाला है। इससे तिर्यगायुकी प्राप्ति होती है।

(४) अनल्प आरंभ हेतु:--विषय वासनाके चक्करमें फंस उनके साधनोंको बटोरनेमे दिन रात लगे रहना, उसके लिये जरूरतसे भी ज्यादा आरम्भ कर अपने आपको दीवानासे बनाये रखना अनल्प आरम्भ कहलाता है।

(५) अनल्पपरिग्रह हेतु:--अल्प नहीं अर्थात् बहुत ज्यादा परिग्रहके संग्रहमे लगे रहना, तृष्णा और लोभके वशमें हो "हाय पैसा, हाय पैसा" की भावनासे अपने आपको अशान्त बनाये रख अर्थ संचयमे लगे रहना अनल्प परिग्रह कहलाता है।

(६) निकृति हेतु—निकृति, वंचना, आदि पर्यायवाची शब्द हैं। वचनोंकी मीठी किन्तु अहित कारक छुरीसे प्राणियोंको धोखेमें डाल ठग लेना, उनको गड्ढेमें पटक अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये अन्याय आदिका कुछ भी ख्याल न कर विश्वासघात, दगाबाजी आदिके द्वारा प्रयत्न करना निकृति कहलाती है।

(७) कूटकर्म नामक हेतु—ऐसे काम जो बहुप्राणिघात-कारक एवं निकृष्ट हैं उनको मतलब गांठनेके लिये करना कूटकर्म हैं। इनसे तिर्यग्गतिकी प्राप्तिमें सहायता मिलती है या यह कहिये कि प्राणी इनसे तिर्यग्गतिमें जाता है।

(८) अवनिभेदसदृशरोष नामक हेतु—प्राणीकी जो क्रोध-परिणति पृथ्वीपर खुदी हुई लकीरके समान कठिनतासे मिटने वाली हो, जिसका अस्तित्व बहुत समय तक बना रहे तथा जो तीव्रतम न होती हुई तीव्र हो, ऐसी परणतिसे तिर्यग् आयुकी प्राप्ति होती है।

(९) निःशीलतानामक हेतु—शीलसे प्रयोजन गुण व्रत, शिक्षा व्रत आदि विरति रूप परिणतिसे है। प्राणीकी इन शीलोंसे रहित अवस्था निःशीलता कहलाती है। इस वृत्तिसे तिर्यगायुका आस्रव होता है।

(१०) शब्दवंचना हेतु—शब्द और अंकोंका हेर फेर कर उनका अस्पष्ट उच्चारण कर, सामान्य लिखावटमें से स्वार्थसाधक शब्दोंका दूसरेको ज्ञान न करा मनमाने रूपमें कुछका कुछ बनाकर दूसरेको ठगना शब्दवंचना कहलाती है।

(११) लिङ्गवञ्चना हेतु—लिग-परिवर्तनादिके द्वारा दूसरेको धोखा देना, इसमें वेश परिवर्तनके निमित्तसे भी वंचना दी जाती है। लिङ्गवञ्चना तिर्यग् आयुका कारण है।

(१२) अतिसंधानप्रियता नामक हेतु—अपनी प्रवृत्तिको दूसरेकी गुप्त बातोंकी खोजमें लगाये रखना। यह तिर्यगायुके आस्रवका कारण है।

(१३) भेदकरणनामक हेतुः--परस्परमें मैत्रीभावसे रहने वाले व्यक्तियोंमें वैमनस्य पैदा करनेवाली अपने मन वचनकी क्रियाका करना भेद करण कहलाता है। इससे इस युगमें अप्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है और साथ ही यह परभवमे दुर्गतिप्राप्तिका कारण होता।

(१४) अनर्थोद्भावन नामक हेतुः--किसी प्राणीके ऐसे घटना चक्र को देश समाज आदिके समक्ष खोलके रख देना जिससे वह अनेक झंझटों, कठिनाईयों या विपदाओंमें फंस जाय। इस दुष्प्रवृत्तिको अनर्थोद्भावन कहते हैं।

(१५) वर्णान्यत्वापादननामक हेतुः--किसी अल्प मूल्य वाली वस्तुको रंगके हेर फेर से दे कर ठगना, अन्य रंगका अन्य रंग कर देना वर्णान्यत्वापादन कहलाता है।

(१६) गंधान्यत्वापादननामक हेतुः--कुछकी कुछ गंध कर प्राणियोंको धोखा देना, उदाहरणके तौर पर व्हाइट आयल की सेंट आदि डाल कर गंध परिवर्तित कर धोखा देना।

(१७) रसान्यत्वापादननामक हेतुः--जिसका स्वाद खराब है ऐसे पदार्थको परिवर्तित कर, हानिकारक होते हुए भी उसे उसी स्वाभाविक स्वादवाला कह कर ठगना, रसान्यत्वापादन कहलाता है इसमे एक प्रकारके रसको अन्य रसके रूपमें बदलनेकी क्रियाकी प्रधानता रहती है।

(१८) स्पर्शान्यत्वापादननामक हेतुः--जहां स्पर्शमें हेर फेर कर उसे अन्यका अन्य करके अन्यको ठगनेकेलिये प्रयत्न करनेकी चेष्टा की जाती है वहां ऐसे प्रयत्नको स्पर्शान्यत्वापादन मे गर्भित किया जाता है।

(१९) जातिसंदूषण हेतुः--जो जिस जातिका है, उसको उस जातिसे गिरानेकी चेष्टा करना, उसके ऊपर झूंठा दोषारोपण कर अपराधी ठहराना आदि प्रयत्न जाति-संदूषणमें गर्भित होते हैं। इन प्रयत्नोंमें मायाचारका बहुत ज्यादा आश्रय लिया जाता है जो कि तिर्यगायुका मुख्य कारण है। इसलिये यह भी उसके ही कारणोमे गिनाया गया है।

(२०) कुलसंदूषण हेतु—उच्चकुलके कुलीन व्यक्तिको नीचा दिखानेकी गरजसे उसके कुलके विषयमे आधाररहित अपवादो, परिवादो आदि का प्रसार एवं प्रचार करना, कुलमे झूंठे कलंक कालिमा के लगानेकी क्रिया करना आदि बाते इसके अन्तर्गत आती हैं।

(२१) शीलसदूषण हेतु—शीलसे गुणव्रतो शिक्षाव्रतोके साथ ही साथ सदाचार शिष्टता आदिका ग्रहण होता है। इनसे युक्त सत्पुरुषके आचारमे असद् दोषोको मढना, उसे ढोंगी, पाखंडी आदि कह बदनाम करना शीलसदूषण है इससे तिर्यगायुका आस्रव होता है।

(२२) विसंवादन नामक हेतु—किसीके विषयमे झूठा बखेड़ा खड़ा कर देना साथ ही साथ उसके पतनमे अपने उत्थानकी चेष्टा करना आदि बाते विसंवादनमे आती है। यह भी तिर्यगायुका कारण है।

(२३) अभिसंधिनामक हेतु—अभिसंधिसे प्रयोजन इरादतन किसी की भद्द करनेसे है। इसमे सकल्प और खोटे अभिप्रायका मिश्रण पाया जाता है।

(२४) मिथ्याजीवित्व हेतु—मिथ्या भाषण, मिथ्या व्यपार और मिथ्या भावनाओसे, दूसरे शब्दोमे आज कलके लिहाजसे चारसौ बीस या काला बाजार आदिके द्वारा आजीविका चलाना इसमे निहित हैं।

(२५) सद्गुणव्यपलापनामक हेतु—दूसरेमे पाये जाने वाले अच्छे अच्छे गुणोको छिपा देना, उनको सामने न आने देना सद्गुणव्यपलाप कहलाता है।

(२६) असद्गुणख्यापन नामक हेतु—नीचा दिखानेकी गरजसे बुराईयोका, दुर्गुणोका जो कि दूसरेमे पाये जाते है, वर्णन करना उनका फैलाव करना असद्गुणख्यापन कहलाता है।

(२७) नीललेश्या परिणाम—नील लेश्यामे जैसे क्रोधादि कषायरूप परिणाम होते हैं, वैसे परिणाम वाला व्यक्ति तिर्यगायुके समीप अपने आपको ले जाता है। यह कहिये कि तिर्यगायुके कारणभूत कर्म-

परमाणुओंको अपने समीप खींच कर लाता है।

(१८) कपोतलेश्यापरिणामः—इसमें कषाय तीव्रतम या तीव्रतर न होती हुई तीव्र मात्र रहती है। इसरूप परिणाम वाला व्यक्ति तिर्यंगायुके समीप अपनेको ले जाता है।

(१९) आर्तध्यान मरण कालता:—मृत्युके समय आर्तध्यानका हो जाना। इनसे तथा ऐसे ही अन्य कारणोंसे तिर्यगायुका आस्रव होता है।

सूत्र—ढोलनगाराढोलकढफडमरुडुगडुगीमृदंगतबलातासेमुरजतोमडीघडाखंजरीचोकीचगनौबतढाकपौमवईदोराखोलदायरा—उदकईसिंगागिडकहीसतूरगोलथमढपलानारीतुमकाहा धपकजातीयास्तीर्थकृज्जन्मोत्सवे वाद्याः प्रसिद्धवादित्राः ॥२॥

अर्थ.—अतिशय पुण्य प्रतापसे युक्त तीर्थंकर भगवानके जन्मके समय नरनारियोंके साथ देवता भी आनन्द उत्सव मनाते है। नाना प्रकारके गाजे बाजेके साथ भगवानके गुणकीर्तनमें बड़ी भक्तिके साथ लगे रहते है। अनेक बाजोंके प्रकारोंमें एक धपक जातिके बाजे भी होते है। इन बाजोंके उनतीस भेद होते है वे सभी इस समय बजते रहते है। बाजोंके नाम इस प्रकार है.—

(१) ढोल (२) नगारा (३) ढोलक (४) ढफ (५) डमरु (६) डुगडुगी (७) मृदंग (८) तबला (९) तासे (१०) मुरज (११) तोमड़ी (१२) घड़ा (१३) खजरी (१४) चौकी (१५) चंग (१६) नौबत (१७) ढांक (१८) पौमवई (१९) दौरा (२०) खोल (२१) दायरा (२२) उदकई (२३) सिंग (२४) गिड़क्की (२५) संतूर (२६) गोलथम (२७) ढपला (२८) नारी (२९) तुमक।

❀ तीसवां अध्याय ❀

सूत्र—सातासातयोरेका वज्रर्षभनाराचसहननिर्माणस्थिरास्थिरशुभाशुभसुस्वरदुःस्वराप्रशस्तप्रशस्तविहायोगत्यौदारिकद्विकतैजसकार्माणषट्संस्थानस्पर्शरसगंधवर्णागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रत्येकशरीराणि सयोगे उदयव्युच्छिन्नाः प्रकृतयः ॥१॥

अर्थ —सयोगकेवली नामक तेरहवे गुणस्थानमे तीस प्रकृतियां उदयसे व्युच्छन्न हो जाती है। अर्थात् तीस प्रकृतियोका, जिनके कि नाम आगे लिखे जाने वाले हैं, उदय तेरहवें गुणस्थान तक ही पाया जाता है इससे आगे नहीं। प्रकृतियोके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं।

(१) वेदनीय कर्मकी साता और असाता नामक प्रकृतियोमे से कोई एक कर्म प्रकृति (२) वज्रर्षभनाराच संहनतन (३) निर्माण प्रकृति (४) स्थिर प्रकृति (५) अस्थिर प्रकृति (६) शुभ प्रकृति (७) अशुभ प्रकृति (८) सुस्वर प्रकृति (९) दुःस्वरप्रकृति (१०) अप्रशस्त विहायोगति प्रकृति (११) प्रशस्त विहायोगति प्रकृति (१२) औदारिक शरीर (१३) औदारिक आङ्गोपाङ्ग (१४) तैजस शरीर (१५) कार्माण शरीर (१६) समचतुरस्रसंस्थान (१७) न्यग्रोधपरिमंडल सस्थान (१८) स्वाति-संस्थान (१९) कुब्जक संस्थान (२०) वामन सस्थान (२१) हुंडक संस्थान (२२) स्पर्श प्रकृति (२३) रस प्रकृति (२४) गंध प्रकृति (२५) वर्ण प्रकृति (२६) अगुरुलघुप्रकृति (२७) उपघात प्रकृति (२८) परघात प्रकृति (२९) श्वासोच्छ्वास प्रकृति (३०) प्रत्येकशरीर प्रकृति ।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिप-ञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥२॥

अर्थ —जीवसमास उन खातोको कहते हैं जिनमे समस्त जीवराशिको विभक्त किया जाता है। जीवसमासोके कई भेद (खाते) कई प्रकारसे बनते हैं। इस सूत्रमे उनके (जीव समास) तीस भेदोको गिनाया गया है, नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (इसी तरह आगेके नामोंके साथ भी "नामक जीवसमास" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् (जल) पर्याप्त (६)बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त

(१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर वनस्पति पर्याप्त (१८) बादर वनस्पति अपर्याप्त (१६) सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त (२०) सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त (२१) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (२२) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (२३) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (२४) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (२५) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (२६) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (२७) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (२८) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त (२६) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३०) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताश्चजीवसमासाः ॥३॥

अर्थ—तीस भेद वाले जीव समासोंके बननेका एक ढंग पूर्व सूत्रमें बतला दिया जा चुका है। इस सूत्रमें भी जीव समासके तीस भेद, जो दूसरे ढंग या प्रकारसे बनते हैं, फिर लिखे जा रहे हैं:—

(१) पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (अवशिष्ट नामोंके साथ भी "नामक जीवसमास" पद जोड़ते जाना चाहिये) (२) पृथ्वी निर्वृत्त्यपर्याप्त (३) पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (४) अप् (जल) पर्याप्त (५) अप् निर्वृत्त्यपर्याप्त (६) अप् लब्ध्यपर्याप्त (७) तेज (आग) पर्याप्त (८) तेज निर्वृत्त्यपर्याप्त (६) तेज लब्ध्यपर्याप्त (१०) वायु पर्याप्त (११) वायु निर्वृत्त्यपर्याप्त (१२) वायु लब्ध्यपर्याप्त (१३) वनस्पति पर्याप्त (१४) वनस्पति निर्वृत्त्यपर्याप्त (१५) वनस्पति लब्ध्यपर्याप्त (१६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (१७) द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त (१८) द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (१६) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (२०) त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त (२१) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (२२) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (२३) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त (२४) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (२५) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (२६) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त (२७) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (२८) असंज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्त (२६) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त (३०) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त।

सूत्र—जंबूद्वीपे हैमवतहरिदेवकुरूत्तरकुरुरम्यकहैरण्यवता धातकीखण्डे पुष्करार्धे च द्विहैमवतहरिदेवकुरूत्तरकुरुरम्यकहैरण्यवताः सुभोगभूमयः ॥४॥

अर्थ—भोगभूमिसे प्रयोजन मध्यलोकमे पाये जाने वाले मर्त्यलोक संबंधी ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप पूरा, धातकीखण्ड नामक द्वीप पूरा और पुष्कर नामक द्वीप आधा, इस प्रकार ढाईद्वीप) की उन क्षेत्र भूमियोसे है जहां कि रहने वाले पुण्यवान पुरुष एवं तिर्यंच मनके माफिक इन्द्रिय विषय एवं भोगोपभोगके साधनोको प्राप्त कर मनके माफिक मजा लेते हैं, आनन्द करते हैं और वनक्रीड़ादि कर सुखसे जीवनको व्यतीत करते हैं। वे ही व्यक्ति यहां जन्म लेते हैं जो अपनी पूर्व पर्यायमे दूसरे पात्रो व्रत्तियों आदिको दानादि प्रदान करते हैं। जो जैसे पात्रोको सन्मान, दान, विनय आदि प्रदान करते हैं उन्हे वैसी भोगभूमि प्राप्त होती है। इस सूत्रमे ऐसे तीस स्थानोको गिनाया गया है जो सुभोगभूमि कहलाते हैं और अपनेमे पाये जाने वाले कल्पवृक्षादिके द्वारा निवासियोको विषयसुखानुभवन साधक होते हैं। भूमियोके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं:—

जम्बूद्वीप संबंधी या उसमे पाई जाने वाली छह भूमियां:—
(१) हैमवत क्षेत्र नामक सुभोगभूमि (२) हरि क्षेत्र नामक सुभोगभूमि (३) देवकुरु नामक सुभोगभूमि (४) उत्तरकुरु नामक सुभोगभूमि (५) रम्यक क्षेत्र नामक सुभोगभूमि (६) हैरण्यवत नामक सुभोगभूमि।

धातकीखण्ड द्वीपमे पाई जाने वाली बारह भूमियां:—(७) पूर्वधातकीखण्ड द्वीपका हैमवत क्षेत्र (८) पश्चिमधातकीखण्ड द्वीपका हैमवत क्षेत्र (९) पूर्वधातकीखण्ड द्वीपका हरि क्षेत्र (१०) पश्चिमधातकीखण्ड द्वीपका हरि क्षेत्र (११) पूर्वधातकीखण्ड संबंधी देवकुरु (१२) पश्चिमधातकीखण्ड संबंधी देवकुरु (१३) पूर्वधातकीखण्ड संबंधी उत्तरकुरु (१४) पश्चिमधातकीखण्ड संबंधी उत्तरकुरु (१५) पूर्वधातकीखण्ड संबंधी रम्यक क्षेत्र (१६) पश्चिमधातकीखण्ड संबंधी रम्यक क्षेत्र

(१७) पूर्वधातकीखण्ड संबंधी हैरण्यवत क्षेत्र (१८) पश्चिमधातकीखण्ड संबंधी हैरण्यवत क्षेत्र। इस तरह ये बारह सुभोगभूमियां हैं।

पुष्करार्धनामक द्वीपमें पाई जाने वालीं बारह सुभोगभूमियां:— (१९) पूर्वपुष्करार्धद्वीप संबंधी हैमवतक्षेत्र (२०) पश्चिमपुष्करार्धद्वीप संबंधी हैमवत क्षेत्र (२१) पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधी हरि क्षेत्र (२२) पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधी हरि क्षेत्र (२३) पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधी देवकुरु (२४) पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधी देवकुरु (२५) पूर्वपुष्करार्धसंबंधी उत्तरकुरु (२६) पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधी उत्तरकुरु (२७) पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधी रम्यक क्षेत्र (२८) पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधी रम्यक क्षेत्र (२९) पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधी हैरण्यवत क्षेत्र (३०) पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधी हैरण्यवत क्षेत्र।

सूत्र—कर्मभूमिजतिर्यक्षु गर्भजसंज्ञ्यसंज्ञिजलस्थलनभश्चारि पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताः सम्मूर्च्छिमसंज्ञ्यसंज्ञिजलस्थलनभश्चारिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताः कर्मभूमिजतिर्यग्जीवसमासाः ॥५॥

अर्थः—कर्मभूमिमें पैदा होनेवाले तिर्यंचोंके तीस जीव समास होते हैं। नाम उन भेदोंके अलग अलग इस प्रकार हैं:—

कर्मभूमिमें पैदा होनेवाले ऐसे तिर्यंचोंके जो गर्भ जन्मसे पैदा होते हैं, बारह जीव समास हुआ करते हैं, वे इस प्रकार हैं:—

(१) संज्ञी जलचर पर्याप्त नामक जीवसमास (२) असंज्ञी जलचर पर्याप्त (३) संज्ञी जलचर निर्वृत्यपर्याप्त (४) असंज्ञी जलचर निर्वृत्यपर्याप्त (५) संज्ञी स्थलचर पर्याप्त (६) असंज्ञी स्थलचर पर्याप्त (७) संज्ञी स्थलचर निर्वृत्यपर्याप्त (८) असंज्ञी स्थलचर निर्वृत्यपर्याप्त (९) संज्ञी नभश्चारी पर्याप्त (१०) असंज्ञी नभश्चारी पर्याप्त (११) संज्ञी नभश्चारी निर्वृत्यपर्याप्त (१२) असंज्ञी नभश्चारी निर्वृत्यपर्याप्त। इन बारह जीव समासोंमें कर्मभूमिमें पैदा होने वाले ऐसे तिर्यञ्चोंके, जिनका जन्म सम्मूर्च्छनसे होता है, अठारह जीव समासोंको जोड़ देनेसे तीस भेद जीव समासके बन जाते हैं। अठारह भेदोंके नाम इस प्रकार हैं:—

(१३) संज्ञी जलचर पर्याप्त (१४) संज्ञी जलचर निर्वृत्यपर्याप्त (१५) संज्ञी जलचर लब्ध्यपर्याप्त (१६) असंज्ञी जलचर पर्याप्त (१७) असंज्ञी जलचर निर्वृत्यपर्याप्त (१८) असंज्ञी जलचर लब्ध्यपर्याप्त (१९) संज्ञी स्थलचर पर्याप्त (२०) संज्ञी स्थलचर निर्वृत्यपर्याप्त (२१) संज्ञी स्थलचर लब्ध्यपर्याप्त (२२) असंज्ञी स्थलचर पर्याप्त (२३) असंज्ञीस्थलचरनिर्वृत्यपर्याप्त (२४) असज्ञी स्थलचर लब्ध्यपर्याप्त (२५) संज्ञी नभश्चारि पर्याप्त (२६) सज्ञी नभश्चारिनिर्वृत्यपर्याप्त (२७) संज्ञी नभश्चारिलब्ध्यपर्याप्त (२८) असंज्ञी नभश्चारिपर्याप्त (२९) असंज्ञी नभश्चारि निर्वृत्य पर्याप्त (३०) असंज्ञी नभश्चारि लब्ध्यपर्याप्त। इस प्रकार ये अठारह हुए और दोनोको जोड़ देनेसे तीस भेद बन जाते हैं।

❀ इकतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—मिथ्यात्वातपमनुष्यगत्यानुपूर्व्यस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभसंज्वलनक्रोधमानमायाभयजुगुप्साहास्यरत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियपुरुषवेदा युगपद्बंधोदयव्युच्छिन्नाःप्रकृतयः ॥१॥

अर्थ—इस सूत्रमें उन इकतीस प्रकृतियोंके नाम गिनाये गये हैं जिनकी बंध-व्युच्छित्ति और उदय-व्युच्छित्ति एक साथ होती है। अर्थात् उपरि परिगणित इकतीस प्रकृतियोंमें से जिस गुणस्थानमे जिसकी बंध व्युच्छित्ति होती है उसी गुणस्थानमे उस प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति भी हो जाती है। सीधे और सरल शब्दोमे यह है कि सूत्रमें उल्लिखित इकतीस प्रकृतियोमे से जिस किसी प्रकृतिका किसी गुणस्थान विशेषसे आगेके गुणस्थानोंमे बन्ध होनेका निषेध किया गया है तो समझ लेना चाहिये कि उसका उन गुण स्थानोमे उदय होनेका भी निषेध है। उस प्रकृतिका न बन्ध होगा और न उदय होगा। प्रकृतियोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) मिथ्यात्व प्रकृति (२) आतप प्रकृति (३) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य प्रकृति (४) स्थावर प्रकृति (५) सूक्ष्मप्रकृति (६) अपर्याप्ति प्रकृति

(७) साधारणप्रकृति (८) अनन्तानुबन्धी क्रोध (९) अनन्तानुबन्धीमान (१०) अनन्तानुबन्धीमाया (११) अनन्तानुबन्धी लोभ (१२) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (१३) अप्रत्याख्यानावरण मान (१४) अप्रत्याख्यानावरण माया (१५) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१६) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१७) प्रत्याख्यानावरण मान (१८) प्रत्याख्यानावरणमाया (१९) प्रत्याख्यानावरण लोभ (२०) संज्वलन क्रोध (२१) संज्वलन मान (२२) संज्वलनमाया (२३) भयप्रकृति (२४) जुगुप्साप्रकृति (२५) हास्यप्रकृति (२६) रतिप्रकृति (२७) एकेन्द्रियप्रकृति (२८) द्वीन्द्रियप्रकृति (२९) त्रीन्द्रियप्रकृति (३०) चतुरिन्द्रिय प्रकृति (३१) पुरुषवेदप्रकृति ।

सूत्र—ऋतुविमलचन्द्रवल्गुवीरारुणनन्दननलिनकांचनरोहितचंचन्मरुतर्द्धीशवैडूर्यरुचकरुचिराङ्कस्फटिकतपनीयमेघाभ्रहारिद्रपद्मलोहितवज्रनन्दावर्तप्रभंकरपृष्टकगजमित्रप्रभाः सौधर्मयुग्मकल्पेन्द्रकविमानानि ॥२॥

अर्थ—सौधर्मेशानयुग्म नामक कल्पमे पाये जाने वाले अनेक प्रकारके विमानोमे एक प्रकारके विमानका नाम है इन्द्रक विमान। इन इन्द्रक विमानोकी संख्या इकतीस है और नाम उनके अलग अलग इस प्रकार है:—

(१) ऋतुनामक विमान (इसी प्रकार आगेके नामोमें भी "नामक विमान" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) विमल (३) चन्द्र (४) वल्गु (५) वीर (६) अरुण (७) नन्दन (८) नलिन (९) कांचन (१०) रोहित (११) चंचत् (१२) मरुत (१३) ऋद्धीश (१४) वैडूर्य (१५) रुचक (१६) रुचिर (१७) अङ्क (१८) स्फटिक (१९) तपनीय (२०) मेघ (२१) अभ्र (२२) हारिद्र (२३) पद्म (२४) लोहित (२५) वज्र (२६) नंदावर्त (२७) प्रभंकर (२८) पृष्टक (२९) गज (३०) मित्र (३१) प्रभ ।

सूत्र—औपशमिकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं मतिश्रुतावधिज्ञान चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगवीर्यसंयमासंयमाः मनुष्यतिर्यग्गतिक्रोधमानमाया लोभपुंस्त्रीनपुंसकलिङ्गपीतपद्मशुक्ललेश्याऽज्ञानासिद्धत्वानि जीवत्वभव्यत्वे देशसंयते भावाः ॥३॥

अर्थ—देशसंयत नामके पाचवे गुणस्थानमे जीवके त्रेपन असाधारण भावोमे से जो इकतीस भाव पाये जाते है, उनके नाम इस सूत्रमे गिनाये गये हैं। नाम अलग अलग यो हैं:—

(१) औपशमिक सम्यक्त्व (२) क्षायिक सम्यक्त्व (३) मतिज्ञान (४) श्रुतज्ञान (५) अवधिज्ञान (६) चक्षु-दर्शन (७) अचक्षुदर्शन (८) अवधिदर्शन (९) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व (१०) क्षायोपशमिक दान (११) क्षायोपशमिक लाभ (१२) क्षायोपशमिक भोग (१३) क्षायोपशमिक उपभोग (१४) क्षायोपशमिक वीर्य (१५) क्षायोपशमिक संयम संयम (१६) मनुष्यगति (१७) तिर्यग्गति (१८) क्रोध (१९) मान (२०) माया (२१) लोभ (२२) पुंल्लिङ्ग (२३) स्त्रीलिङ्ग (२४) नपुंसकलिङ्ग (२५) पीतलेश्या (२६) पद्मलेश्या (२७) शुक्ललेश्या (२८) अज्ञान (२९) असिद्धत्व (३०) जीवत्व (३१) भव्यत्व। इस तरह ये पाचवें गुणस्थानमे जीवके ही पाये जाने वाले भाव हैं।

सूत्र—औपशमिकसम्यक्त्व क्षायिकसम्यक्त्व मतिश्रुतावधिज्ञान चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगवीर्यचारित्राणि मनुष्यगतिक्रोधमानमायालोभपुंस्त्रीनपुंसकवेदपीतपद्मशुक्ललेश्याऽज्ञानासिद्धत्वानि जीवत्वभव्यत्वे प्रमत्तविरते भावाः ॥६॥

अर्थ:—छटवे गुण स्थानका नाम प्रमत्तविरत्त है। इस गुण स्थानमे रहने वाले जीवके इकतीस भाव पाये जाते है। ये इकतीस जीवके त्रेपन। असाधारण भावोमे से हैं। नाम भावोके अलग अलग इसप्रकार है—

(१) औपशमिकसम्यक्त्वनामक भाव (२) क्षायिकसम्यक्त्व (३) मतिज्ञान (४) श्रुतज्ञान (५) अवधिज्ञान (६) मनःपर्ययज्ञान (७) चक्षुर्दर्शन (८) अचक्षुर्दर्शन (९) अवधिदर्शन (१०) क्षायोपशमिकसम्यक्त्व (११) क्षायोपशमिक दान (१२) क्षायोपशमिक लाभ (१३) क्षायोपशमिक भोग (१४) क्षायोपशमिक उपभोग (१५) क्षायोपशमिक वीर्य (१६) क्षायोपशमिक चारित्र (१७) मनुष्यगति (१८) क्रोध (१९) मान (२०) माया (२१) लोभ (२२) पुंल्लिङ्ग (२३) स्त्री लिंग (२४) नपुंसकलिंग

(२५) पीत-लेश्या (२६) पद्मलेश्या (२७) शुक्ललेश्या (२८) अज्ञान (२९ असिद्धत्व (३०) जीवत्व (३१) भव्यत्व।

सूत्र—अप्रमत्तविरते च ॥५॥

अर्थ.—अप्रमत्तविरत नामके सातवे गुणस्थानमे भी पूर्वसूत्रमें उल्लिखित इकतीस भाव पाये जाते हैं। पांच तरहके जीवके असाधारण भावोंके भेदोंको कुल मिलाया जाय तो उनकी संख्या त्रेपन हो जाती है। औपशमिक भावके दो, क्षायिक भावके नौं, क्षायोपशमिक भावके अठारह, औदयिक भावके इक्कीस तथा परिणामिक भावके तीन भेद है। इनमे से इकतीस भाव पाये जाते है उनका क्रम और नाम इस प्रकार है:—

(१) औपशमिक भावके दो भेदोंमे से एक-औपशमिकसम्यक्त्व।

(२) क्षायिक भावके नौ भेदोंमे से एक-क्षायिक सम्यक्त्व।

(३ से १६) क्षायोपशमिक भावके अठारह भेदोंमे से चौदह-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक दान, क्षायोपशमिक लाभ, क्षायोपशमिक भोग, क्षायोपशमिक उपभोग, क्षायोपशमिक वीर्य, क्षायोपशमिक चारित्र।

(१७ से २९) औदयिक भावके इक्कीस भेदोंमें से तेरह:-मनुष्यगति, क्रोध, मान माया, लोभ, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पीतलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या, अज्ञान, असिद्धत्व।

(३०-३१) पारिणामिक भावके तीन भेदोंमे से दो-जीवत्व, भव्यत्व।

सूत्र—"ॐ सम्यग्दर्शनाय नमः सम्यग्ज्ञानाय नमः सम्यक् चारित्राय नमः सम्यक् तपसे नमः इत्येकत्रिंशदक्षरमंत्रवर्णाः ॥६॥

अर्थः—इस सूत्रमे इकतीस अक्षर वाला मन्त्र लिखा गया है। मन्त्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

ॐ स म्य ग्द र्श ना य न मः स म्य ग्ज्ञा ना य न मः स म्य क्चा

रि न्ना य न मः स म्य कृ त प से न म ।

सूत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती सुषीमा पृथ्वी वज्रश्रृ खला मानसी महामानसी स्वाहा इतिराज्यवाग्विजयसौभाग्यनिमित्त एकत्रिंशदक्षरमंत्रः ॥७॥

अर्थ.—इकतीस अक्षर वाले मंत्रोमे से एक यह भी है। राज्यमे व वादविवादमे विजय प्राप्तिमे यह निमित्त या सहायक होता है। सौभाग्य प्राप्तिमे भी यह कारण होता है। अक्षरोका क्रम इस प्रकार है:—

ॐ न मो भ ग व ती गु ण व ती सु षी मा पृ थ्वी व ज्र श्रृं ख ला मा न सी म हा मा न सी स्वा हा।

सूत्र—साधुमित्रदेवतापूजनतीर्थोदधिगौवृषभचन्द्रशत्रुदेशजयसदनवनपर्वतजलघटभ्रमरमृगेन्द्रश्वेतपुष्पघोटककन्यारत्नराशिमत्स्यमृगेन्द्रलाभारोग्यविरामृतकजलौकाःसूर्यरुदननरेन्द्रदर्शनानि शुभस्वप्नानि॥८॥

अर्थ—रात्रिको दिन भरकी थकावटको दूर करनेके लिये जहा अन्य पशु पक्षी आदि प्राणी निद्राकी सुखद गोदमे जा लेट जाते है, मानव भी उसी तरह सुषुप्तिकी दुलार भरी थपकियो व लोरियोसे सहलाया जाता हुआ दूसरे लोकमे विहार करने लग जाता है। वह स्वप्न लोकका वासी बनकर नाना प्रकारके पशु पक्षी आदि नाना प्रकार के प्राणियो और पदार्थोंको देखता है। जागृत अवस्थासे सम्पन्न होने पर वह दृष्ट स्वप्नोके आधारपर शुभाशुभ परिणामका अनुमान लगाता है। इस सूत्रमे उनके नाम गिनाये गये हैं जिनके देखनेसे, परिणाम स्वरूप शुभफलकी प्राप्ति होती है। पदार्थोंके नाम इस प्रकार हैं—स्वप्नमे नीचे लिखी बाते देखना शुभ है—

(१) साधुदर्शन (२) मित्रदर्शन (३) देवतादर्शन (४) पूजनक्रियादर्शन (५) तीर्थदर्शन (६) उदधिदर्शन (७) गौदर्शन (८) वृषभदर्शन (९) चन्द्रदर्शन (१०) शत्रुजयदर्शन (११) देशजयदर्शन (१२) सदनदर्शन (१३) वनदर्शन (१४) पर्वतदर्शन (१५) जलदर्शन (१६) घटदर्शन (१७) भ्रमरदर्शन (१८) मृगेन्द्रदर्शन (१९) श्वेतपुष्पदर्शन (२०) घोटक-

दर्शन (२१) कन्यादर्शन (२२) रत्नराशिदर्शन (२३) मत्स्यदर्शन (२४) मृगेन्द्रलाभदर्शन (२५) आरोग्यदर्शन (२६) विट-दर्शन (२७) मृतक दर्शन (२८) जलौकादर्शन (२९) सूर्यदर्शन (३०) रुदनदर्शन (३१) नरेन्द्रदर्शन ।

(१) साधु दर्शनः—व्रतसंयमसम्पन्न सत्पुरुष साधु कहलाते हैं ।

(२) मित्र दर्शनः—अवसर एवं आवश्यकता आनेपर मदद देने वाला मित्र कहलाता है । "Afreend in need is friend in deed".

(३) देवता दर्शनः—जिनके प्रति पूज्य और आदर भाव हैं ऐसे जिनबिवादि अथवा स्वर्गस्थ देवोंको स्वप्नमे देखना ।

(४) पूजन दर्शनः—मान्य देवी देवताओंकी पूजन होती हुई देखना या स्वयं पूजन कर रहे है ऐसा देखना ।

(५) तीर्थ दर्शनः—आदर एवं श्रद्धाके स्थानभूत निर्वाणक्षेत्रादि तीर्थ भूमिको स्वप्नमे देखना शुभ होता है ।

(६) उदधि दर्शनः—उदधिका अर्थ है समुद्र, असीमित, अपार और अगाध जलराशिको लहराते हुए देखना ।

(७) गौदर्शनः—दूध देने वाली गायको स्वप्नमे देखना ।

(८) वृषभदर्शनः—ऊंची कंधौर वाले निडर नादिया (सांड) को विचरण करते हुए स्वप्नमें देखना ।

(९) चन्द्रदर्शनः—चांदको स्वप्नमें देखना ।

(१०) शत्रुजय दर्शनः—अपने बैरी या दुशमनको अपनी अधीनता ग्रहण करते हुए देखना ।

(११) देशजयदर्शनः—अपने देशकी विजय होते हुए देखना ।

(१२) सदनदर्शनः—सदनका अर्थ है घर उसे स्वप्नमे देखना ।

(१३) वनदर्शनः—विविध वृक्षोंसे युक्त जंगलको स्वप्नमे देखना ।

(१४) पर्वतदर्शनः—ऊंची चोटियोंसे युक्त पर्वत श्रेणी देखना ।

(१५) जलदर्शनः—जलप्रपातादिके रूपमें जलको स्वप्नमे देखना ।

(१६) घट दर्शनः—घट याने कलशको देखना ।

(१७) भ्रमरदर्शनः—भिन्न भिन्नकी आवाज करते हुए भौंरा देखना ।

(१८) मृगेन्द्र दर्शनः—विकराल दाढ़ों एवं केशरिया रंगकी केशर-वाले पूंछ उठाये शेरको देखना ।

(१९) श्वेतपुष्प दर्शनः—सफेद रंगकी पंखुडियावाले फूलको स्वप्नमे देखना ।

(२०) घोटकदर्शनः—उन्नत एवं चपल घोड़ेको देखना ।

(२१) कन्यादर्शनः—अविवाहित लड़कीको देखना ।

(२२) रत्नराशिदर्शनः—स्वप्नमे रत्नोंकी राशि (ढेर) देखना ।

(२३) मत्स्यदर्शनः—मत्स्य (मछली) को पानीमे तैरते हुए देखना ।

(२४) मृगेन्द्रलाभदर्शनः—सिंहकी प्राप्ति स्वप्नमें देखना ।

(२५) आरोग्यदर्शनः—रोगरहित स्वस्थ शरीरको देखना ।

(२६) विट्-दर्शनः—गूथसे, लिप्त शरीरको देखना ।

(२७) मृतकदर्शनः—मरे हुएको स्वप्नमें देखना ।

(२८) जलौकादर्शनः—गोचको शरीरपर चिपके देखना ।

(२९) सूर्यदर्शनः—नवोदित सूर्यके गोलाकारको देखना ।

(३०) रुदनदर्शनः—रुदनका अर्थ रोना है ऐसी दशाको स्वप्नमें देखना ।

(३१) नरेन्द्रदर्शनः—सिंहासनादि विभूति युक्त नरेश (राजा) को देखना ।

इनको स्वप्नमे देखनेसे शुभफल प्राप्तिकी आशा रहती है ।

❀ बत्तीसवाँ अध्याय ❀

सूत्र—देवतिर्यग्मनुष्यौदारारिकवैक्रियकद्विकप्रशस्तविहायोगतिवजूर्ष-भनाराचसंहननोपघातपरघातसमचतुरस्र संस्थानपञ्चेन्द्रियस्वसदशकसाता-हास्यरतिपुंवेदोच्चैर्नीचैर्गोत्राणिसप्रतिपक्षे सान्तरबध्यमानानि ॥१॥

अर्थ—इस सूत्रमे उन बत्तीस प्रकृतियोंका उल्लेख किया गया है जो प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्ध होनेपर अन्तराल देकर बन्धती हैं। उदाहरणके लिये सूत्रमें प्रशस्तविहायोगति प्रकृतिका उल्लेख किया गया है जो कि सान्तर बध्यमान है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि प्रशस्तविहायोगतिका बन्ध हो रहा है, ऐसी ही दशामें प्रतिपक्षभूत अप्रशस्त विहायोगतिका बन्ध होने लगा तो जितने समय तक अप्रशस्त विहायोगतिका बन्ध होता रहेगा उतने समयका अन्तर देकर फिर प्रशस्तविहायोगतिका बन्ध होगा। सांतरबध्यमानताके लिये प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्ध होनेकी आवश्यकता होगी। अन्य प्रकृतियोंके विषयमें भी ऐसा ही समझ लेना चाहिये। प्रकृतियोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) देवगति (२) देवगत्यानुपूर्वी (३) तिर्यग्गति (४) तिर्यग्गत्यानुपूर्वी (५) मनुष्यगति (६) मनुष्यगत्यानुपूर्वी (७) औदारिक शरीर (८) औदारिकाङ्गोपाङ्ग (९) वैक्रियक शरीर (१०) वैक्रियकाङ्गोपाङ्ग (११) प्रशस्तविहायोगति (१२) वज्रर्षभनाराचसंहनन (१३) उपघात (१४) परघात (१५) समचतुरस्रसंस्थान (१६) पञ्चेन्द्रिय (१७) त्रस (१८) बादर (१९) पर्याप्त (२०) प्रत्येक (२१) स्थिर (२२) शुभ (२३) सुभग (२४) सुस्वर (२५) आदेय (२६) यशःकीर्ति (२७) सातावेदनीय (२८) हास्य (२९) रति (३०) पुरुषवेद (३१) उच्चगोत्र (३२) नीचगोत्र ये सप्रतिपक्ष-सांतर बध्यमान प्रकृतियां हैं।

सूत्र—अप्रतिपक्षे निरन्तरबध्यमानानि । २ ।

अर्थ- जिन प्रकृतियोंके नामोंका उल्लेख पूर्व सूत्रमें किया है यदि वेही प्रतिपक्ष प्रकृतियोंसे रहित हों तो उनकी संज्ञा निरन्तर (लगातार) बन्धने वाली प्रकृतियां हो जाती है अर्थात् वे प्रतिपक्षके न होनेपर बन्ध दशाको प्राप्त होती रहती हैं।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोदप्रत्येकवनस्पतिविकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताजीवसमासाः ॥३॥

अर्थ—जीव समासके अनेक प्रकारोमे से एक प्रकार (जीव राशी-के वर्णन करने का) इस सूत्रमे उल्लिखित है। अर्थात् समस्त जीव-राशि बत्तीस खातोमे विभक्त कर वर्णित हो सकती है। खातो या जीव समासोके अलग अलग नाम ये हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् पर्याप्त (६) बादर-अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज पर्याप्त (१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर नित्य निगोद पर्याप्त (१८) बादर नित्यनिगोद अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म नित्यनिगोद पर्याप्त (२०) सूक्ष्म नित्यनिगोद अपर्याप्त (२१) बादर इतर निगोद पर्याप्त (२२) बादर इतरनिगोद अपर्याप्त (२३) सूक्ष्म इतर निगोद अपर्याप्त (२४) सूक्ष्म इतरनिगोद पर्याप्त (२५) प्रत्येकवनस्पति पर्याप्त (२६) प्रत्येकवनस्पति अपर्याप्त (२७) विकलेन्द्रिय पर्याप्त (२८) विकलेन्द्रिय अपर्याप्त (२९) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३०) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त (३१) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३२) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—काकामेध्यच्छर्दिरोधनरुधिराश्रुपातजान्वधःपरामर्श जानूपरिव्यतिक्रमनाभ्यधोनिर्गमनस्वप्रत्याख्यातसेवनजीववधकाकादिपिण्डहरणपिण्डपतनपाणिजन्तुवधमासदर्शनोपसर्गपञ्चेन्द्रियगमनभाजनसंपातोच्चारणप्रस्रवणा भोज्यगृहप्रवेशयतनोपवेशनदष्टभूमिस्पर्शनिष्टीवनकृमिनिर्गमनादत्तशस्त्रप्रहारग्रामदाहयादग्रहण हस्तग्रहणानि भोजनान्तरायाः ॥४॥

अर्थ—साधुके लिये आवश्यक है कि वह निरन्तराय अर्थात् अन्तरायको बचाते हुए आहार करे। किन वस्तुओंके संयोग, दर्शन श्रवणादिसे अन्तराय (विघ्न) हो जाता है उनका नामोल्लेख इस सूत्रमें किया गया है। इन्हीं को भोजनान्तराय कहते हैं, संख्या इनकी बत्तीस

है और नाम अलग अलग इस प्रकार से हैं:—

(१) काकनामक भोजनान्तराय (२) अमेध्यनामक भोजनान्तराय। इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक भोजनान्तराय" पद जोड़ लेना चाहिये (३) छर्दि (४) रोधन (५) रुधिर (६) अश्रुपात (७) जान्वधःपरामर्श (८) जानूपरिव्यतिक्रम (९) नाभि-अधः-निर्गमन (१०) प्रत्याख्यानसेवना (११) जन्तुवध (१२) काकादिपिण्डहरण (१३) पाणितः पिण्डपतन (१४) पाणिजन्तुवध (१५) मांसादिदर्शन (१६) उपसर्ग (१७) पञ्चेन्द्रियगमन या जीवसंपात (१८) भाजनसंपात (१९) उच्चार (२०) प्रस्रवण (२१) अभोज्यगृहप्रवेशन (२२) पतन (२३) उपवेशन (२४) दष्ट (२५) भूमिस्पर्श (२६) निष्ठीवन (२७) उदरकृमिनिर्गमन (२८) अदत्तग्रहण (२९) प्रहार (३०) ग्रामदाह (३१) पादग्रहण (३२) हस्तग्रहण।

(१) काकनामक अन्तरायः—कौआ, बुगला, बाजादि जो भोजनस्थानके ऊपरसे उड़कर जा रहे हैं या वहां बैठे हुए हैं उनके द्वारा बीट आदिका कर देना काकनामक भोजनान्तराय है।

(२) अमेध्यनामक भोजनान्तरायः—अमेध्यका अर्थ गन्दी अपवित्र मैली वस्तुसे है उसमे या उससे पैरोंका लिप्त हो जाना अन्तरायोंमें से एक अन्तराय है।

(३) छर्दि नामक अन्तरायः—भोजन करते करते स्वयं को वमन (उल्टी) हो जाय तो वह अन्तरायका कारण होता है।

(४) रोधन नामक अंतरायः—चर्या करते हुए कोई बीच में रोक देवे या रुकावट डाल देवे तो रोधन नामक अन्तराय कहलाता है। साधु इसके बाद भोजन नहीं करता।

(५) रुधिरनामक भोजनान्तरायः—स्वयंके अथवा दूसरेके बहते हुए रुधिर पीप आदि का देखना अन्तरायका कारण है।

(६) अश्रुपात नामक भोजनान्तरायः—दुःख अथवा संक्लेशके कारण स्वयंकी अथवा समीपमें स्थित अन्य व्यक्तिकी आखोंमेसे बहते

हुए आंसुओंको देखना भोजन सम्बन्धी अन्तरायका कारण होता है।

(७) जान्वधपरामर्शनामक भोजनान्तराय—घुटनोंसे नीचेके हिस्सेको छू या पकड़लेना भी अन्तराय है।

(८) जानूपरिव्यतिक्रमनामक भोजनान्तरायः—घुटनोंसे ज्यादा ऊंचाईवाले काठके ऊपर उल्लंघन कर जाना अन्तरायका कारण।

(९) नाभ्यधोनिर्गमन नामक भोजनान्तराय—नाभिसे भी नीची गर्दन कर जहां घुसना पड़े वहां भोजनसम्बन्धी अन्तराय माना गया है।

(१०) प्रत्याख्यातसेवनानामक भोजनान्तरायः—जिस वस्तुका त्याग कर रक्खा हो यदि वह वस्तु सेवनमें आजाय तो वह अन्तरायका कारण होती है।

(११) जन्तुवधनामक अन्तरायः—स्वयं से किसी जीवका वध हो जाय अथवा सामने ही दूसरे व्यक्तिके द्वारा जीववध किया जारहा हो तो वह अन्तरायका कारण होता है।

(१२) काकादिपिण्डहरणनामक—भोजन करते समय कौआ चील आदि पक्षी भोजनके ग्रासको ले जाय तो वह अन्तराय कारक घटना होती है।

(१३) पाणितः पिण्डपतन नामक अन्तरायः—भोजन करते समय अंजुलि पात्रमें से भोजनके ग्रास (कौर-कवल) का गिरजाना पाणित पिण्डपतन कहलाता है।

(१४) पाणिजन्तुवध नामक अन्तराय—यहां वहांसे उड़ता हुआ कोई जीव अंजुलिमे आकर गिर जाता है और मरजाता है तो वह अन्तराय है।

(१५) मांसादिदर्शननामक अन्तराय—भोजन ग्रहण करते हुए की अवस्थामे किसी पंञ्चेन्द्रिय जीवका मांस दिखाई दे जाय तो वह अन्तरायका कारण हो जाता है।

(१६) उपसर्गनामक अन्तरायः—यदि देव आदि कृत कोई आक-

सिमक उपसर्ग आ जाय तो वह भोजन ग्रहणमें अन्तरायका कारण होता है।

(१७) पञ्चेन्द्रियगमन नामक अन्तराय:—भोजन ग्रहण करते समय यदि दोनों पैरोंके बीचमें से कोई पञ्चेन्द्रियप्राणी निकलजाय तो वह अन्तरायका कारण होता है।

(१८) भाजनसम्पातनामक अंतराय:—परिवेषक अर्थात् जो दान देनेवाले सज्जन है उनके हाथोंसे बर्तनका गिरजाना भी अंतरायका कारण है।

(१९) उच्चारनामक अंतराय:—भोजन करते करते यदि पेटमें से मल निकल आवे तो साधुको अंतरायका कारण हो जाता है।

(२०) प्रस्रवणनामक अंतराय:—भोजन करती हुई दशामें मूत्रादिका निकल आना प्रस्रवणनामक अन्तराय है।

(२१) अभोज्यगृहप्रवेशनामक अंतराय:—जिस घरमें भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिये ऐसे चण्डाल आदिके घरमें चर्या करते हुए यदि साधु प्रवेश करजाय तो वह प्रवेश भोजनके लिये अन्तराय कारक होता है।

(२२) पतननामक अंतराय:—भोजन लेते समय यदि मूर्च्छादिकसे पतन हो जाय तो वह अंतराय कारक है।

(२३) उपवेशन नामान्तराय:—भोजन ग्रहण करते २ नीचे बैठ जाना भोजनमे विघ्न कारक बात है।

(२४) दंष्टनामक अन्तराय:—चर्याके समय कुत्ते आदि प्राणीके द्वारा काटा जाना दंष्ट अन्तराय है।

(२५) भूमिस्पर्शनामक अंतराय:—सिद्धभक्ति आदि क्रियाओंको करते हुए यदि भूमिका स्पर्श हो जाय तो वह अंतराय कारक होता है।

(२६) निष्ठीवननामक अंतराय:—कफ आदि मलोका भोजन करते २ निकल आना निष्ठीवन अंतराय कहलाता है।

(२७) उदरकृमिनिर्गमननामक अंतराय:—आहार लेते हुए यदि

पेटमे से कीड़े निकल आवे तो साधु उसके बाद भोजन ग्रहण नहीं करता है।

(२८) अदत्तनामक अंतराय —अदत्तका अर्थ है जो नहीं दिया गया हो, ऐसे पदार्थको ले लेना अदत्तग्रहण नामका अंतराय कहलाता है।

(२९) शस्त्रप्रहारनामक अंतरायः—तलवार आदि हथियारोंसे साधुके ऊपर या उसके ही सामने अन्य किसी प्राणीपर आघात होवे तो उसके बाद साधु भोजन ग्रहण नहीं करता। इसका कारण इस क्रियाका होना है।

(३०) ग्रामदाहनामक अन्तराय—भोजनकी चर्या समय या आहार लेते समय भयंकर आगका उपद्रव होना, ऐसी आगका लग जाना जिससे समूचे गांव या उसके एक बड़े भारी भागके जलनेकी शंका हो ग्रामदाह नामक अंतराय कहलाता है।

(३१) पादग्रहण नामक अंतरायः—नीचे पड़ी हुई वस्तुको पैरसे उठाना पादग्रहण अंतराय है।

(३२) हस्तग्रहणनामक अंतराय—जमीनके ऊपर गिरी हुई वस्तुको हाथसे उठाकर भोज्यमे रख लेना हस्तग्रहण नामक अंतराय कहलाता है।

सूत्र—अन हतस्तब्धप्रविष्टपरिपीडितदोलायिताङ्कुशितकच्छपरिङ्गतमत्स्योद्वर्त्त मनोदुष्टवेदिवद्धभयविभ्यत्ताऋद्धिगौरवस्तेनितप्रतितीतप्रदुष्टतर्जितशब्दहेलित त्रिवलितकुञ्चितदृष्टादृष्टसंघकर्मोचनालब्धहीनोत्तरचूलिकामूकदर्दुरसुललिता वदनादोषाः ॥५॥

अर्थ—इस सूत्रमे साधुके छह आवश्यक गुणोमे से वन्दना नामक गुणके बत्तीस दोष बतलाये गये हैं। वन्दनामे असंयमसे ग्लानि करने वाले, पंच महाव्रतोसे युक्त, धैर्ययुक्त, आगम की प्रभावना करनेमे सतत तत्पर रहनेवाले, क्षमा आदि गुणोसे मंडित, ध्यानाध्ययनमे तत्पर तथा चारित्रके अनुष्ठानमे सावधानीके साथ प्रवृत्ति करनेवाले

सच्चे निर्ग्रन्थ साधुओंकी स्तुतिकी जाती है वे ही वन्दनीय हैं। वन्दनाकी जो रीति बतलाई है वैसी न करके उसमें शिथिलतासे प्रवृत्ति करना दोष है। दोषोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) अनादृतनामक वंदनादोष (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले प्रत्येक नामके साथ "नामक वन्दनादोष" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) स्तब्ध (३) प्रविष्ट (४) परिपीडित (५) दोलायित (६) अंकुशित (७) कच्छपरिङ्गित (८) मत्स्योद्वर्तन (९) मनोदुष्ट (१०) वेदिबद्ध (११) भय (१२) बिभ्यत्ता (१३) ऋद्धिगौरव (१४) गौरव (१५) स्तेनित (१६) प्रतिनीत (१७) प्रदुष्ट (१८) तर्जित (१९) शब्द (२०) हीलित (२१) त्रिवलित (२२) कुंचित (२३) दृष्ट (२४) अदृष्ट (२५) संघकरमोचन (२६) आलब्धदोप (२७) अनालब्ध (२८) हीन (२९) उत्तरचूलिका (३०) मूक (३१) दर्दुर दोप (३२) सुललित नामक दोष।

(१) अनाहृतनामक वन्दनादोषः—उचित आदर एवं मानके बिना जो क्रियाओंका करना है सो दोषका कारण है।

(२) स्तब्ध नामक दोषः—विद्या आदिके गर्वसे उद्धता एवं उद्दण्डसे होते हुए वन्दना संबंधी क्रियाओंका करना-स्तब्ध दोष है।

(३) परिपीडित नामक दोषः—हाथ एवं घुटनोंके प्रदेशोंको छूते हुए वंदना करना परिपीडित दोप कहलाता है।

(४) प्रविष्ट नामक दोषः—जो वंदनासंबंधी क्रियाओंका पंच परमेष्ठियोंके अत्यन्त समीपमें जाकर करना है सो प्रविष्टनामक दोष है।

(५) दोलायित नामक दोषः—वंदनासंबंधी क्रियाओंका चलाचल अस्थिर या डांवाडोल मनसे करना दोलायित दोष कहलाता है।

(६) अंकुशितनामक दोप.—अंकुशके समान भालस्थलमें हाथकी अंगुलियों और अंगूठोंको लगा वन्दनाक्रिया करना अंकुशित दोप है।

(७) कच्छपरिङ्गितनामक दोषः—कटिभाग पर्यन्त जो कछुएके समान होकर वन्दनाक्रियाका करना है सो कच्छपरिङ्गित दोप है।

(८) मत्स्योद्वर्तनामकदोषः—पार्श्वयुगल या दोनों भजुओंसे वन्दना करना अथवा मछलीके समान कमरके हिस्सेको गोलकर वन्दना करना ।

(९) मनोदुष्टनामक दोष —संक्लेश युक्त मनमे वन्दना क्रियाका करना अथवा मनमे कुटिलता और दुष्टता रखते हुए आचार्योंकी वंदना करना मनोदुष्ट दोष है ।

(१०) वेदिकाबुद्धनामक दोषः—अपने दोनो घुटनोको स्तन प्रदेश के पास लेजाकर दोनो हाथोकी जालीसे लपेट कर तथा वेदिका जैसे होकर वन्दना करना वेदिकावद्ध दोष कहलाता है ।

(११) भयदोषनामक वन्दनादोष —भयका अर्थ डर है । वह भी साधारण भय नहीं मरणसम्बन्धी डर उससे भयभीत होते हुए जो वंदना आदिक क्रियाका करना है सो भय नामक दोष है ।

(१२) बिभ्यतादोष—गुरु आदिकसे डरता हुआ जो परमार्थसे पराङ्मुख बाल स्वरूप मिथ्या वेषधारीकी वन्दना आदिक करना विभ्यत्तादोष कहलाता है ।

(१३) ऋद्धिगौरवनामक दोष—वन्दना करनेकी भावना पहिले न रखते हुए किन्तु बादमे ऐसा सोच कर कि महान विस्तारसे युक्त चतुर्वर्ण श्रमणसंघ मेरे प्रति श्रद्धाभाव रखने लगेगा ऐसा ख्याल कर वन्दना आदि करना ऋद्धि गौरव दोष है ।

(१४) गौरव दोष.—आसन आदिके द्वारा अपने बडप्पन या हत्त्वको बतला बन्दना करना अथवा रस गौरव और साता गौरवकी प्राप्तिमे कारणीभूत बन्दना होती है ऐसी लोभ या स्वार्थ मयी भावना रख वन्दना करना गौरव दोष है ।

(१५) स्तेनित नामक दोष.—चौर बुद्धि से, गुरु आचार्य आदि न जान पाये इस प्रकार पर्देके भीतरसे या दूसरेकी वन्दनाको चुरा कर स्वयं वन्दनादिक क्रियाका करना स्तेनित दोष है ।

(१६) प्रतिनीत नामक दोष.—देव गुरु आदि वन्दनीय पूज्योसे

प्रतिकूप होकर जो वन्दना आदिकका करना है सो प्रतिनीत दोष है।

(१७) प्रदुष्ट नामक दोषः—दूसरोंके साथ बहुत जोरका वैर लड़ाई या दुश्मनी करके, तथा क्षमायाचना न कर जो वन्दना सम्बन्धी क्रिया कलापोंका करना है सो प्रदुष्ट दोष है।

(१८) तर्जितदोषः—दूसरोंको भय पैदा करते हुए यदि वन्दना की जाती है वह तर्जित दोष पूर्ण होती है अथवा आचार्य आदिकके द्वारा अंगुली आदि बतला कर डांटा गया "यदि नियमादिकका पालन नहीं करोगे तो तुमको संघसे निकाल बाहर कर दिया जायगा" और इसके बाद वन्दना आदि क्रियाका करना तर्जित दोषसे पूर्ण कहलाता है।

(१९) शब्द दोष या शाठ्यदोषः—मौन रखनेके लिये आदिष्ट व्यक्ति यदि (वह) मौनका परित्याग कर शब्दोच्चारण पूर्वक वन्दना करता है तो उसकी वह वन्दना शब्द दोष युक्त कहलायगी। जहां शाठ्य दोषका ग्रहणहोगा वहां मायाके प्रपंच सहित वंदना करना दोष है ऐसा अर्थ लगाना होगा।

(२०) हेलित दोषः—अपने वचनोंके द्वारा पूज्य वंदनीय आचार्यादिकोंकी पहिले जो खिल्ली उड़ाता है या उनका अपमान करता है और फिर वन्दनादिक क्रियाको करता है वह हेलित दोषका भागी होता है।

(२१) त्रिवलित दोषः—शरीरके कमर, हृदय और ग्रीवा भागोंमे टेढापन लाते हुए अथवा ललाट देशमे तीन सिकुड़ने लाकर और भौहोंको चढ़ाकर वन्दना करना।

(२२) कुंचित दोषः—सिकुड़ाये हाथोंसे शिरको छूते हुए वन्दना करना अथवा दोनो घुटनोंके बीचमे शिर करके और शरीरको सिकुड़ाते हुए वन्दना करना कुंचित दोष वाली वन्दना कहलाती है।

(२३) दृष्ट दोषः—जब आचार्यादिक वंदनीय पुरुष देख रहे हों तब तो समीचीन रूपसे तथा जब ध्यान नहीं दे रहे हों तब अपने मन माफिक दिशा विदिशाओंमे देखते हुए वन्दनासंबंधी क्रियाओंका करना

दूसरोंकी आवाजको दबाते हुए, जोरको कलकलको चिल्लपौं मचाते हुए आचार्यादिकोंको वन्दना करना, दुर्दर दोष है ।

(३२ सुललित नामक दोषः—किसी एक स्थानमें खड़े होकर हाथोंके द्वारा बनाये गये कमलकी घोड़ी (कुड्मल) की आकृतिको घुमा कर जो बैठे हुए सब पूज्य पुरुषोंकी वन्दना अच्छे सुन्दर पञ्चम स्वरसे वन्दना करना सुललितदोष है । इन उपरिवर्णित बत्तीस दोषोंसे रहित जो वन्दना सम्बन्धी कृति कर्मोंको करता है ऐसा साधु विपुल कर्मों की निर्जरा करनेवाला होता है ।

सूत्र—घोटकलतास्तम्भपट्टकमाल शृंखलितशबरीलम्बितोत्तरितस्तनोन्नतिवायसखलीनितयुगकपित्थशीर्षकम्पनमूकितांगुलीभ्रूक्षेपोन्मत्तग्रीवोर्ध्वनयनग्रीवाधोनयननिष्ठीवनवपुःस्पर्शन्यूनत्वदिगवेक्षणमायाप्रायास्थितिवयोऽपेक्षाविवर्जनव्याक्षेपासक्तचित्तत्वकालापेक्षाव्यतिक्रमलोभाकुलत्वमूढत्वपापकर्मैकसर्गिताः कायोत्सर्गदोषाः ॥६॥

अर्थ—मुनियोंके छह आवश्यकोंमेंसे छटवे आवश्यक का नाम कायोत्सर्ग है । शरीर आदिसे ममता त्याग करते हुए खड़े होकर या पद्मासनादि आसनोंसे बैठ-कर आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें प्रयत्नशील होना कायोत्सर्ग है । साधुको चाहिये कि दोष रहित कायोत्सर्गका आचरण करे । इस सूत्रमें कायोत्सर्ग सम्बन्धी दोषोंको गिनाया गया है । उनकी संख्या बत्तीस है और नाम अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

(१) घोटक दोष (२) लता दोष (३) स्तम्भ दोष (४) पट्टक दोष (५) माल दोष (६) शृंखलित दोष (७) शबरी दोष (८) लम्बित दोष (९) उत्तरित दोष (आगे के नामोंमें भी "दोष" शब्द मिला लेना चाहिये) (१०) स्तनोन्नति (११) वायस (१२) खलीनित (१३) युग (१४) कपित्थ (१५) शीर्षकम्पन (१६) मूकित (१७) अंगुली (१८) भ्रूक्षेप (१९) उन्मत्त (२०) ग्रीवोर्ध्वनयन (२१) ग्रीवाधोनयन (२२) निष्ठीवन (२३) वपुःस्पर्श (२४) न्यूनत्व (२५) दिगवेक्षण (२६) मायाप्रायास्थिति (२७) वय-अपेक्षा विवर्जन (२८) व्याक्षेपासक्तचित्तत्व (२९) कालापेक्षाव्यतिक्रम

(३०) लोभाकुलत्व (३१) मूढ़त्व (३२) पापकर्मैकसर्गता ।

(१) घोटकनामक दोष—घोड़ा जैसे एक पैर उठाकर तथा एक पैरसे जमीनको छूकर खड़ा रहता है उसी प्रकार कायोत्सर्गमें खड़े रहना घोटक नामक दोष है। यह कायोत्सर्ग सम्बन्धी पहिला दोप है।

(२) लतानामक दोप—जैसे हवाके वेगसे लतिकाएं (बेलें) यहां वहा हिलतोरहती है वैसे ही कायोत्सर्गमे आंगोपाङ्गोको हिलाते झुलाते रहना लतादोप कहलाता है। इन्हीं दोपोंको कायोत्सर्गमल भी कहते हैं ।

(३) स्तम्भनामक दोप—स्तम्भका अर्थ खम्भा है। खम्भेका सहारा लेकर कायोत्सर्गमें खड़े रहना स्तम्भनामक दोप कहलाता है। स्तम्भका तो मात्र उल्लेख किया गया है, उसके साहचर्यसे कुड्यादिका, भी ग्रहण कर लेना चाहिये, उनका सहारा लेना ।

(४) पट्टकनामक दोप—पाटा, चटाई आदिपर चढ़कर कायोत्सर्ग करना पट्टक दोष कहलाता है।

(५) मालानामक दोप—शिरके ऊर्ध्व भागमे फूलोंकी माला या सूतकी जाप आदि डालकर कायोत्सर्ग करना मालानामक दोप है।

(६) शृंखलितनामक दोप—जैसे लोहेकी साकलोंसे जकड़े हुए पैर रहते हैं वैसे जकडे हुए जैसे पैरोंको करके कायोत्सर्ग करना शृंखलित दोष है।

(७) शबरीनामक दोप—जैसे वन प्रदेशमे रहने वाली भिल्लनीं गुह्य देशको हाथोंसे या जघन प्रदेशकी जंघाओंसे कसकर खड़ी होती है वैसे दोनों जंघाओंको करके कायोत्सर्गमे स्थिर होना, शबरी दोष कहलाता है।

(८) लम्बित नामक दोप—कायोत्सर्गमे खड़े होकर शिरको लम्बा करके जो प्रणाम करना सो लम्बित दोप है।

(९) उत्तरितनामक दोष—शिरको ऊंचा करके उसे झुकाना, कायोत्सर्ग सबंधी उत्तरित दोप कहलाता है।

(१०) स्तनोन्नतिनामक दोष:—बच्चे वाली स्त्री जैसे अपने बच्चे को दूध पिलानेके लिये (अपना) स्तन उठा खड़ी होती वैसे ही कायोत्सर्गमें स्थित व्यक्तिके द्वारा सीना निकालकर खड़ा होना स्तनोन्नति दोष कहलाता है।

(११) वायसनामक दोष—कौआ जैसे आंखको यहां वहां चला कर तिरछेपनसे देखता है इसी प्रकार कायोत्सर्गमे स्थित व्यक्तिके द्वारा जब तिरछे रूपसे देखनेका प्रयत्न किया जाता है तब वायसनामक दोष-की उपपत्ति वहां बैठती है।

(१२) खलीनित नामक दोष:—घोड़ा जैसे लोहेकी लगामको मुंहसे चबाकर कट कट करता रहता है तथा ऊचा नीचा शिर भी हिलाता है उसी तरह कायोत्सर्गमे स्थित रहते हुए दांतोंको कट कटाना तथा शिरको ऊंचा नीचा करना खलीनित दोष कहलाता है।

(१३) युगनामक दोष:—जिसके कंधौर (स्कंधदेश) पर जुंआरी-रक्खी हुई हो ऐसे बैल जैसे अपनी ग्रीवाको फैला या लम्बा कर लेता वैसे ही कायोत्सर्गमे स्थित व्यक्तिके द्वारा ग्रीवाको लम्बायमान करना युगनामक दोष है।

(१४) कपित्थनामक दोष:—कायोत्सर्गमे कैंथ या कवीटके समान गोल कसी हुई मुट्ठी करके खड़े होना कपित्थ नामक दोष कहलाता है।

(१५) शीर्षकम्पननामक दोष:—कायोत्सर्गमे स्थिर या खड़े रहते हुए शिरको हिलाना शीर्षकम्पन दोष है।

(१६) मूकितनामक दोष - जैसे गूंगा आदमी अपने मुख नासिका आदिके विकारोंको करता है वैसे ही कायोत्सर्गमे स्थित व्यक्तिके द्वारा अपने मुख नासिका आदिके विकारोंका करना मूकित दोप है। मूक गूंगेका पर्यायवाची है।

(१७) अंगुलीनामक दोष:—कायोत्सर्गमे स्थित होते हुए अंगुलियोंसे गिनना, अंगुली दोष है।

(१८) भ्रूक्षेपनामक दोष:—जिस समय कायोत्सर्ग कररहे हो

उस समय जो भौंहोंको मटकाना या यहां वहां चलाना सो भ्रूक्षेप कहलाता है।

(१९) उन्मत्त नामक दोष.—जसे शरावका पीने वाला शराबी बदहोश होता हुआ यहा वहा चक्कर काटता है इसी प्रकार कायोत्सर्गमे खड़े होते हुए यहा वहां टकराते हुए चक्कर खाते फिरना, उन्मत्त दोष है। उन्मत्तका अर्थ पागल, बुद्धि खराब वाला नर है।

(२०) ग्रीवोर्ध्वनयननामक दोष--कायोत्सर्गमे खड़े रहते हुए नाना प्रकारसे ग्रीवाको ऊचा उठाना ग्रीवोर्ध्वनयन दोप कहलाता है।

(२१) ग्रीवाधोनयननामक दोप--जसे ग्रीवाको ऊचा उठाना दोप है उसी प्रकार नाना प्रकारसे ग्रीवाको नीचा करना ग्रीवाधोनयन दोप है।

(२२) निष्ठीवननामक दोप—कायोत्सर्ग करते हुए मुंहसे कफ, थूक, खकार आदि निकालना निष्ठीवन दोप है।

(२३) वपु स्पर्श—कायोत्सर्गकी दशामे शरीरको स्पर्श करना वपुस्पर्श दोप कहलाता है।

(२४) न्यूनत्वनामक दोप--कायोत्सर्गके लिये जितने उच्छ्वासादिकोका समय निर्धारित है उसमे भी कम समय तक कायोत्सर्ग करना न्यूनत्व दोप है।

(२५) दिगवेक्षण नामक दोप--कायोत्सर्ग करते हुए दिशाओमे यहा वहां देखते रहना दिगवेक्षण दोप है।

(२६) मायाप्रायास्थितिनामकदोप:--मायाका अर्थ छल कपट है। कायोत्सर्ग करते हुए नाना प्रकार की माया, वञ्चना, छल आदि करना मायाप्रायास्थिति नामक दोप है।

(२७) वय-अपेक्षा-विवर्जन नामक दोप--वयका यहां अर्थ वृद्धावस्थासे है। वृद्धावस्थाके कारण कायोत्सर्गको छोड बैठना वयोपेक्षाविवर्जन दोप है।

(२८) व्याक्षेपासक्तचित्तत्व नाकक दोप:—कायोत्सर्ग करते हुए

मनको यहां वहां चलायमान करना व्याक्षेपासक्तचित्तत्व दोष है ।

(२९) कालापेक्षाव्यतिक्रमनामक दोषः—कायोत्सर्गमें कालकी अपेक्षासे उलट पुलट कर देना, उसमें व्यतिक्रम करना कालापेक्षाव्यतिक्रमदोष है ।

(३०) लोभाकुलत्वनामक दोषः—कायोत्सर्ग करते हुए लोभ या लालचके कारण मनमें आकुलता या चंचलताके भावोका आना लोभाकुलत्वदोष है ।

(३१) मूढत्वनामक दोष—कृत्य अकृत्यका कुछ भी विचार न करते हुए मूर्खताके साथ कायोत्सर्गकी क्रियाओका करना, मूढत्वदोष है ।

(३२) पापकर्मैकसर्गतानामक दोषः—कायोत्सर्गके प्रति विशेष अभिरुचि न रखते हुए, बड़े उत्साहके साथ पापके बढ़ाने वाले हिंसा असत्य, चौर्य आदिके साथ प्रवृत्ति करने लगजाना या उसके लिये तैय्यार हो जाना, पापकर्मैकसर्गता दोप है ।

इन बत्तीस दोपोसे रहित कायोत्सर्ग क्रियाका यदि सावधानीके साथ आचरण किया जाय तो साधक शीघ्र ही मुक्तिरमाको वर लेता है ।

सूत्र—कुमतिश्रुतावधिचक्षुरचक्षुर्दर्शनक्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्याणिचतुर्गतिचतुःकषायत्रिवेदाज्ञानासंयमासिद्धत्वषड्लेश्या जीवत्वभव्यत्वे सासादने भावाः ॥७॥

अर्थ—जीवके कुछ ऐसे भाव होते हैं जो सिर्फ जीवमे ही पाये जाते है अन्य अजीवादि पदार्थोंमें नहीं । ऐसे भावोकी संख्या त्रेपन है । सासादन नामक दूसरे गुणस्थानमे त्रेपन भावोमेसे बत्तीसभाव पाये जाते हैं । उनके नाम इस सूत्रमे बतलाये गये है । उनको अलग अलग इस प्रकार लिखा जासकता है:—

(१) कुमतिज्ञान (२) कुश्रुतज्ञान (३) कुअवधिज्ञान (४) चक्षुर्दर्शन (५) अचक्षुर्दर्शन (६) क्षायोपशमिक दान (७) क्षायोपशमिक लाभ (८) क्षायोपशमिक भोग (९) क्षायोपशमिक उपभोग (१०) क्षायोपश

मिक वीर्य (११) नरकगति (१२) तिर्यग्गति (१३) मनुष्यगति (१४) देवगति (१५) क्रोधकषाय (१६) मान कषाय (१७) माया कषाय (१८) लोभकषाय (१९) पुंवेद (२०) स्त्रीवेद (२१) नपुंसकवेद (२२) अज्ञान (२३) असंयम (२४) असिद्धत्व (२५) कृष्णलेश्या (२६) नील लेश्या (२७) कापोतलेश्या (२८) पीतलेश्या (२९) पद्मलेश्या (३०) शुक्ललेश्या (३१) जीवत्वभाव (३२) भव्यत्वभाव ।

सूत्र—सम्यङ्मिथ्यात्वे च ॥८॥

अर्थ—सम्यङ् मिथ्यात्व नामक तीसरे गुणस्थानमें भी उपरिलिखित (पूर्वसूत्रगत बत्तीसभाव पाये जाते हैं। इन बत्तीस भावोंको इस तरह भी गिना जा सकता है:—

(१–से १० तक) क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेदों में से दश भेद—कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, क्षायोपशमिक दान, क्षायोपशमिक लाभ, क्षायोपशमिक भोग, क्षायोपशमिक उपभोग, क्षायोपशमिक वीर्य।

(११ से ३० तक) औदयिक भाव के इक्कीस भेदोंमें से बीस भेद—मनुष्यगति, देवगति, तिर्यग्गति, नरकगति, क्रोध, मान, माया, लोभ, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

(३१–३२) पारिणामिक भावके तीन भेदोंमें से दो भेद—जीवत्व, भव्यत्व।

सूत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा" इति द्वात्रिंशदक्षरविद्यामंत्रः ॥९॥

अर्थ—बत्तीस अक्षरोंवाला यह मंत्र है। इस मंत्रके जपनसे विद्याप्राप्तिमें सहूलियत होती है। मंत्र के बत्तीस अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:—

ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठ स र स्व ती भ ग व

ती वि द्या प्र सा दं कु रु कु रु स्वा हा ।

सूत्रः—मणिकार स्वर्णरत्नकास्यताम्रलोहारस्त्रशस्त्र वस्त्राचित्ररंगवीणेषुदण्डखड्गकृषिकुम्भतैलकोषकेशचर्मसूपपूपनृत्यकारवेधिकाकुहिकाशिल्पकागायिकास्वतंत्रिकानायिकादेहकासुयंत्रका व्यवहृताशिल्पिकाराः ॥१०॥

अर्थ—इस सूत्रमे उन बत्तीस प्रकारके व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है जिनके प्रति शिल्पिकारका व्यवहार किया जाता है। उनके अलग अलग नाम इसप्रकार से हैं:—

(१) मणिकार (२) स्वर्णकार (३) रत्नकार (४) कास्यकार (५) ताम्रकार (६) लोहकार (७) अस्त्रकार (८) शस्त्रकार (६) वस्त्रकार (१०) चित्रकार (११) रंगकार (१२) वीणाकार (१३) इषुकार (१४) दण्ड कार (१५) खड्गकार (१६) कृषिकार (१७) कुम्भकार (१८) तैलकार (१६) कोषकार (२०) केशकार (२१) चर्मकार (२२) सूपकार (२३) पूप कार (२४) नृत्यकार (२५) वेधिका (२६) कुहका (२७) शिल्पिका (२८) गायका (२६) स्वतंत्रिका (३०) नायिका (३१) देहका (३२) सुयंत्रका ।

(१) मणिकार—मूंगा, नीलम आदि मणियोंकी जो कांट छांट करते हैं, उनको स्वर्ण रजत आदि धातुओंके बीच जड़ते जड़ाते हैं, उन्हें मणिकार कहते है।

(२) स्वर्णकार—सुनार जो सोने चांदीके आभूषण बनाते हैं स्वर्णकार कहलाते है ।

(३) रत्नकारः—हीरा पन्ना आदि जवाहरातोंकी जो कांट छांट कर उन्हे सुन्दर बनाते हैं वे रत्नकार कहलाते हैं ।

(४) कांस्यकारः—कांस्यकार का पर्यायवाची कसेरा है जो कांसा नामक धातु के थाली कटोरी आदि बनाता है ।

(५) ताम्रकार—तमेरेको ताम्रकार कहते है। यह तामा नामक धातुके गुंडी आदि वर्तनोंको बनाते हैं।

(६) लोहकारः—लुहारका ही दूसरा नाम लोहकार है। लोहेकी

कड़ाई, झारे आदि वर्तनोको यह बनाता है।

(७) अस्त्रकार—जो ऐसे हथियारोको बनाते हैं जिन्हे फेककर उपयोगमे लाया जा सके वे अस्त्रकार कहलाते है।

(८) शस्त्रकार.—जो तलवार आदि जैसे हथियारोको वनाते है जिन्हे हाथमे लेकर ही प्रयोग किया जा सके।

(९) वस्त्रकार:—जो सूत आदिका ताना वाना पूर कर कपड़े बुनता है ऐसे जुलाहेको वस्त्रकार कहते है।

(१०) चित्रकार—नाना प्रकारके रगोकी सहायता लेकर तस्वीर बनाने वालेको चित्रकार या पेन्टर कहते हैं।

(११) रंगकार.—नाना प्रकार रंगोके मेलसे अन्य अनेको प्रकारके रंगोको बना कपड़े आदिके रंगने वालेको रंगकार कहते हैं।

(१२) वीणाकार—वेणु (बांस) की सहायतासे वीणा नामक वाद्य यंत्रको बनाने वाला वीणाकार कहलाता है।

(१३) इषुकार.—इषु का अर्थ बाण है। उसके बनाने वालेको इषुकार कहते है।

(१४) दण्डकार.—दण्डका अर्थ डंडा है। उसको बनाने वाला दण्डकार कहलाता है। ये पहाड़ी प्रदेशोमे अधिक पाये जाते हैं।

(१५) खड्गकार'—फौलाद आदि जैसे मजबूत धातुसे तलवार बनाने वालेको खड्गकार कहते हैं।

(१६) कृषिकार—कृषिकार किसानका पर्यायवाची है। जो हल बैल आदि कृषिके साधनोसे खेती करते हैं उन्हे कृषिकार कहते है।

(१७) कुम्भकार:—मिट्टीके बर्तन बनाने वाले कुम्हारका ही संस्कृत नाम कुम्भकार'—

(१८) तैलकार—तिल, गुली आदि तिलहनोंसे पेलकर तैल निकालने वालेको तेली या तैलकार कहते हैं।

(१९) कोषकार.—जिसमे रुपये पैसे आदि सुरक्षासे रक्खे जा सके, ऐसे तिजोड़ी आदिको बनाने वाले कोषकार कहलाते हैं।

(२०) केशकारः—केशको काटने वाले, उनको विविध प्रकारसे सजाने वाले जो होते हैं उन्हे केशकार कहते है।

(२१) चर्मकारः—चमड़ेके जूते, चप्पल, सूटकेस आदि बनाने वाले चमार चर्मकार कहलाते है।

(२२) सूपकारः—पंखा, सूपा, टोकनी आदि जिनसे बनाये जाते है ऐसे बांसोकी सहायतासे काम करने वाले सूपकार कहलाते हैं।

(२३) पूपकारः—पूप आदि सुव्यञ्जनोके बनाने वाले पूपकार हैं।

(२४) नृत्यकारः—विविध नृत्योके करने वालोंको नृत्यकार कहते हैं।

(२५) वेधिकाः—वेधनेवाले या सीने पिरोने वाले वेधिका है।

(२६) कुट्टकाः—वर्क आदि कूटकर बनाने वाले कुट्टका है।

(२७) शिल्पिकाः—अनेक शिल्पोके करने वाले शिल्पिका हैं।

(२८) गायकाः—गाने वाले गायका कहलाते हैं।

(२९) स्वतन्त्रियताः—स्वतन्त्रतासे शिक्षण आदि करने वाले हैं।

(३०) नायिकाः—किसी संग व्यवस्थासे निभा लेने वाले है।

(३१) देहकाः—देहकी विविध संभाल जानने करने वाले है।

(३२) सुयंत्रकाः—सुयन्त्रोके आविष्कारक हैं।

❀ तेतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्य-पर्याप्ताः जीवसमासाः ॥१॥

अर्थः—जीव समासके तेतीस भेद इस सूत्रमे गिनाये गये है नाम उनके अलग अलग इस प्रकार है:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त (३) बादर लब्ध्यपर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (५) सूक्ष्म पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त (६) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त (७) बादर अप् (जल) पर्याप्त (८) बादर अप् निवृत्यपर्याप्त (९) बादर अप् लब्ध्यपर्याप्त (१०) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (११) सूक्ष्म अप् निवृत्यपर्याप्त (१२) सूक्ष्म अप् लब्ध्यपर्याप्त (१३) बादर

तेज (आग) पर्याप्त (१४) बादर तेज निवृत्यपर्याप्त (१५) बादर तेज लब्ध्यपर्याप्त (१६) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१७) सूक्ष्म तेज निवृत्यपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेज लब्ध्यपर्याप्त (१९) बादर वायु पर्याप्त (२०) बादर वायु निवृत्यपर्याप्त (२१) बादर वायु लब्ध्यपर्याप्त (२२) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायु निवृत्यपर्याप्त (२४) सूक्ष्म वायु लब्ध्यपर्याप्त (२५) बादर वनस्पति पर्याप्त (२६) बादर वनस्पति निवृत्यपर्याप्त (२७) बादर वनस्पति लब्ध्यपर्याप्त (२८) सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त (२९) सूक्ष्म वनस्पति निवृत्यपर्याप्त (३०) सूक्ष्म वनस्पति लब्ध्यपर्याप्त (३१) त्रस पर्याप्त (३२) त्रस निवृत्यपर्याप्त (३३) त्रस लब्ध्यपर्याप्त ।

सूत्र—बह्वारंभपरिग्रहत्वे मिथ्यादर्शनश्लिष्टाचारतोत्कृष्टमानशिलाभेदसदृशरोषतीव्रलोभानुरागपापीयःप्राणिपोषणदीनभावपरपरितापातःप्रणिधानवधबंधनाभिनिवेशप्राणिभूतजीवसत्वाजस्त्रोपघातपरिणामप्राणिवधात्मकानृतवचनशीलतापरस्वहरणानिभृताभिष्वंगपरिणाममैथुनोपसेवनाविरतिमहारंभवशीकृतेन्द्रियताकामभोगाभिलाषप्रवृद्धतानैशील्यपापनिमित्ताहाराभिप्रायस्थिरवैरन्टशंसाऽसमीक्षितक्रंदनकारितानिरनुग्रहस्वाभाव्ययतिसमयभेदतीर्थंकरासादनकृष्णलेश्याभिजातरौद्रध्यानमरणकालत्वजातीयानारकायुराश्रवहेतवः ॥२॥

अर्थ.—नरक आयुका जिन कारणोंसे आश्रव होता है उन कारणोंको इस सूत्रमे गिनाया गया है । कारणोंकी संख्या तेतीस है, उनके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं --

(१) बहु आरंभत्व (२) बहु परिग्रहत्व (३) मिथ्यादर्शनश्लिष्टाचारता (४) उत्कृष्ट मान (५) शिलाभेदसदृशरोष (६) तीव्रलोभानुराग (७) पापीय प्राणिपोषण (८) दीनभाव (९) परपरितापात प्रणिधान (१०) वध अभिनिवेश (११) बंधन अभिनिवेश (१२) प्राणि-अजस्र उपघात परिणाम (१३) भूत अजस्र उपघात परिणाम (१४) जीव अजस्र उपघात परिणाम (१५) सत्व-अजस्र उपघात परिणाम (१६) प्राणवधात्मकानृतवचनशीलत्व (१७) परस्वहरण (१८) अनिभृताभिष्वंग परिणाम

(१६) मैथुनोपसेवन (२०) अविरति (२१) महारंभवशीकृतेन्द्रियता (२२) कामाभिलाषप्रवृद्धता तथा भोगाभिलाषप्रवृद्धता (२३) नैशील्य (२४) पापनिमित्ताहाराभिप्राय (२५) स्थिरवैर (२६) नृशंस (२७) असमीक्षितक्रंदनकारिता (२८) निरनुग्रहस्वाभाव्य (२६) यतिभेद (३०) समयभेद (३१) तीर्थंकरासादना (३२) कृष्णलेश्याभिजात (३३) रौद्रध्यानमरणकालताजाति ।

(१) बहु-आरम्भत्वनामक हेतुः—इस हेतुमें दिया हुआ बहु शब्द परिमाण विपुलता एवं संख्या विपुलता, दोनोंको ही व्यक्तकरता है। जिनमे हिंसा आदि दोष लगते हैं ऐसे हिंसनशील कामोंको आरम्भ कहते हैं। ऐसे बहुतसे आरम्भोंको करनेसे नरकायुका आश्रव होता है।

(२) बहुपरिग्रहत्वनामक हेतुः—यह मेरी वस्तु है, मैं इसका स्वामी हूं, इस प्रकारकी परवस्तुमें आत्मीयपने की भावना रखना परिग्रह है। यह भी नरकायुके आस्रवका कारण है।

(३) मिथ्यादर्शनश्लिष्टाचारतानामक हेतुः—मिथ्यादर्शनसे परिपूर्ण या ओतप्रोत आचार एवं क्रियाओंको करना। खान पान, चाल ढाल, चहल पहल आदि बातें आचारके अन्दर अन्तर्निहित हैं।

(४) उत्कृष्टमान नामक हेतुः—पाषाणके समान अत्यन्त तीव्र दर्जेका घमण्ड उत्कृष्ट मान कहलाता है। पाषाण (पत्थर) झुक नहीं सकता है, इतनेपर भी यदि उसे झुकानेकी चेष्टा की गई तो निश्चित है कि वह बीचमे से टूट जायगा, इसी तरहके तीव्रतर गर्व रूप परिणामोंका ग्रहण उत्कृष्ट मानके द्वारा होता है।

(५) शिलाभेदसदृशरोपनामक हेतुः- पत्थरके चट्टानपर खोदी गई लकीर बहुत समय तक बनी रहती है, वह जल्दी नहीं मिटती, इसीप्रकारके क्रोध रूप परिणाम जिसके पाये जाते हैं वह शिलाभेदसदृशरोपी कहलाता है, उसके हृदयमे उत्पन्न क्रोध रूप परिणाम जो पैदा होते हैं वे लम्बे समय तक के लिये स्थान बना लेते हैं, और वैर विद्वेषादि की विकट वन्हि मे जलता हुआ अन्त मे नरकायु का बन्ध करा देता है।

(६) तीव्रलोभानुरागनामक हेतुः—शास्त्रीय भाषामें इसे अनन्तानुबन्धी लोभके नामसे भी सम्बोधित कर सकते हैं। इस लोभकी तुलना लोकमे किरमिचके रंगसे की जाती है। किरमिचका रंग बडा ही गाढ़ा, पक्का होता है जिस कपड़े पर उसे चढ़ाया जाय वह फट जाय किन्तु रंग नहीं जाता है। ऐसी ही लोभ या लालचकी प्रवृत्ति तीव्र लोभ कहलाती है। इसके कारण प्राणी बहुत लम्बे समय तक, नरकायुका बन्धकर, उसमे निवास करता है।

(७) पापीयप्राणिपोषण नामक हेतु —जो हिंसादिक पाप करते है, मांसभक्षी है ऐसे शेर, चीना, रीछ, शिकारी कुत्ते, बिल्ली आदि पाप प्रवृत्ति करनेवाले प्राणियोको पालना, उनको लाड प्यारसे रख पोषण करना नरक आयुकी प्राप्तिमे कारण होता है।

(८) दीनभावनामक हेतु —अपने आपको नगण्य अति तुच्छ, दूसरोंकी दयापर आश्रित मानने वाला गरीब, अतिदीन कहलाता है। गरीबीसे युक्त होते हुए तज्जन्य (उससे पैदा होने वाले) परिणामोसे अपने हृदयको हमेशा ही आर्त्त रौद्र परिणामो युक्त बनाये रखना दीनभव नामक हेतु है।

(९) परपरितापन्त प्रणिधान नामक हेतु —अपने हृदयमे हमेशा ही, दूसरेको दुःख सक्लेशादि किस प्रकारसे हो जाय वह दुखित होता हुआ यहां वहा दर दर की ठोकरे खाता फिरे. उसका धन नश हो जाय आदि रूपं, परिणाम पैदा करते रहना, नरकायुका कारण होता है।

(१०) वध अभिनिवेश नामक हेतु —दूसरे प्राणियोके प्राणो के हरण करनेकी भावना उनको कत्ल करने के खोटे विचार सर्वदा हृदयमे रखना वध-अभिनिवेश कहलाता है। ऐसे अभिनिवेशो (खोटे अभिप्रायो) से नरकायु की प्राप्तिमे सहायता मिलती है।

(११) बन्धनअभिनिवेशनामक हेतु—दूसरोंको दासताकी शृंखलामे जकड़ कर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करना, दूसरोके हाथ पैर आदिके बन्ध जानेपर खुशी मनाना, ऐसे प्रयत्न करना जिससे अन्य प्राणी

जेल आदिके बन्धनमे बन्ध जाय आदि इसी तरह की बातें बन्धन अभि-निवेशके अन्तर्गत आती है।

(१२) प्राणि-अजस्र- उपघात परिणामनामक हेतुः—जिनके संयोग रहते हुए जीवित और वियोगकी दशामे मृत कहलाता है जीव, उन्हे प्राण कहते है। ऐसे प्राणोंसे युक्त जीवके मारनेके लिये निरन्तर खोटे परिणामों या विचारोंका रखना प्राणि-अजस्र उपघात परिणाम कहलाते हैं। इनसे भी नरकायुकी प्राप्ति होती है।

(१३) भूत-अजस्र-उपघातपरिणाम नामक हेतुः—एकेन्द्रियादिक जीवोंसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव भूत कहलाते हैं। उनको मारनेके हृदयमें सतत विचार रखना नरकायु की प्राप्ति में कारण होता है।

(१४) जीव-अजस्र-उपघात-परिणामः—जो जीवित हो, जानने देखने की शक्तिसे युक्त हो, उन्हे जीव कहते हैं। अपने मनमानसमें सतत ऐसे कुविचारोंको रखना जिनसे जीवोंका विघात हो, जीव उप-घात परिणाम कहलाता है। नरकायुका यह भी कारण है।

(१५) सत्त्व-अजस्र-उपघातपरिणाम नामक हेतुः—'कर्मोदयात् नानायोनिषु सीदन्ति इति सत्त्वा'' कर्मोके परिणामस्वरूप जो नाना प्रकारकी चौरासीलाख योनियोमे दुःख भोगते फिरते है उन्हें सत्त्व कहते है, ऐसे सत्त्वोंको संतप्त तथा संक्लेशित करनेके परिणाम हृदयमें रखना सत्त्व उपघात परिणाम कहलाता है।

(१६) प्राणवधात्मक-अनृतवचनशीलता नामक हेतुः—ऐसे भद्दे, असमीचीन तथा हृदयपर वज्रके समान आघात करनेवाले झूठ वचनोंको बोलना जिससे प्राणोपर भी आ बने, उनके निकलनेकी नौबत आ जाय, नरकके द्वार खोलने तथा उसमे प्रवेश कराने वाले हुआ करते है।

(१७) पर-स्व-हरण नामक हेतुः—स्वका अर्थ है धन, शास्त्र-कारोंने लोकधर्मके अनुसार इसे ग्यारहवॉ प्राण कहा है। दूसरे व्यक्ति-के धनको चुरा लेना, लूट लेना तथा उसे अति दुःखी बना देना,

नरकप्राप्तिमें निमित्त होता है ।

(१८) अनिभृताभिष्वंगपरिणाम नामक हेतु—काम सेवनके प्रति इतने बेहाल बने रहना जिससे साधारणजन भी उसकी ओर अंगुली उठाने लग जाय कि अमुक अति कामुक या व्यभिचारी है । इस प्रकार सरे आम कामसेवनके प्रयत्नमे सतत संलग्न रहना, वैसे परिणाम रखना नरकायुके आश्रवोमे से एक है ।

(१६) अविरतिनामक हेतु—विरतिका अर्थ त्यागसे है, किसीसे उदासीन होनेसे है । हिसादिक पापोसे विमुख होना, उदासीन होना या उनका त्याग करना विरति है । ऐसी विरतिका सर्वथा अभाव पाया जाना, इन्द्रियोकी उच्छृंखल प्रवृत्तिके कारण स्वैराचारपूर्वक प्रवृत्ति करना तथा हिसादि कृत्योके करनेमे न हिचकना तीव्र अविरति रूप परिणाम कहलाते हैं । इनसे नरकायुकी प्राप्ति होना एक प्राकृतिक बात है ।

(२०) महारंभवशीकृतेन्द्रियता नामक हेतु—जिससे अल्पफल और बहुजीवघात होता है ऐसे हिंसादिमे सने हुए काम महारंभ कहलाते हैं । उनमे अपनी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति करना, उनको उस कामके आधीन कर देना महारंभवशीकृतेन्द्रियता कहलाती है ।

(२१) कामाभिलाषप्रवृद्धतानामक हेतु—काम और मैथुन पर्याय-वाची शब्द हैं । स्त्री और पुरुषको परस्परमे मिल विषयभोगके सेवनकी इच्छा होना मिथुन है और उसका करना मैथुन है । इसकी मनमे तीव्र लालसा या इच्छा हो जाय तो भी नरकायुकी प्राप्ति होती है ।

(२२) भोगाभिलाषप्रवृद्धता नामक हेतु—भोगोके सेवन करनेकी जो अभिलाषा या जोरकी इच्छा है, उसके बढ़ जानेको भोगाभिलाष-प्रवृद्धता कहते है । भोगका अर्थ यहां इन्द्रियके विषयोसे है ।

(२३) नैशील्यनामक हेतु—शीलका अर्थ है, तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत रूप, सप्त शील । इसमे इनके अतिरिक्त सदाचार, विनय, गुरुजनोके प्रति आदर भावादिरूप बाते भी गर्भित हैं । इन बातोंसे

बिल्कुल दूर रहते हुए जो बेलगाम करके इन्द्रियरूपी घोड़ोंको यहां वहां फिरने देना है इसीका नाम नैःशील्य है। निःशीलता नरक दिलानेमें या प्राप्त करानेमे निमित्त होती है।

(२४) पापनिमित्ताहाराभिप्रायनामक हेतु.--जिसमे बहुतसे जीवों का घात होता हो ऐसे मांस, अण्डे वाला त्रस जीवोंसे परिपूर्ण आहार को खाना, उसके ग्रहण करनेके लिये इच्छा प्रयत्नादि करना आदि बातें भी नरकायुके आस्रवके कारण है, इसका कारण स्पष्ट ही है कि ऐसे आहारकी तैय्यारीमे पापपूर्ण काम करने पड़ते हैं। और वे अधो-गतिके कारण होते हैं।

(२५) स्थिरवैर नामक हेतुः—बहुत समय तक जिसका हृदयपर असर बना रहे ऐसा क्रोध व वैरभावका होना नरकायुका कारण है। ऐसे भावोंसे मन सदैव कलुषित रहता है।

(२६) नृशंसभावनामक हेतुः—इससे उन निर्दयतापूर्ण भावोंकी ओर संकेत मिलता है जिनमे स्नेह, सहानुभूति, अनुकंपादिका सर्वथा अभाव पाया जाता है। ऐसे प्राणीके चेहरेसे क्रूरता टपकती सी दिखाई पड़ती है। उसकी आंखे लाल २ भोंहे चढ़ी हुई भयोत्पादनी होती है।

(२७) असमीक्षितक्रंदनकारिता नामक हेतु.—बिना सोचे विचारे बिछोह या वियोगमे प्रायः रोतेसे रहना, ममताकी मादक मदिरासे अपनी मतिको विकारी बनाकर हमेशा संक्लेशित रहना, हाय सांस लेते रहना आदि क्रियाएं असमीक्षितक्रंदनकारितामे गर्भित हैं।

(२८) निरनुग्रहस्वाभाव्य नामक हेतुः—दूसरे व्यक्तिने कोई भलाई या उपकार किया हो उसका विलकुल भी अहसान न मानते हुए अक्खड़पनेसे पेश आना, दूसरेकी भलाई या अच्छाई भी की जाती है इसका कभी जीवनमे अनुभवन न करके हमेशा दूसरोंके प्रति दुर्व्यवहारादि करना निरनुग्रहस्वाभाव्य कहलाता है। इससे अधोगतिकी प्राप्ति होती है।

(२९) यतिभेदनामक हेतु.--जो निर्ग्रन्थ है, इन्द्रिय विजयमे

प्रयत्नशील हैं ऐसे यतियोके कानोमे कानाफूंसी करके, उसके हृदयको कलुपित करके वैमनस्य पैदा कर देना यति भेद कहलाता है। ऐसी कलह पैदा करनेमे कलहोत्पादक व्यक्ति अनेक प्रकार असत्यो, माया और छलसे भरे वचनोको बोलता है जो कि नरकायुके कारण होते हैं।

(३०) समय भेद नामक हेतु — समयका अर्थ है आगम ग्रंथ, प्राणी-उपकारी, हित-मार्ग-दर्शक शास्त्र। ऐसे शास्त्रोके शब्दोमे, -उनके विराम चिन्हादिकोमे हेर फेर करके उन्हे परस्पर विरोधी बतलाना, अग्राह्यता पैदा करना आदि बाते समय भेदके अंतर्गत आती हैं। इससे भी नरकायुका बध होता है कारण कि सन्मार्गसे विचलित कर पतनकी ओर प्राणीको अग्रसर किया जाता है।

(३१) तीर्थंकर आसादना नामक हेतु —जिससे प्राणी तिर जाता है, संसार समुद्रका संतरण कर शाश्वत सुखके स्थानमे जा विराजमान हो जाता है उसे तीर्थ कहते है। ऐसे तीर्थका प्रवर्तन करने वाले, पंच-कल्याणक प्राप्त, परम वीतरागी, सर्वज्ञ, अनंतवीर्य, सुख आदि गुणोसे समृद्ध भगवान तीर्थंकर कहलाते हैं। उनके विषयमे भी झूंठी कपोल कल्पित बाते फैलाना, मिथ्या दोपोका आरोपण करना उनकी आसादना कहलाती है। इससे नरकायुकी प्राप्ति होती है।

(३२) कृष्णलेश्याभिजातपरिणाम नामक हेतु —अत्यन्त तीव्रता को लिये हुए क्रोध, मान, माया, लोभादि रूप परिणामोका होना कृष्णलेश्या परिणाम हैं। इससे अभिभूत प्राणी तत् तत् कपायोके वशमे होता हुआ उसकी पराकाष्टा या अंतिम सीमाको प्राप्त कर लेता है। फिर परिणामका कुछ भी विचार न करते हुए कपायकी पूर्तिमे लग जाता है। ऐसे परिणामोसे भी नरकायुकी प्राप्तिमे सहायक होने वाले कर्मपरमाणुओका आश्रव होता है।

(३३) रौद्रध्यानमरणकालता तथा एवं जातीय अन्य परिणाम.— सांसारिक जनोमे एक उक्ति कही जाती है कि "अंत सुधरा तो सब सुधरा" तात्पर्य यह है कि मरण कालका जीवनमें अति महत्व है।

यदि उस मरणकालके अवसरपर प्राणीके हृदयमें रौद्रध्यान पाया जाय तो निश्चित है कि उसके मनमे उद्विग्नता, अशान्ति और परिणामोमे घबराहट होगी। ऐसे परिणामोका फल भी सुनिश्चित है कि वह अधोगतिका भागी होगा।

रौद्रध्यानमे प्राण के विचारोका प्रवाह हिंसा असत्यादिके कार्योंकी ओर जोरोसे बहता है, वह उनमे दिलचस्पी लेता है, उसकी पूर्तिके लिये प्रेरणा करता है तथा काम पूरा हो जानेपर आनंदित होता है। वह भूल जाता है कि दूसरेके लिये गड्ढा खोदना, स्वयके पतनकी भूमिकाका निर्माण करना है। इसलिये ये और इन्हीसे मिलते जुलते अन्य परिणाम यदि नरकायुकी प्राप्तिमे सहायक हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। भावना जहां भवनाशिनी होती है वहां कुभावनाका भववर्धिनी होना स्वाभाविक ही है।

सूत्र—'ॐ ह्री हू ं आ श्री क्रौ क्ली सर्वदुरितसंकट क्षुद्रोपद्र व कष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा' इति सर्प विषवारणतत्कीलन निमित्तः त्रयस्त्रिंशदक्षर विद्यामन्त्रः ॥३॥

अर्थः—मंत्रोमे से यह सर्पविद्या संबंधी मन्त्र है। इस मंत्रके जपन से जहां सर्प संबधी विपको दूर करनेमे सहायता मिलती है, वहीं इसकी सहायतासे उसका कीलन भी हो जाता है। कीलनका अर्थ है कि जिस स्थानपर सर्प रहता है उस स्थानसे सर्प आगे पीछे या अन्य किसी स्थानपर नही जा पाता है। इस सर्प वशीकरण मंत्रमे तेतीस अक्षर है। अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे है—

ॐ ह्रीं ह्रू ं स आं श्री क्रौ क्लीं स र्व दु रि त सं क ट क्षु द्रो प द्र व क ष्ट नि वा र णं कु रु कु रु स्वा हा।

सूत्र—ॐ नमः श्री मणिभद्र जय विजय अपराजित सर्व सौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा इति तन्त्रनिमित्तः ॥४॥

अर्थः—तन्त्र शास्त्रका यह तेतीस अक्षर वाला मंत्र है। इसके अलग २ अक्षर इस प्रकार हैं:—

ॐ न मः श्री म णि भ द्र ज य वि ज य अ प रा जि त स र्व सौ भा ग्यं स र्व सौ ख्यं कु रु कु रु स्वा हा।

❀ चौंतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—नरकद्विकैकद्वित्रिचतुरिन्द्रिय वज्रनाराचनाराचार्धनाराच कीलकसम्प्राप्तसृपाटिकासहनन न्यग्रोधस्वातिवामनकुब्जकहुँऽकसंस्थानाप्रशस्तविहायोगत्यातपोद्योतस्थावरदशकासातानपुंसकस्त्रीवेदारतिशोकाः सान्तरबन्धिन्यः प्रकृतयः ॥१॥

अर्थ—इस सूत्रमे उन चौंतीस कर्म प्रकृतियोका उल्लेख किया गया है, जिनका निरन्तर बन्ध नहीं होता है। ये प्रकृतियां तो वे हैं जिनका बन्ध अनन्तराल (समयका व्यवधान) से होता है। प्रकृतियोके नाम अलग अलग इस प्रकारसे हैं—

(१) नरकगति (२) नरकगत्यानुपूर्वी (३) ऐकेन्द्रिय प्रकृति (४) द्वीन्द्रिय प्रकृति (५) त्रीन्द्रिय प्रकृति (६) चतुरिन्द्रिय प्रकृति (७) वज्रनाराचसहनन (८) नाराच संहनन (९) अर्धनाराचसंहनन (१०) कीलक संहनन (११) असंप्राप्तसृपाटिका संहनन (१२) न्यग्रोधपरिमन्डल संस्थान (१३) स्वातिसंस्थान (१४) वामन सस्थान (१५) कुब्जक संस्थान (१६) हुंडक सस्थान (१७) अप्रशस्तविहायोगति (१८) आतप प्रकृति (१९) उद्योग प्रकृति (२०) स्थावर प्रकृति (२१) सूक्ष्म प्रकृति (२२) अपर्याप्त प्रकृति (२३) साधारण प्रकृति (२४) अस्थिर प्रकृति (२५) अशुभ प्रकृति (२६) दुर्भग प्रकृति (२७) दुस्वर प्रकृति (२८) अनादेय प्रकृति (२९) अयश कीर्ति प्रकृति (३०) असाता वेदनीय प्रकृति (३१) नपुंसक वेद (३२) स्त्रीवेद (३३) अरति नोकषाय प्रकृति (३४) शोक नोकषाय प्रकृति।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथव्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोद-प्रत्येक वनस्पतिद्वित्रिचतुपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥२॥

अर्थ—समस्त जीव राशिको चौंतीस खातोमे विभक्त करके विवेचित किया जा सकता है। इन्हीं खातो या विभागोको जीव समास

कहते हैं। इनके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् (जल) पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर नित्यनिगोद पर्याप्त (१८) बादर नित्यनिगोद अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म नित्य निगोद पर्याप्त (२०) सूक्ष्म नित्य निगोद अपर्याप्त (२१) बादर इतरनिगोद पर्याप्त (२२) बादर इतरनिगोद अपर्याप्त (२३) सूक्ष्म इतरनिगोद पर्याप्त (२४) सूक्ष्म इतरनिगोद अपर्याप्त (२५) प्रत्येक वनस्पति पर्याप्त (२६) प्रत्येक वनस्पति अपर्याप्त (२७) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (२८) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (२९) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३०) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त ३१ चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३२) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (३३) पंचेन्द्रिय पर्याप्त (३४) पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—नरकतिर्यग्मनुष्यदेवापुर्नरकद्विकसूक्ष्मत्रकसूक्ष्मापर्याप्तप्रत्येकबादरापर्याप्तसाधारणबादरापर्याप्तप्रत्येक द्वीन्द्रियापर्याप्त त्रीन्द्रियापर्याप्तचतुरिन्द्रियापर्याप्तासंज्ञ्यपर्याप्त सञ्ज्यपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणसूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येक बादरपर्याप्तसाधारण बादरपर्याप्त प्रत्येकैन्द्रियाताप स्थावर द्वीन्द्रियपर्याप्तत्रीन्द्रियपर्याप्तचतुरिन्द्रियपर्याप्तासञ्ज्ञिपर्याप्ततिर्यग्द्विकोद्योत नीचैर्गोत्राप्रशस्तविहायोगतिदुर्भग त्रिकहुँडकसंस्थानासंप्राप्तासृपाटिकासंहनन नपुंसकवेद—वामन संस्थान कीलकसंहनन कुब्जकसंस्थानार्द्धनाराचसंहननस्त्रीवेद स्वातिसंस्थाननाराचसंहनन न्यग्रोधपरिमन्डलसंस्थानवज्रनाराचसंहननमनुष्यद्विकौदारिकद्विक वज्रर्षभनाराचसंहननास्थिराशुभायशःकीर्त्यरतिशोकासाता बन्धच्छेदास्पदा बन्धापसरणस्थानानि ॥३॥

अर्थ.—इस सूत्रमें चौंतीस बन्धापसरणस्थानोंको गिनाया गया है। बन्धापसरणस्थान तीन शब्दोंसे मिल कर बना है बन्ध+अप सरण+

स्थान अर्थात् वे स्थान जिनसे बन्ध योग्यप्रकृतियोंका हटना, खिसकनाया अपसरण होना होता है। इन चौतीस स्थानोमे किन २ प्रकृतियोकी व्युच्छित्ति होती है, उसका वर्णन इस प्रकार है, प्रकृतियोके नाम भी साथमे है —

(१) प्रथम बंधापसरणस्थानमे नरकायुकी व्युच्छित्ति होती है।

(२) द्वितीय बंधापसरणस्थानमे तिर्यक् आयुकी व्युच्छित्ति होती है।

(३) तृतीय बंधापसरण स्थानमे मनुष्य आयुकी व्युच्छित्ति होती है।

(४) चतुर्थ बंधापसरण स्थानमे देवायुकी व्युच्छित्ति होती है।

(५) पंचम बधापसरणस्थानमे नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वीकी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(६) छटवें बंधापसरणस्थानमे सूक्ष्म प्रकृति, अपर्याप्त प्रकृति और साधारण प्रकृति रूप सूक्ष्मत्रिककी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(७) सातवे स्थानमे सूक्ष्म-अपर्याप्त प्रत्येककी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(८) आठवे स्थानमे बादर अपर्याप्त साधारणकी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(९) नवमे स्थानमे बादर अपर्याप्त प्रत्येक प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(१०) दसवे स्थानमे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(११) त्रीन्द्रियअपर्याप्तकी बधव्युच्छित्ति ग्यारहवे स्थानमे होती है।

(१२) बारहवे स्थानमे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकी बधव्युच्छित्ति होती है।

(१३) तेरहवे स्थानमे असंज्ञी अपर्याप्त प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति होती है।

(१४) चौदहवे स्थानमें सञ्ज्ञी अपर्याप्तप्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है ।

(१५) पन्द्रहवें स्थानमें सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(१६) सोलवें स्थानमें सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(१७) सत्रहवे स्थानमे वादर पर्याप्त साधारण प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(१८) वादर पर्याप्त प्रत्येक एकेन्द्रिय आताप स्थावर प्रकृतिकी वधव्युच्छित्ति इस स्थानमे होती है।

(१९) उन्नीसवें स्थानमे द्वीन्द्रिय पर्याप्त प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है ।

(२०) वीसवे स्थानमे त्रीन्द्रिय पर्याप्त प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(२१) इक्कीसवे स्थानमे चतुरिन्द्रय पर्याप्त प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(२२) बावीसमें स्थानमे असंज्ञी पर्याप्त प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(२३) तिर्यग् गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी उद्योत प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति इस स्थानमें होती है।

(२४) चौबीसवें स्थानमे नीच गोत्र प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होनी है।

(२५) अप्रशस्तविहायोगतिदुर्भग, दुःस्वर अनादेय प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति इस स्थानमें होती है।

(२६) छब्बीसवें स्थानमे हुँडकसंस्थान असंप्राप्तासृपाटिका संहनन प्रकृतिकी वंधव्युच्छित्ति होती है।

(२७) नपुंसकवेदकी व्युच्छित्ति २७ वे स्थानमें होती है।

(२८) वामनसंस्थान कीलकसंहनन प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति २८ वे स्थानमे होती है।

(२६) कुब्जकसस्थान अर्धनाराचसंहनन प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति २६ वे स्थानमे होती है।

(३०) स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति तीसवे बंधापसरण स्थानमे होती है।

(३१) स्वाति संस्थान नाराचसंहनन प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति ३१ वे स्थानमे होती है।

(३२) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान वज्रनाराचसंहनन प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति ३२ वे स्थानमे होती है।

(३३) मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिकशरीर औदारिक आंगोपाङ्ग वज्रवृषभनाराचसंहनन प्रकृतिकी बंधव्युच्छित्ति इस ३३ वे स्थानमे होती है।

(३४) अस्थिर अशुभ अयशःकीर्ति अरति शोक असाता वेदनीय प्रकृतिकी बधव्युच्छित्ति ३४ वे बन्धापसरण स्थानमे होती है।

सूत्र—कुमतिश्रुतावधिचक्षुरचक्षुर्दर्शन क्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि नरकतिर्यग्मनुष्यदेवगति क्रोधमानमायालोभकषायपु स्त्रीनपुंसकलिङ्ग मिथ्यात्वाज्ञानासंयमासिद्धत्वकृष्णनीलकपोतपीतपद्मशुक्ललेश्या जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वानि मिथ्यात्वेभावाः ॥४॥

अर्थ – मिथ्यात्व नामक गुणस्थानमे जीवके त्रेपन असाधारण भावोमे आगे लिखे जाने वाले चौंतीस भाव पाये जाते हैं। भावोके अलग अलग नाम इसप्रकार हैं.—

(१) कुमतिज्ञान (२) कुश्रुतज्ञान (३) कुअवधिज्ञान (४) चक्षुर्दर्शन (५) अचक्षुर्दर्शन (६) क्षायोपशमिक दान (७) क्षायोपशमिक लाभ (८) क्षायोपशमिक भोग (९) क्षायोपशमिक उपभोग (१०) क्षायोपशमिक वीर्य (११) नरकगति (१२) तिर्यंग्गति (१३) मनुष्यगति (१४) देवगति (१५) क्रोधकषाय (१६) मान कषाय (१७) माया कषाय (१८) लोभकषाय (१६) पुंवेद (२०) नपुंसकवेद (२१) स्त्रीवेद (२२) मिथ्यात्व

(२३) अज्ञान (२४) असंयम (२५) असिद्धत्व (२६) कृष्णलेश्या (२७) नील लेश्या (२८) कापोत लेश्या (२९) पीत लेश्या (३०) पद्मलेश्या (३१) शुक्ललेश्या (३२) जीवत्व नामक परिणामिकभाव (३३) भव्यत्व (३४) अभव्यत्व।

❀ पैंतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—णमो अरहंताण णमो सिद्धाण णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूण इति णमो कारमंत्रेऽक्षराणि ॥१॥

अर्थः—मंत्र प्राकृत भाषामे है, इसे प्राकृतमें णमोकार मन्त्र कहते है। संस्कृतमे या परिष्कृत हिन्दीमे इसीको नमस्कार मन्त्र कहते है। पांच परमेष्ठियोंको चूंकि इसमे नमस्कार किया गया है अतः पंच नमस्कार मन्त्र भो कहलाता है। मंगलके कारणी भूत जितने साधन है, उनमे यह सर्वश्रेष्ठ है। समस्त विघ्नोका, पापोका यह नाश करने वाला है। यह मन्त्र अति महत्वका एवं जैन संस्कृतिकी समोचीनताका समर्थन करने वाला है। जरा गहराईसे सोचे तो प्रतीत होगा कि यह मन्त्र मानवको मानवताकी झलक दिखा उसके सामने जीवनके चरम लक्ष्यको प्रस्तुत करता रहता है। इससे आदमीको आदर्श मिलता है कि किस तरह रागी दशासे विरागकी ओर उन्मुख होता हुआ वह पूर्ण निराकुलता रूप अंतिम ध्येयको प्राप्तकर सकता है। मन्त्रमे पैंतीस अक्षर है और उनको अलग अलग इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

(१-७) णमो अरहंताणं-ण मो अ र हं ता णं।

(८-१२) णमो सिद्धाण-ण मो सि द्धा णं।

(१३-१९) णमो आयरियाणं-ण मो आ य रि या णं।

(२०-२६) णमो उवज्झायाणं-ण मो उ व ज्झा या णं।

(२७-३५) णमो लोए सव्वसाहूणं-ण मो लो ए स व्व सा हू णं।

सूत्र—ॐ णमो वीरेहि जृंभय जृंभय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा इति पिशाचादिनिवारणनिमित्तः पञ्चत्रिंशदक्षर मन्त्रः ॥२॥

अर्थः—पैंतीस अक्षर वाले मन्त्रोमे से यह भी एक है। इस मंत्रके जपनसे पिशाच आदि सम्बन्धी बाधायें दूर होती हैं। तत्संबंधी संकटो को हटानेमे यह सहायक होता है। अक्षर इसके अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

ॐ ण मो वी रे हिं जृ म्भ य जृं भ य मो ह य मो ह य स्त म्भ य स्तं भ य अ द घा र ण कु रु कु रु स्वा हा।

सूत्रः—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव शातिकारिणी रोगकष्ट ज्वरोपशमन शान्ति कुरु कुरु स्वाहा इति भयरोगोपसर्गवारण प्रताप-निमित्तः ॥३॥

अर्थ.—मन्त्रोका सिलसिला तो चल ही रहा है। पैतीस अक्षरो वाला यह भी एक मन्त्र है। इससे भयके दूरीकरणमे, रोगके शमीकरण मे तथा उपसर्गके निराकरणमे सहायता मिलती है। प्रतापकी अभिवृद्धि मे भी यह सहायक होता है। मन्त्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं.—

ॐ न मो भ ग व ती क्षु द्रो प द्र व शां ति का रि णी रो ग क ष्ट ज्व रो प श म नं शा न्तिं कु रु कु रु स्वा हा।

❀ छत्तीसवां अध्याय ❀

सूत्र—नरकतिर्यग्द्विकैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिसाधारणसूक्ष्मस्थावरोद्योतातपाप्रत्याख्याना प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभनपुंसकस्त्रीवेद हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमाया अनिवृत्तिकरणे सत्वेन व्युच्छिन्नाः प्रकृतयः ॥१॥

अर्थ.—अनिवृत्तिकरण नवमे गुणस्थानका नाम है। इसमे सत्व-से व्युच्छिन्न होनेवाली छत्तीस प्रकृतियोको गिनाया गया है। "सत्वसे व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियो" का इस पदका अर्थ यही है कि सूत्रमे उल्लिखित प्रकृतियोंका सत्व यदि पाया जायगा तो नवमे गुण स्थान तक पाया जायगा उससे आगेके दशवें ग्यारहवे आदि गुणस्थानोंमे

सत्व नहीं पाया जायगा। छत्तीस प्रकृतियोंके अलग अलग नाम इस प्रकारसे है —

(१) नरकगति प्रकृति (२) नरकगत्यानुपूर्वी (३) तिर्यग् गति (४) तिर्यग्गत्यानुपूर्वी (५) एकेन्द्रियप्रकृति (६) द्वीन्द्रिय प्रकृति (७) त्रीन्द्रिय प्रकृति (८) चतुरिन्द्रिय प्रकृति (९) निद्रानिद्रा प्रकृति (१०) प्रचला प्रचला प्रकृति (११) स्त्यानगृद्धि प्रकृति (१२) साधारण प्रकृति (१३) सूक्ष्म प्रकृति (१४) स्थावरप्रकृति (१५) उद्योत प्रकृति (१६) आतप प्रकृति (१७) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (१८) अप्रत्याख्यानावरण मान (१९) अप्रत्याख्यानावरण माया (२०) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (२१) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (२२) प्रत्याख्यानावरण मान (२३) प्रत्याख्यानावरण माया (२४) प्रत्याख्यानावरण लोभ (२५) नपुंसक वेदप्रकृति (२६) स्त्रीवेद प्रकृति (२७) हास्य प्रकृति (२८) रति प्रकृति (२९) अरति प्रकृति (३०) शोक प्रकृति (३१) भय प्रकृति (३२) जुगुप्सा प्रकृति (३३) पुरुषवेद प्रकृति (३४) संज्वलन क्रोध (३५) संज्वलन मान (३६) संज्वलन माया।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोद–प्रत्येकशरीरद्वित्रिचतुरिन्द्रियसञ्ज्ञसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥२॥

अर्थः—इस सूत्रमे उन छत्तीस खातोंको लिखा गया है, जिनके अन्दर समस्त जीवराशिको विभक्त करके कहा जा सकता है। इन खातोंका ही शास्त्रीय नाम जीवसमास है। जीवसमासोंके नाम अलग अलग इस प्रकारसे है:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक जीवसमास" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् (जल) पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज

अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर नित्य निगोद पर्याप्त (१८) बादरनित्य निगोद अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म नित्य निगोद पर्याप्त (२०) सूक्ष्म नित्यनिगोद अपर्याप्त (२१) बादर इतर निगोद पर्याप्त (२२) बादर इतरनिगोद अपर्याप्त (२३) सूक्ष्म इतर निगोद पर्याप्त (२४) सूक्ष्मइतरनिगोद अपर्याप्त (२५) प्रत्येक शरीर पर्याप्त (२६) प्रत्येक शरीर अपर्याप्त (२७) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (२८) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (२९) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३०) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (३१) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३२) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (३३) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३४) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त (३५) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३६) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पति–विकलसकलेन्द्रियपर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताश्च ॥२॥

अर्थ —जीवसमास वस्तुतः अलौकिक लोक सम्बन्धी व्यापारमें लगीहुई जीवराशि पूंजीके वे खाते हैं जिनमें वह बंटी हुई है। इसकी बहियां अनेक हैं जिनमें भिन्न भिन्न खाते लिखकर खतौनीकी गई है। यह जो सूत्ररूप वही हैं इसमें वे छत्तीस खाते लिखे गये हैं जिनमें पूंजी (जीवराशि) को खताया या विभाजित किया गया है। खातोंके सिर नामे अलग अलग इस प्रकारसे हैं —

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (इसी प्रकार आगेके नामोंके साथ भी "नामक जीवसमास" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) बादर पृथ्वी निवृत्य पर्याप्त (३) बादर पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वीपर्याप्त (५) सूक्ष्म पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त (६) सूक्ष्मपृथ्वीलब्ध्यपर्याप्त (७) बादर अप् (जल) पर्याप्त (८) बादर अप्निवृत्यपर्याप्त (९) बादर अप् लब्ध्यपर्याप्त (१०) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (११) सूक्ष्मअप् निवृत्यपर्याप्त (१२) अप्सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त (१३) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१४) बादर तेज निर्वृत्यपर्याप्त (१५) बादर तेज लब्ध्यपर्याप्त (१६) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१७) सूक्ष्म तेज निवृत्यपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेज लब्ध्य पर्याप्त (१९) बादर

वायु (हवा) पर्याप्त (२०) बादर वायु निवृत्य पर्याप्त (२१) बादर वायु लब्ध्यपर्याप्त (२२) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायु निवृत्यपर्याप्त (२४) सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त (२५) बादर वनस्पति (वृक्षादि) पर्याप्त (२६) बादर वनस्पति निवृत्यपर्याप्त (२७) बादर वनस्पति लब्ध्यपर्याप्त (२८) सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त (२९) सूक्ष्म वनस्पति निवृत्य पर्याप्त (३०) सूक्ष्मवनस्पति लब्ध्यपर्याप्त (३१) विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय) पर्याप्त (३२) विकलेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३३) विकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (३४) सकलेन्द्रिय (संज्ञीपञ्चेन्द्रिय) पर्याप्त (३५) सकलेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३६) सकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त ।

सूत्र—मृत्तिकाबालिकाशर्करोपलशिलालवणलोहताम्र त्रपुसीसकरौप्यस्वर्णवज्रहरितालहिंगुलमनः शिलातुत्थाञ्जनप्रवालक्किरोलकाभ्रकमणिगोमेदरुचकाङ्कस्फटिकलोहितप्रभवैडुर्यचन्द्रकान्तजलकान्तरविप्रभगैरिकचन्दनक्वरोचककमोचोमसारगल्वाःपृथ्वीकायाः ॥४॥

अर्थ—स्थावर जीवोंके जहां पांच भेद गिनाये गये हैं उनमें पृथ्वी नामक भेदका भी उल्लेख कियागया है। इस पृथ्वीके चार भेद हैं:—(१) पृथ्वी (२) पृथिवी काय (३) पृथ्वी कायिक (४) पृथ्वी जीव। जो स्वयं ही बनी हुई अचेतन जमीन होती है उसे अथवा पृथ्वी सामान्यको पृथ्वी कहते हैं। जो पहिले पृथ्वी जीवके द्वारा ग्रहण किया हुआ हो किन्तु वर्तमानमें जिसमेंसे जीव निकल गया हो उसे पृथ्वीकाय कहते हैं। इसी पृथ्वीकायके छत्तीस भेदोंको इस सूत्रमे गिनाया गया है। जीवसहित पृथ्वी, पृथ्वीकायिक तथा पृथ्वीकायमें जन्म लेनेके लिये उन्मुख जीव, जब तक पृथ्वीको अपने शरीर रूपसे ग्रहण नहीं कर लेता तबतक वह पृथ्वी जीव कहलाते हैं। जैसा कि बताया जा चुका है इसमे पृथ्वी कायके छत्तीस भेदोंके नाम हैं। वे अलग अलग इसप्रकार हैं:—

(१) मृत्तिका नामक पृथ्वीकाय (२) वालिका (३) शर्करा (४) उपल (५) शिला (६) लवण (७) लोह (८) ताम्र (९) त्रपु (१०) सीसक

(११) रूप्य (१२) सुवर्ण (१३) वज्र (१४) हरिताल (१५) हिंगुल (१६) मनःशिला (१७) तुत्थ (१८) अंजन (१९) प्रवालक (२०) भिरोलकाभ्रक (२१) मणि (२२) गोमेद (२३) रुजक (२४) अंक (२५) स्फटिक (२६) लोहितप्रभ (२७) वैडूर्य (२८) चन्द्रकान्त (२९) जलकान्त (३०) रविप्रभ (३१) गैरिक (३२) चन्दन (३३) वर्वर (३४) वक (३५) मोच (३६) मसारगल्व ।

(१) मृत्तिका नामक पृथ्वीकायः—खेतोमे पड़ी काली मिट्टीके ढेलोका ग्रहण मृतिकाके द्वारा होता है। अन्य मिट्टी भी इसीके अन्दर गर्भित है।

(२) बालिका नामक पृथ्वीकाय—अंगारो आदिके जलनेसे उत्पन्न हुई रूखी राख वगैरह बालिका कहलाती है।

(३) शर्करा नामक पृथ्वीकाय—तिकोने चौकोने छोटे २ जो पत्थरके टुकड़े होते हैं उन्हे शर्करा कहते है।

(४) उपल नामक पृथ्वीकायः— गोल २ जो कठोर पत्थरोके खण्ड होते हैं उन्हे उपल कहा जाता है।

(५) शिला नामक पृथ्वीकाय —पत्थरोमे से यह भी एक भेद है। इसके द्वारा बड़े २ विशाल कायके पाषण खण्डोका ग्रहण होता है। साधारण बोल चालमे इसके लिये चट्टान शब्दका प्रयोग होता है।

(६) लवण नामक पृथ्वीकाय—यह खारे रसवाले पाषाणका ही भेद है। आजकल पाया जाने वाला सेधा नमक इसमें गर्भित किया जा सकता है।

(७) लोह नामक पृथ्वीकाय—लोह एक धातुका नाम इससे टाटा आयान कारखाना आदि वड़े २ उद्योग चल रहे हैं।

(८) ताम्र नामक पृथ्वीकाय—इसके द्वारा अशुद्ध नामोकी धातुका ग्रहण होता है। इसीको शुद्ध करके इसे वर्तनादि बनानेके उपयोगमे लाया जाता है।

(९) त्रपुनामक पृथ्वीकाय—त्रपु रांगा धातुको कहते है।

(१०) सीसकनामक पृथ्वीकायः—यह एक धातु है जिसे सीसा कहते हैं। पदार्थमें मजबूती लानेके लिये कहा जाता है कि सीसा बहुत उपयोगी होता है। अन्य कामोंमे भी इसका उपयोग होता है।

(११) रौप्य नामक पृथ्वीकायः—चांदी रजत रौप्य आदि शब्द पर्यायवाची है, एक अर्थको बतलानेवाले है। खानसे निकलने वाली चांदीको शुद्ध और मल रहित कर उसे अनेक उपयोगी कामोंमे लगाया जाता है। वर्तमानकालीन मुद्राचलनमे यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। रुपयाका सिक्का चांदीका बना हुआ कहलाता है।

(१२) सुवर्णनामक पृथ्वीकायः—खानसे निकलने वाली बहुमूल्यधातुओंमे से यह एक है। साधारण जनोंके पास इसकी उपस्थिति नही जैसी रहती है। बहुमूल्य आभूषणोंके निर्माणमें इसका प्रयोग किया जाता है बोलचालमे यह सोना कहलाता है।

(१३) वज्रनामक पृथ्वीकाय—कठोर और दृढ पदार्थोंमें यह कठोरतम एव दृढ़तम होता है। ऊंचे दर्जेकी काठिन्यकी उपमा प्राय वज्रसे दी जाती है। वज्र भी एक तरहकी धातु है, इसलिये पृथ्वीकायमें इसे गर्भित किया गया है।

(१४) हरिताल नामक पृथ्वीकायः—पहाड़ी चट्टानोंसे प्राप्त होने वाला एक पदार्थ है। इसको बोलचालके शब्दोंमे हरिया थूथा भी कहते है।

(१५) हिंगुल नामकपृथ्वीकायः—लाल रगकी एक वस्तु जिसे ईंगुर कहते हैं, हिंगुल कहलाती है।

(१६) मनःशिला नामक पृथ्वीकायः—पेन्सिल नामकी धातुका इसके द्वारा ग्रहण होता है।

(१७) तुत्थ नामक पृथ्वीकायः—एक धातुविशेषका नाम है।

(१८) अंजन नामक पृथ्वी कायके द्वारा सौवीराञ्जन (सुरमा) का ग्रहण होता है।

(१९) प्रवालकनामक पृथ्वीकायः—इसकेद्वारा मूंगाका बोध होता है।

(२०) भिरोलकाभ्रक नामक पृथ्वीकायः—चमचमाती हुई भोडर-को भिरोलकाभ्रक कहते है। भीलवाड़ेमे इसकी खदानें पाई जाती हैं।

(२१) मणिनामक पृथ्वीकाय—शुभ्रजातिके रत्नोको मणि कहते हैं।

(२२) गोमेदनामक पृथ्वीकाय.—गोरोचनके समान रंग वाले कर्केतन नामके मणिको गोमेद कहते है।

(२३) रुजक नामक पृथ्वीकाय—अलसी नामके पुष्य (फूल) के समान रंग वाले राजावर्न मणिको रुजक कहते हैं।

(२४) अङ्कनामक पृथ्वीकायः—प्रवाल (मूंगा) के समान रंग वाला पुलिक नामका मणि अङ्क कहलाता है।

(२५) स्फटिक नामक पृथ्वीकायः—यह भी मणियोमे से एक प्रकारके मणिका नाम है।

(२६) लोहितप्रभ नामक पृथ्वीकाय—पद्म लालकमलको कहते हैं। उसके समान कान्तिवाले मणिको लोहितप्रभ कहते है।

(२७) वैडूर्यनामकपृथ्वीकायः—मयूर (मोर) के गलेके समान रंगवाले मणिका नाम वैडूर्य है।

(२८) चन्द्रकान्त नामक पृथ्वीकायः—यह एक प्रकारके मणिका नाम है।

(२९) जलकान्तनामक पृथ्वीकायः—पानीके समान रंगवाले मणि-का नाम जलकान्त है।

(३०) रविप्रभनामक पृथ्वीकाय.—रविका अर्थ सूर्य है, उसके समान कातिवाले मणिको रविप्रभ कहते हैं.

(३१) गैरिक नामक पृथ्वीकायः—गेरुके समान रंगवाले रुधिर नामके मणिका ग्रहण इसके द्वारा होता है।

(३२) चन्दननामक पृथ्वीकायः—श्रीखण्डके समान रंग वाले

तथा उसके ही समान खुशबूवाले मणिका बोध इसके द्वारा होता है।

(३३) बर्वर नामक पृथ्वीकाय:—मरकत मणिका बोध इस नाम-के द्वारा होता है।

(३४) वकनामक पृथ्वीकाय:—बगुलेके समान सफेद रंग वाले पुष्पराग नामके मणिको वक कहते है।

(३५) मोचनामकपृथ्वीकाय:—केलेके पत्तेके समान रंगवाले नील-मणिको मोच कहते हैं।

(३६) मसारगल्वनामक पृथ्वीकाय:—विद्रुमके समान रंगवाले मसृणपाषाण नामके मणिको मसारगल्व कहते हैं।

ये छत्तीस पृथ्वीकायके भेद है। इनमे से शर्करा, उपल, शिला, वज्र और प्रवाल नामके भेदोंको छोड़ कर अवशिष्ट भेद शुद्ध पृथ्वीके विकार हैं। शर्करा आदिक पांच भेद खर पृथ्वीके विकार हैं। इन्हीं विकारोंमें सात नरक भूमियां, ईषत्प्रागभारा नामकी आठवी पृथ्वी, मेरु आदिक पर्वत, जम्बूद्वीप आदि द्वीप विमान, भवन, वेदिका, प्रतिमा, तोरण, स्तूप, चैत्यवृक्ष आदिक सभी अन्तर्निहित हैं।

सूत्र—अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यारसपरित्यागविविक्तशय्यासन-कायक्लेशप्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तमक्षमामार्द-वार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणिदर्शनज्ञानचारित्रतपोवी-र्याचाराः समतावन्दनास्तुतिप्रतिक्रमणस्वाध्यायकायोत्सर्गो मनोवचनकाय-गुप्तय आचार्यमूलगुणाः ॥५॥

अर्थ:—परम पूज्य परमात्मपदकी प्राप्तिमें निमित्तभूत पांच परमे-ष्ठियोंमे से आचार्य भी एक है। वर्तमानमे धर्मशासनके सफल संचा-लकों एवं प्राणीको हितकारी मार्ग पर बढ़ाने वालोंमें आचार्योंका मह-त्त्वपूर्ण स्थान हैं। वे स्वयं पंचाचारोंका सावधानीके साथ आचरण करते हुए जन जनके मन मन्दिरमे हितकारी मार्ग अपनानेकी प्रेरणा देते हैं। इस सूत्रमें ऐसे ही आचार्योंके छत्तीस मूलगुणोंको गिनाया गया है। मूल गुणोके नाम अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

(१) अनशननामक आचार्यमूलगुण (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक आचार्यमूलगुण" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) अवमौदर्य (३) वृत्तिपरिसंख्यान (४) रसपरित्याग (५) विविक्तशय्यासन (६) कायक्लेश (७) प्रायश्चित्त (८) विनय (९) वैयावृत्य (१०) स्वाध्याय (११) व्युत्सर्ग (१२) ध्यान (१३) उत्तमक्षमा (१४) उत्तममार्दव (१५) उत्तम आर्जव (१६) उत्तम शौच (१७) उत्तम सत्य (१८) उत्तम संयम (१९) उत्तम तप (२०) उत्तमत्याग (२१) उत्तम आकिंचिन्य (२२) उत्तम ब्रह्मचर्य (२३) दर्शनाचार (२४) ज्ञानाचार (२५) चारित्राचार (२६) तप-आचार (२७) वीर्याचार (२८) समता (२९) वंदना (३०) स्तुति (३१) प्रतिक्रमण (३२) स्वाध्याय (३३) कायोत्सर्ग (३४) मनोगुप्ति (३५) वचनगुप्ति (३६) कायगुप्ति।

(१) अनशननामक मूलगुण—सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अपने कार्योंसे निवृत्त करके जहां एक जगह रक्खी जाती हैं उसे उपवास कहते हैं। इसीका दूसरा नाम अनशन है, इसमे अशन ओदनादिक, स्वाद्य ताम्बूलादिक, पेय नीर क्षीरादिक और खाद्य पूडी लड्डू आदिक रूप चार प्रकारके आहारोंका शक्तिके अनुसार उत्तम मध्यम जघन्य रूपमे त्याग किया जाता है।

(२) अवमौदर्य नामक मूलगुण—शास्त्रोंमे हजार चावलोंका एक ग्रास वतलाया गया है। ऐसे वत्तीस ग्रासोंवाला साधारणतया एक पुरुषका आहार होता है। स्त्रीका आहार अट्ठाईस ग्रास प्रमाण है। यह जो आहारका प्रमाण बतलाया गया है, उसमे तप व धर्मकी वृद्धि हेतु, अपनी शक्तिके अनुसार एक ग्रास, एक भाग, दो भाग या तीन भाग आहार कम करना अवमोदर्य कहलाता है। इसीका दूसरा नाम ऊनोदर है।

(३) वृत्तिपरिसंख्याननामक मूलगुण—यद्यपि शरीरसे मोह नहीं है फिर भी जब तक सम्पर्क पाया जाता है तब तक पदसम्बन्धी क्रियाओंको वह भले रूपसे (अच्छी तरह) करता रहे इस अभिप्रायको मनमे

रख जब मुनि भिक्षा या चर्याको निकलता है तो दायक आदि सम्बन्धी नियम करता है। अर्थात् मैं आहारके लिये इतने ही घर जाऊंगा, या अमुक रीतिसे ही आहार लूंगा अन्य प्रकारसे नहीं इस प्रकारके नियम का नाम वृत्तिपरिसंख्यान है।

(४) रसपरित्याग नामक मूलगुण—इन्द्रियोंको वशमे करनेके लिये, निद्रापर विजय पानेके लिये तथा स्वाध्यायादिमें सुचारुरीत्या प्रवृत्ति करनेके लिये घी, दूध, दही, तेल, मीठा, नमक रूप छहरसोंका शक्तिके अनुसार त्याग करना, रसपरित्याग कहलाता है।

(५) विविक्तशय्यासन नामक मूलगुण:—ब्रह्मचर्य स्वाध्याय, ध्यान आदिका आराधन भले प्रकारसे हो सके इस दृष्टिसे जन्तु रहित, प्रासुक, स्त्री पशु नपुंसक गृहस्थ व क्षुद्र जीवोंके द्वारा भी अगोचर ऐसे सूने घर, झाड़ोंकी कोटर, गुफा आदि एकान्त स्थानमे सोना, आसनादि लगाना विविक्तशय्यासन कहलाता है।

(६) कायक्लेश नामक मूलगुण:—कष्ट सहनेके अभ्यासके लिये, आराम तलबीकी मनोवृत्तिको दूर करनेके लिये प्रशस्त ध्यानकी निष्पत्ति के लिये तथा धर्मकी प्रभावनाके लिये वीरासन, मकरासन, उत्कुटिकासन, गोदूहनासन, व्रज्रासनादि आसनोंको लगाकर ग्रीष्म ऋतुमे पर्वत शिखर पर, वर्षा ऋतुमें वृक्षके नीचे, शीत ऋतुमे नदी, सरोवरके किनारोंके खुले हुए मैदानोंमे ध्यान लगाना शरीरको जो क्लेश देना है सो कायक्लेश है।

(७) प्रायश्चित्त नामक मूलगुण—जो करने योग्य आवश्यकादि कर्तव्य कर्म हैं उनके न करनेसे तथा जो हटाने या दूर करने योग्य हिंसादिक कर्म हैं उनके करनेसे उपार्जित जो पाप रूप दोष है उनकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त है। इन दोषोंके होनेमे प्रमाद मुख्य कारण होता है।

(८) विनय नामक मूलगुण—क्रोधादि कषायोंसे तथा स्पर्शनादिक इन्द्रियोंके विषयोंसे सर्वथा विरोधभाव रखना विनय है। सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय तथा इनसे युक्त सत्पुरुषोंके प्रति यथोचित अनुग्रह या उपकार करनेका नाम भी विनय है। पूज्य पुरुषोंके प्रति आदर भाव रखना भी विनय कहलाता है। विनयको विनय इसलिये भी कहते हैं कि यह मुमुक्षु प्राणीके अप्रशस्त कर्मोंको हटा देता है तथा स्वर्ग, अपवर्ग आदि उत्तम पदोंकी प्राप्ति कराता है।

(९) वैयावृत्य नामक मूलगुण—आचार्य, उपाध्यायादि दश प्रकारके संयमधारियोंकी शरीर संबंधी पीड़ा दूर करनेके लिये तथा आर्त्त रौद्र ध्यानादिरूप दुष्परिणामोंसे उत्पन्न होने वाले संक्लेशको हटानेके लिये जो श्रावक या मुनि काम करते है उनकी सेवा, टहल, सुश्रूषादि करते है उसे वैयावृत्य कहते है। आचार्य भी अपने सघ स्थित व्रनियो की परिचर्या करता है अत उनके गुणोंमे इसे शामिल किया गया है।

(१०) स्वाध्यायनामक गुणः—ज्ञानावरणादि कर्मों के अथवा मन वचन कायकी क्रियाओंके नाश करनेमें तत्पर मुमुक्षुका हितकारी परमागमोंके अध्ययनमे जो प्रमाद एवं आलस्य रहित होकर अध्ययनमे लगे रहना है उसे स्वाध्याय कहते हैं।

(११) व्युत्सर्ग नामक मूलगुण—जीवनपर्यन्त अथवा मुहूर्त आदि नियत समयके लिये अंतरग एव बाह्य उपाधियोंका त्याग कर देना व्युत्सर्ग कहलाता है। अंतरंग उपाधिके द्वारा अंतरगमे होने वाले ममकार, क्रोध, असूया आदि रूप परिणामोंका बोध होता है तथा बाह्य उपाधिके द्वारा आहार, वसतिका, पिता, स्त्री, आदिके प्रति आकर्षण या लगाव रूप वृत्तिका ग्रहण होता है। व्युत्सर्गमे इन दोनो उपाधियोंको दूर किया जाता है।

(१२) ध्याननामक मूलगुणः—किसी एकको लक्ष्य बनाकर उसमे अपने मनको रोके रखना ध्यान कहलाता है। खास प्रयोजन इसका चंचल चित्तको वशमे करना है। ध्यानके चार भेदोंमे से आर्त और रौद्रध्यानका सर्वथा परित्याग कर आचार्य चार चार प्रकारके धर्म और शुक्ल ध्यानको ध्याते है।

(१३) उत्तमक्षमा नामक मूलगुण:—क्षमा पृथ्वीको कहते हैं। उसको जितना चाहे कूटा जाय, पीटा जाय, छेदा जाय, भेदा जाय, वह यह सब कुछ पूर्णशांतिसे सहन करती रहती है इसी प्रकार दूसरा सामने वाला व्यक्ति जितनी चाहे पीड़ा देवे, छेदे, भेदे, दुःख पहुँचाये किन्तु मनमे जरा भी मलिनता न लाते हुए इन सभी बातोंको पूर्ण शांतिसे सहन करना उत्तम क्षमा है। इसमे क्रोध पर पूर्ण रूपसे विजय प्राप्त करनी पड़ती है।

(१४) उत्तममार्दवनामक मूलगुण:—मृदुताके भावका नाम मार्दव है। इसमें मान या गर्वरूपीगिरिका नाश मार्दव रूपी वज्रसे किया जाता है। मृदुताका अर्थ है उत्तम ज्ञाति, कुल, तप, विद्या आदि के होते हुए भी उनका घमण्ड या अभिमान न करना।

(१५) उत्तम आर्जव नामक मूलगुण:—मन वचन और कायकी कुटिलता रहित प्रवृत्तिका करना आर्जव गुण है। कुटिलता रहितका अर्थ है मन वचन कायकी सरलता अर्थात् जैसे मनमें विचार हैं उसके अनुसार वाणीका प्रवाह बहना, और जैसे वचन या वाणी है उसके अनुसार ही कायकी चेष्टा करना। इससे आर्जवपना या ऋजुता परिणामोमे आती है।

(१६) उत्तमशौचनामक मूलगुण:—लोभके अभावसे शुचिताकी अभिव्यक्ति होती है। लोभ चार प्रकारका होता है (१) जीवन संबंधी लोभ (२) नीरोगता विषयक लोभ (३) इन्द्रिय-लोभ (४) भोग्य सामग्री का लोभ। इन चारो ही प्रकारके लोभोका परित्याग करना शौच-गुण है।

(१७) उत्तम सत्यनामक मूलगुण:—असमीचीन एवं प्राणियोको दुःख पहुँचाने वाले वचनोको न बोलते हुए सज्जन और धर्मात्मा पुरुषो के बीचमें ज्ञान चारित्रादिकी शिक्षा देने वाले सुन्दर वचनोका बोलना सत्य नामक गुण है।

(१८) उत्तमसंयमनामक मूलगुण:—भले प्रकार तथा पूर्ण साव

धानीसे अपनी इन्द्रियों और मनको वशमें करके प्रवृत्ति करना संयम है। इसमें प्राणिसंयम और इन्द्रिय संयम दोनों ही समाविष्ट है। समिति आदिका पालन करते समय एकेन्द्रियादि जीवोंकी रक्षा करना प्राणिसंयम है। इसीप्रकार चित्तमें रागद्वेषादि विकारोंको पैदा कर अशान्ति एवं व्याकुलता करने वाले स्पर्शनादि इन्द्रियोंके विषयोंसे विमुख होना इन्द्रिय संयम कहलाता है।

(१९) उत्तम तपनामक मूलगुण—कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये तथा शरीरसे ममता रूप परिणामोंको कृश करनेके लिये अनशनादि नाना प्रकारके तपोंका आचरण करना तप कहलाता है।

(२०) उत्तम त्याग नामक मूलगुण—रागद्वेष आदि विकारोंकी उत्पत्तिका मूलकारण जो परिग्रह है-चाहे वह चेतनात्मक हो या अचेत-नात्मक हो उसका त्याग करना या छोड़ना त्याग गुण है। आचार्य संघके समक्ष इसका ऊंचा आदर्श रखते हैं।

(२१) उत्तम आकिञ्चन्य नामक मूलगुण—प्राप्त हुए शरीर आदिक भी मेरे नहीं है "मैं अकिंचिन हूँ" इस प्रकार आल्हादसे युक्त, जो कभी पहिले अनुभवमें नहीं आई ऐसी अदृष्टचर टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भाव स्वभाव वाली आत्मा नामक ज्योतिका जो अनुभवन होना है उसे आकिंचन्य गुण कहते हैं।

(२२) उत्तम ब्रह्मचर्य नामक मूलगुण—पहिले भोगी हुई स्त्रीका स्मरण न करके तथा स्त्री मात्रके प्रति प्रेम भाव न रखना, उनकी कथा के सुननेसे विमुख हो स्त्रीसे सयुक्त शय्या आसनादि पर भी न वैठना तथा ब्रह्म जो ज्ञान अथवा आत्मा, उसमें लवलीन रहना ब्रह्मचर्य नामक गुण है।

(२३) दर्शनाचार नामक गुण—दर्शन शब्दका अर्थ अवलोकन करना, श्रद्धान करना आदि हैं। उनमेंसे यहां (प्रकृत प्रकरणमें) श्रद्धा रूप अर्थ ग्रहण किया गया है। परमार्थ भूत जो तत्व और नौ पदार्थ हैं उनके स्वरूपमें श्रद्धाका अनुष्ठान होना है दर्शनाचार कहलाता है।

(२४) ज्ञानाचार नामक मूलगुणः—पांच प्रकारके ज्ञानोंके विकास के लिये कारणीभूत शास्त्र अध्ययन आदि क्रियाओंमें मनको लगाना ज्ञानाचार है।

(२५) चारित्राचार नामक मूलगुणः—प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण न हो तथा इन्द्रियादि उच्छृंखल हो मनमाने रूपसे प्रवृत्ति न करने लग जांय इस लिहाजसे नियंत्रित अपनी प्रवृत्ति करना चारित्राचार है।

(२६) तपाचार नामक मूलगुणः—शरीरके प्रति निर्ममत्व रूप परिणामोंकी दृढ़ता बनाये रखनेके लिये कायक्लेशादि रूप बारह प्रकार के तपोंका अनुष्ठान करना तपाचार कहलाता है।

(२७) वीर्याचारनामक मूलगुणः—वीर्यान्तरायके क्षयसे उत्पन्न होने वाले वीर्य तथा आहार औषधि आदिसे उत्पन्न होने वाली सामर्थ्य या बलको न छिपाते हुए तप, चारित्र आदिमें अपने आपको लगाना है उसे वीर्याचार नामक मूलगुण कहते हैं।

(२८) समता नामक मूलगुणः—इसीका दूसरा नाम सामायिक है। सामायिक शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अप् धातुसे बना है। इसका अर्थ है समीचीन रूपसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, यम, नियम, परीषह जय, इन्द्रिय जय, कषाय जय आदिमे प्रवृत्ति करना। सामायिक मे सम्पूर्ण स्त्रियोंके प्रति मातृ भाव, प्रिय और अप्रिय पदार्थोंमें समान भाव तथा मान अपमान आदिके अवसरमे समान भावोंको साधु रखता है। सामायिकमे समताकी प्रधानता रहती है।

(२९) वंदना नामक मूलगुणः—वंदना विनय क्रियाको कहते हैं। अर्हदादि परमेष्ठियों अथवा वृषभादिक तीर्थंकरोंके प्रति विनयभाव प्रदर्शित करना वंदना है। दर्शन ज्ञान चारित्रादिकमे हमेशा लगे रहने वाले अनेक गुणोंके धारक महापुरुष वंदनीय हैं।

(३०) स्तुति नामक मूलगुणः—संसारको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करने वाले, उत्तमक्षमादि रूप धर्म तीर्थोंके प्रवर्तक तथा कर्म

रूपी शत्रुओंको जीतने वाले जो जिनवर देव है उनकी गुण गाथाका गान करना, कीर्तिका बखान करना केविलयोके कीर्तनसे मुझे सन्मार्ग की ज्ञप्ति होवे आदि रूपसे स्तुति करना स्तुति नामक मूलगुण है।

(३१) प्रतिक्रमण नामक मूलगुणः—नाम स्थापनादि छहके आश्रयसे होने वाले अपराधोका निन्दन, गर्हण और आलोचन करना अथवा किये हुए अपराधोसे मन वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदनासे विरक्त होना प्रतिक्रमण है। इसके सात भेद हैं:—(१) दैवसिक (२) रात्रिक (३) ईर्यापथिक (४) पाक्षिक (५) चातुर्मासिक (६) सांवत्सरिक (७) भवमौतमार्थिक। इन सभीका आचरण आचार्य करते हैं।

(३२) प्रत्याख्यान नामक मूलगुणः—जैसा आगम ग्रंथोमें उल्लेख पाया जाता है उसके अनुसार अनागत आदि दश प्रकारका भेद वाला तथा विनयादि चार बातोसे युक्त प्रत्याख्यान करना चाहिये। प्रत्याख्यानका अर्थ है भविष्यत काल सम्बन्धी वस्तुओका परित्याग करना जिससे तत्सम्बन्धी दोष न लगे।

(३३) कायोत्सर्गनामक मूलगुणः—कायका अर्थ यहां शरीरसे ममत्व रूप परिणामका रखना है। उसका जो मुमुक्षुके द्वारा भुजाओंको लम्बा करके पैरोंके बीच चार अंगुलका अंतराल रखकर खड़ा होना है सो कायोत्सर्ग है। ऐसी स्थितिमे वह शुभध्यानमे अपनी प्रवृत्ति करता है।

(३४) मनोगुप्ति नामक मूलगुणः—प्राणीको कर्मबंधनसे बांध रखनेमें सबसे प्रमुख कारण मन है। ऐसे मनकी स्वेच्छाचारिताको रोकना मनोगुप्ति है। इससे मन आत्माको संसारके कारणोकी ओर उन्मुख नहीं कर पाता है।

(३५) वचनगुप्ति नामक मूलगुणः—मुनि जब मौनमे आरूढ़ होकर अपने विचारोंको व्यक्त करने वाले वचनोंको नियंत्रित रखता है अथवा अपनी वाणीकी वृत्तिको भली प्रकारसे संवृत करके कठोर

वचनोसे रहित कर उसे प्रयोगमे लाता है तब कहा जाता है कि वचन-गुप्तिका पालन किया जा रहा है। इससे आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मसे लिप्त हो मलिन नहीं हो पाती है।

(३६) कायगुप्ति नामक मूलगुण:—परीषह या उपसर्ग आनेपर सम्पूर्ण चेष्टाओसे निवृत्त होकर पर्यंकासनको प्राप्त करते हुए शरीरको स्थिर कर लेना कायगुप्ति है। कायोत्सर्ग स्वभाव वाली कायगुप्ति होती है।

सूत्र—औदयिकौदयिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकसान्निपातकौदयिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकपारिणामिकसान्निपातकौपशमिकौपशमिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकौदयिकसान्निपातिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकाः क्षायिकक्षायिकसान्निपातिकक्षायिकौदयिकसान्निपातिकक्षायिकौपशमिकसान्निपातिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिक क्षायिक पारिणामिकसान्निपातिकाः क्षायोपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकौदयिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकौपशमिक सान्निपातिक क्षायोपशमिकक्षायिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकपारिणामिक सान्निपातिकाः पारिणामिकपारिणामिकसान्निपातिकपारिणामिकौदयिकसान्निपातिकपारिणामिक क्षायिकसान्निपातिकपारिणामिकौपशमिकसान्निपातिकपारिणामिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकाः औदयिकौपशमिकक्षायिसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिक क्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौपशमिक क्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिका औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकाः सान्निपातिकभावाः ॥६॥

अर्थः—जीवसे सम्बन्ध रखने वाले सान्निपातिकभावोको इस

सूत्रमें गिनाया गया है। सान्निपातिक भावोंके द्वारा जीवके मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है। ऐसे भावोंकी संख्या छत्तीस है। इनके अलग अलग नाम इस प्रकारसे लिखे जायेंगे,—

(१) औदयिक-औदयिक-सान्निपातिक भाव (२) औदयिक-औपशमिक-सान्निपातिक भाव (३) औदयिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (४) औदयिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (५) औदयिक-पारिणामिक-सान्निपातिक भाव (६) औपशमिक-औपशमिक-सान्निपातिक भाव (७) औपशमिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (८) औपशमिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (९) औपशमिक-औदयिक-सान्निपातिक भाव (१०) औपशमिक-पारिणामिक-सान्निपाति भाव (११) क्षायिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (१२) क्षायिक-औदयिक-सान्निपातिक भाव (१३) क्षायिक-औपशमिक-सान्निपातिक भाव (१४) क्षायिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (१५) क्षायिक-पारिणामिक-सान्निपाति भाव (१६) क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (१७) क्षायोपशमिक-औदयिक-सान्निपातिक भाव (१८) क्षायोपशमिक-औपशमिक-सान्निपातिक भाव (१९) क्षायोपशमिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (२०) क्षायोपशमिक-पारिणामिक-सान्निपातिक भाव (२१) पारिणामिक-पारिणामिक-सान्निपातिक भाव (२२) पारिणामिक-औदयिक-सान्निपातिक भाव (२३) पारिणामिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (२४) पारिणामिक-औपशमिक-सान्निपातिक भाव (२५) पारिणामिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (२६) औदयिकौपशमिक-क्षायिक-सान्निपातिक भाव (२७) औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (२८) औदयिक-औपशमिक-पारिणामिक-सान्निपातिक भाव (२९) औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-सान्निपातिक भाव (३०) औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक सान्निपातिक भाव (३१) औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (३२) औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव (३३) औपशमिक-क्षायिक-

पारिणामिक सान्निपातिक भाव (३४) औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (३५) क्षायिक क्षायोपशमिक-पारिणामिक सान्निपातिक भाव (३६) औदयिकौपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक सान्निपातिक भाव।

(१) औदयिक औदयिक सान्निपातिक भाव:—कर्मों के उदयसे उत्पन्न होने वाले दो या दोसे अधिक औदयिक भावोंमे जो मिला हुआ भाव होता है, उसे औदयिक औदयिक सान्निपातिक भाव कहते है, जैसे मनुष्य क्रोधी इसमे मनुष्य गति नामकर्मके उदयसे मनुष्य तथा क्रोध कषाय नामक मोहनीय कर्मके उदयसे क्रोधी इसप्रकार यह मनुष्य क्रोधी औदयिक औदयिक सान्निपातिक भावका उदाहरण स्पष्ट तथा विवेचित किया गया है। आगेके उदाहरणोंमे भी ऐसी ही उपपत्ति बिठा लेनी चाहिये।

(२) औदयिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव:—कर्मके उदय और उपशमसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंसे जो मिला हुआ भाव होता वह इस कोटिमे आता है, जैसे मनुष्य उपशान्तक्रोधरूप जीवभाव।

(३) औदयिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव:—कर्मके उदय और क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोंसे जो मिले हुए भाव होते हैं उन्हे औदयिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव कहते हैं जैसे मनुष्य क्षीण कषाय रूप भाव।

(४) औदयिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव:—उन मिले हुए भावोंको, जो कर्मों के उदय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंसे पैदा होते हैं, उनको औदयिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव कहते हैं जैसे क्रोधीमतिज्ञानी रूप जीवभाव।

(५) औदयिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव:—इसमें उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है। जो कर्मों के उदय और परिणामन से उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे पैदा होते हैं, जैसे मनुष्य भव्यरूप जीवभाव।

(६) औपशमिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभावः—इसके द्वारा उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मों के उपशमसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे होते हैं। उदाहरणके लिये उपशम सम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय नामक जीव भावको ग्रहण कर सकते हैं।

(७) औपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव.— इस नामके अंतर्गत उन मिले हुए भावोंको समाविष्ट किया जाता है जो कर्मों के उपशम तथा क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं, जैसे उपशान्त क्रोध क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप जीवभाव।

(८) औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इसके द्वारा उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मों के उपशम और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे उत्पन्न होते हैं। जैसे उपशान्त कषाय अवधिज्ञानी रूप जीवभाव।

(९) औपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीवभावः- इसमे उन मिले हुए भावोंको गर्भित किया जाता है जो कर्मों के उपशम और उदय के निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं, जैसे उपशान्त-कषाय मनुष्य रूप भाव।

(१०) औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव.—कर्मों के उपशम और स्वाभाविक परिणमनसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव कहते हैं जैसे उपशान्त दर्शनमोह जीव रूप भाव।

(११) क्षायिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव —कर्मों के क्षयसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हे क्षायिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव कहते हैं जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षीण कषाय रूप जीवभाव।

(१२) क्षायिक-औदयिक सान्निपातिक जीव भाव —कर्मों के क्षय तथा उदयसे उत्पन्न होने वाले जीव भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे क्षायिक-औदयिक सान्निपातिक जीव भाव कहते

हैं जैसे क्षीणकषाय मनुष्य रूप जीव भाव।

(१३) क्षायिक-औपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—इस नामके अंतर्गत उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मों के क्षय एवं उपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशान्तवेद रूप जीव भाव।

(१४) क्षायिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इस नामके अंतर्गत उन मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मों के क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं जैसे क्षीणकषायी मतिज्ञानी रूप भाव।

(१५) क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—इसके द्वारा उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मों के क्षय तथा स्वाभाविक परिणमनसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे क्षीणमोह भव्यनामक जीवभाव।

(१६) क्षायोपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव—इस नामसे युक्त उन भावोंको कहते हैं जो कर्मों के क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे उत्पन्न होते हैं, जैसे संयत अवधिज्ञानी रूप जीवभाव।

(१७) क्षायोपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीवभावः—कर्मों के क्षयोपशम और उदयसे होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव उत्पन्न होते हैं उन्हे क्षायोपशमिक औदयिक सान्निपातिक भाव कहते हैं। जैसे संयत मनुष्य नामक जीव भाव।

(१८) क्षायोपशमिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभावः—इसके द्वारा उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मोंके क्षयोपशम तथा उपशम उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं, जैसे संयत उपशान्तकषाय नामक जीवभाव।

(१९) क्षायोपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव—इनमें उन मिले हुए भावोंको समाविष्ट किया जाता है। जैसे संयतासंयत

क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(२०) क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव—इसमे उन मिले हुए भावोका समावेश किया जाता है जो कर्मोके क्षमोपशम तथा स्वाभाविक परिणामनसे उत्पन्न होते है। जैसे अप्रमत्त संयमी जीव रूप भाव।

(२१) पारिणामिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव—कर्मोंके उदय, उपशम क्षय क्षयोपशमादिकी अपेक्षा न रखते हुए परिणमनसे उत्पन्न होने वाले दो भावोके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं वे पारिणामिक पारिणामिक सान्निपाति भाव कहलाते हैं जैसे जीव भव्य रूप परिणाम।

(२२) पारिणामिक औदयिक सान्निपातिक जीव भाव—परिणामन तथा कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होने वाले परिणामोके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे इस कोटिमे रक्खा जाता है। जैसे जीव क्रोधी रूप सान्निपातिक जीवभाव।

(२३) पारिणामिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव—परिणमन तथा कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होने वाले परिणामोंके मेलसे जो मिले हुए जीवके परिणाम होते हैं उन्हे इस कोटिमे रक्खा जाता है। जैसे भव्य क्षीणकषाय रूप जीव परिणाम।

(२४) पारिणामिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव—परिणामन और कर्मोके उपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे पारिणामिक औपशमिक सान्निपातिक जीव भाव कहते हैं जैसे भव्य उपशान्तकषाय रूप परिणाम।

(२५) पारिणामिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—परिणमन और कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे इस कोटिमे रक्खा जाता है जैसे भव्य संयत रूप जीव भाव।

(२६) औदयिक औपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव—

कर्मोंके उदय, उपशम और क्षयसे उत्पन्न होने वाले परिणामोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं, उन्हें इस कोटिमें रक्खा जाता है जैसे मनुष्य उपशान्तवेद क्षायिकसम्यग्दृष्टि रूप परिणाम।

(२७) औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इस नामके अंतर्गत आते हैं जो कर्मोंके उदय, उपशम और क्षायोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तकषाय अवधिज्ञानी रूप परिणाम।

(२८) औदयिक औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—इसमे उन मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मों के उदय, उपशम तथा परिणामनसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं, जैसे मनुष्य उपशान्त कषाय भव्य रूप परिणाम।

(२९) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इस नाम वाले होते हैं जो कर्मोंके उदय, क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं जैसे मनुष्य क्षीण कषायी मतिज्ञानी रूप भाव।

(३०) औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिकजीव भावः—इसके अन्तर्गत उन मिले हुए भावोंको रखा जाता है कर्मों उदय क्षय और परिणामसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे मिल कर बनते हैं। जैसे मनुष्य क्षीणकषायी भव्य रूप जीवपरिणाम।

(३१) औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपात्तिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इस कोटिमें आते हैं, जो कर्मों के उदय क्षयोपशम और परिणमनके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे मिल कर उत्पन्न होते है जैसे क्रोधी मतिज्ञानी अभव्य रूप जीव परिणाम।

(३२) औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—वे मिले हुए भाव इसके अन्तर्गत आते हैं जो कर्मोंके उपशम क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे उत्पन्न होते है। जैसे उपशान्तकषाय क्षायिकसम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी रूप जीव भाव।

(३३) औपशमिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इस नामके साधारण करने वाले होते हैं जो कर्मोके उपशम क्षय और परिणमनसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे होते हैं जैसे उपशान्तक्रोधी क्षायिक सम्यग्दृष्टि भव्य रूप जीव भाव।

(३४) औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इसके अन्तर्गत आते हैं जो कर्मोंके उपशम, क्षायोपशम और स्वाभाविक परिणमनसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे होते हैं। जैसे उपशान्त कषायी अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

(३५) क्षायिकक्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक-जीव भावः—कर्मों के क्षय, क्षायोपशम एवं स्वाभाविक परिणमनसे उत्पन्न होने वाले जीवके भावोके मेलसे उत्पन्न होने वाले भावोको क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव कहते हैं जैसे क्षीण कषायो मतिज्ञानी भव्य रूप जीव भाव।

(३६) औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले तथा उदयादिक अपेक्षा न रखते हुए परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिला हुआ भाव होता है वह इस कोटिमे आता है। जैसे मनुष्य उपशान्तक्रोध क्षायिकसम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी भव्य रूप जीव भाव।

ये छत्तीस सान्निपातिकभाव जो यहां गिनाये गये है उनमे से पच्चीस शुरूके भाव दो २ भावोके संयोगसे उत्पन्न होने वाले भाव हैं छब्बीससे लेकर पैंतीस तकके भाव तीन तीन भावोके संयोगसे उत्पन्न होने वाले दस भाव हैं। एक और अन्तिम सान्निपातिक भावोका भेद पांचो भावों-के संयोगसे उत्पन्न होने वाला या बनने वाला है।

सूत्र—औपशमिकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्व मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिक सम्यक्त्व दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चतुर्गतिक्रोधमानमायालोभपुंस्त्रीनपुंसकवेदाज्ञानसयमासिद्धत्व कृष्णनीलका-

पीतपीतपद्मशुक्ललेश्याजीवत्वभव्य त्वेऽविरतसम्यक्त्वेभावाः ॥७॥

अर्थः—अविरत सम्यक्त्व नामके चौथे गुणस्थानमें पाये जाने वाले उन भावोंके नाम इस सूत्रमे बतलाये गये हैं जिनका सम्बन्ध जीवसे ही है। वे जीवके असाधारण भाव हैं, मात्र जीवमे ही पाये जाते है। भावोंके जो कि छत्तीस हैं, नाम अलग अलग यो हैं:—

(१) औपशमिक सम्यक्त्व नामक भाव (२) क्षायिक सम्यक्त्व भाव (३) मतिज्ञान (४) श्रुतज्ञान (५) अवधिज्ञान (६) चक्षु दर्शन (७) अचक्षु दर्शन (८) अवधि दर्शन (९) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व (१०) क्षायोपशमिक दान (११) क्षायोपशमिक लाभ (१२) क्षायोपशमिक भोग (१३) क्षायोपशमिक उपभोग (१४) क्षायोपशमिक वीर्य (१५) नरकगति (१६) तिर्यग्गति (१७) मनुष्य-गति (१८) देवगति (१९) क्रोध भाव (२०) मान भाव (२१) मायाभाव (२२) लोभभाव (२३) पुंवेद (२४) स्त्रीवेद (२५) नपुंसकवेद (२६) अज्ञानभाव (२७) असंयमभाव (२८) असिद्धत्वभाव (२९) कृष्णलेश्या भाव (३०) नीललेश्याभाव (३१) कापोतलेश्याभाव (३२) पीतलेश्या भाव (३३) पद्मलेश्याभाव (३४) शुक्ललेश्या भाव (३५) जीवत्व भाव (३६) भव्यत्वभाव।

सूत्र—आचाराधारव्यवहारप्रकारकायायापायदिगुत्पीडापरिस्राविसुखावहा, दशस्थितिकल्पा द्वादशतपांसि षडावश्यका आचार्यगुणाः ॥८॥

अर्थः—इस सूत्रमे आचार्योंके छत्तीस गुणोंको गिनाया गया है। पांच परम पूज्य परमेष्ठियोंमे से तीसरे परमेष्ठीका नाम आचार्य है। मुनि पदकी समस्त क्रियाओंको करते हुए वे पंचाचारोंका विशेष रूपसे पालन करते हैं। इसके साथ ही साथ चतुर्विध संघका समुचित रीत्या संचालन एवं नियंत्रण भी करते है। उनके गुणोंके नाम अलग अलग इस प्रकारसे है:—

(१) आचार नामक गुण (२) आधार नामक गुण (३) व्यवहार नामक गुण (४) प्रकारक नामकगुण (५) आयापायदृगनामक गुण

(६) उत्पीड नामक गुण (७) अपरिस्रावी नामक गुण (८) सुखावह नामक गुण (९) अचेलक्य नामक कल्प (१०) उद्देशिक नामक कल्प (११) सेज्जाधर नामक कल्प (१२) राज पिण्ड विवर्जन (१३) कृतिकर्म नामक कल्प (१४) व्रतारोपण योग्यता नामक कल्प (१५) ज्येष्ठ नामक कल्प (१६) प्रतिक्रमण नामक कल्प (१७) मासैक वासिता नामक कल्प (१८) पाद्य नामक स्थितिकल्प (९ से लेकर १८ तकके दश स्थिति कल्प हैं जो कि आचार्य गुणमे गर्भित है) (१९) अनशन तप (२०) अवमौदर्य तप (२१) वृत्तिपरिसख्यान तप (२२) रसपरित्याग तप (२३) विविक्त-शय्यासन तप (२४) कायक्लेश तप (२५) प्रायश्चित्त तप (२६) विनय तप (२७) वैयावृत्य तप (२८) स्वाध्याय तप (२९) व्युत्सर्ग तप (३०) ध्यान तप (३१) सामायिक आवश्यक (३२) चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक (३३) वन्दना आवश्यक (३४) प्रतिक्रमण आवश्यक (३५) प्रत्याख्यान आवश्यक (३६) कायोत्सर्ग आवश्यक।

(१) आचार नामक आचार्यगुण —पांच प्रकारके आचारोका अतिचार रहित पालन करना, दूसरे संघ स्थित साधुओको इन पंचा-चारोको निरतिचार रूपसे परिपालनके लिये प्रवृत्ति कराना तथा शिष्यो आचार सम्बन्धी शिक्षा देना आदि आचार्यका आचारवत्व नामक गुण कहलाता है ।

(२) आधार नामक आचार्य गुणः—इस गुणसे युक्त वही आचार्य कहलाता है। जो चौदहपूर्वों, दसपूर्वो अथवा नौ पूर्वोंका जानने वाला हो, समुद्रके समान गम्भीर हो, अति बुद्धिमान हो और प्रायश्चित्त शास्त्रकी अच्छी जानकारी रखनेके साथ ही साथ अनेक वार अपराधी मुनियोको प्रायश्चित्त देकर इस विषयका विशेषज्ञान प्राप्त कर लेने वाला हो। इनका ज्ञान दर्शन चारित्र और तपके लिये आधार भूत होता है अत ये (आचार्य) आधारवत्व गुणके धारक कहे जाते हैं।

(३) व्यवहार नामक आचार्यगुण—जो पांच प्रकारके प्रायश्चित्तों (आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, जीद) को उनके स्वरूप सहित विस्तार-

से जानते हैं, जिन्होंने प्रायश्चित्त देते हुए अन्य आचार्योंको देखा है और स्वयं भी जिन्होंने प्रायश्चित्तदिया है ऐसे आचार्यको व्यवहारवान आचार्य कहते हैं।

(४) प्रकारक नामक आचार्यगुणः—क्षपकका अर्थ मुमुक्षु मुनि है। जब वह वसतिकामे प्रवेश करता है या उससे बाहर जाता है, उस समयमे, वसतिका के शोधन समयमे संस्तरके शोधन समयमे तथा उपकरणके शोधन समयमे खड़े रहना, बैठना, सोना, मल दूर करना, पानी लाना आदि आहार कार्योंके करनेमें जो आचार्य क्षपकके ऊपर अनुग्रह करते हैं उसे प्रकुर्वी कहते है। आचार्य इस गुणका धारक होता हुआ क्षपको पर अनुग्रह करता है।

(५) आयोपायदर्शिनामक आचार्यगुणः—आचार्य जिनको पंचाचारोका पालन कराता है ऐसे शिष्य मुनियोंमे से कोई मुनि रोगाक्रांतादि होता हुआ मनुष्य भव छोड़नेके आस पास होता है तब वह, तिरस्कारके भय एवं वन्दन, आदि प्राप्त करनेकी अभिलाषासे अपने दोषोंकी एक तो आलोचना करताही नहीं है और जैसे तैसे तैय्यार भी हो जाय तो मनमे माया रखते हुए मात्र सामान्य दोषोंका कथन करता है। उस समय क्षपकके समक्ष आलोचना न करनेसे होने वाले रत्न त्रय-विनाश रूप अपाय तथा करनेसे रत्न त्रयमे निर्मलताकी प्राप्ति रूप उपाय (लाभ) को दर्शाना आचार्यका आयोपायदर्शित्व नामक गुण है। इस गुणके अभावके कारण आचार्यसे शिष्योके बड़े भारी अहित होनेकी संभावना रहती है।

(६) उत्पीडन नामक आचार्यगुणः—मधुर हितकारी वचनोंके द्वारा समझाये जाने पर भी क्षपक तीव्र अभिमानके कारण या लज्जा, भय, क्लेश आदि सहन करनेकी इच्छा न होनेके कारण दोषोंका शल्य रहित होकर आचार्यके समक्ष उल्लेख नही करता है तब आचार्य उत्पीडन गुणका आश्रय लेते है। सामके बजाय दण्डको अपनाते हैं और इस गुणसे दोषोंको मुंह उसी प्रकार उगलवा लेते हैं जिस प्रकार सिंह

सियारके पेटमे पहुँची हुई मांसकी डलियोंको अपने रुआब और दबदबेसे निकलवा लेता है। उत्पीडक गुण विशिष्ट आचार्य ओजस्वी शेरके समान, तेजस्वी सूर्यके समान और रुआब तथा दबदबेमे चक्रवर्तीके समान होते हैं। आचार्य जो कठोर और कटु शब्दोंसे प्रताड़ना कर दोष शुद्धि कराते हैं उसे उत्पीडन कहते है।

(७) अपरिस्रावी नामक आचार्य गुण—जैसे अग्निसे तपाया हुआ लोहेका गोला पानीमे छोड़े जाने पर चारो तरफसे, पानीका आकर्षण करता है या उसका शोषण करता है तथा दूसराको नहीं देता है उसी प्रकार क्षपकके दोषोंको सुन कर अपने हृदयमे से बाहर न निकलने देना, उनको अपने मनमे ही रखना आचार्यका अपरिस्रावी गुण है।

(८) सुखावहनामक आचार्यगुण.—समाधिमरण या सल्लेखनामे तत्पर साधुको आचार्य सुखकारी कथा आदि सुथिर मनसे सुनाते हुए उन्हे पदमे दृढ़ बनाये रखते है। जैसे समुद्रकी विक्षुब्ध लाख २ लहरोंके ऊपर उछलने वाली रत्नोंसे भरी नौकाको नाविक लाग डूबनेसे बचाते है उसी प्रकार ससार समुद्रमे शील, संयम, समाधि रूप बहूमूल्य रत्नोंसे भरी हुई यतिकी जीवन रूपी नौका डगमगा रहा है, अत्यन्त चतुर अनुभवी आचार्य रूपी नाविक सुखकारी वाणीके द्वारा डूबनेसे बचाते हैं। यही उनका सुखावह नामक गुण कहलाता है।

(९) अचेलक्य नामक स्थिति कल्पः—चेलका अर्थ वस्त्र है लेकिन यहा वस्त्र रूप ही अर्थ न लेते हुए सम्पूर्ण परिग्रह रूप अर्थ ग्रहण करना चाहिये। अत. इसका अर्थ हुआ सम्पूर्ण परिग्रहोंसे रहितपना अथवा उनका सर्वथा त्याग कर विरक्त होना। इसके होने पर ही त्याग धर्मकी, अचौर्य महाव्रतादिकी पूर्ण परिपालना होती है।

(१०) उद्देशिक नामक स्थिति कल्पः—श्रमणका अर्थ मुनि है, उनको निमित्त मान कर या उनके उद्देश्यसे किये गये आहार, वसतिका आदिको उद्देशिक कहलाता है। यह आधाकर्म आदिके भेदसे सोलह प्रकारका है। इसका (उद्देशिक) जो त्याग करता है उसे उद्देशिक स्थिति

कल्प कहते हैं।

(११) सेज्जायरनामक स्थितिकल्पः—सेज्जायरका संस्कृत रूपान्तर शय्यायर है। इस शब्दके तीन अर्थ हैं:—(१) सेज्जायर (शय्याघर) वह जो वसतिकाको बनवाता है। (२) सेज्जाघरः—बनाई हुई वसतिकाका संस्कार कराने वाला गिरी हुईको सुधारने वाला अथवा कोई एक भाग गिर गया हो उसको सुधारने वाला सेज्जाधर कहलाता है।

(३) शय्याधरः—जो वसतिका बनवाता नहीं है, उसका संस्कार नहीं कराता है परन्तु साधुसे कहता है कि "आप यहां निवास करिये" वह भी शय्याधर कहलाता है। इस तरह तीनों प्रकारके शय्यायरोंके आहारका (पिण्डका) पिच्छिका कमंडलु आदि उपकरणोंके ग्रहणका परित्याग करना शय्याधर या सेज्जाधर नामक स्थितिकल्प है।

(१२) राजपिण्डविवर्जन नामक स्थितिकल्पः—इक्ष्वाकु, कुल, रघु, कुल, हरि कुल आदि वंशोंमें पैदा होने वाले, सज्जन संरक्षण, दुष्ट दमन आदिके द्वारा प्रजाके अनुरंजन करने वालेको राजा कहते हैं। उसके यहां अन्न, पान, आदि रूप आहार पिण्डको, तृण, फलक, आसनादि रूप अनाहार पिण्डको और पिछी, पात्र आदि रूप उपाधि पिण्डको ग्रहण नहीं करना सोराजपिण्ड विवर्जन नामक स्थितिकल्प है।

(१३) कृतिकर्म नामक स्थितिकल्पः—कृति कर्मका अर्थ है कर्तव्य कर्म। पंच नमस्कार, छह आवश्यकादि रूप तेरह क्रियाओंको सतत-करतेरहना अथवा अपने गुरु तथा बड़े मुनियोंकी विनय सुश्रूषादि करने-में तत्पर रहना कृति कर्म नामक स्थिति कल्प कहलाता है।

(१४) व्रतारोपणयोग्यता नामक स्थितिकल्पः—जिसने जीव निकाय के स्वरूपको भलि भांति जान लिया है ऐसे मुनिको नियमसे व्रत देना व्रतारोपणयोग्यता नामक स्थिति कल्प है। उत्तर गुण सहित मूलगुणों-की पालना को भी व्रतारोपण कहते हैं। इसके योग्य वही साधु होता है जो निर्ग्रंथ अवस्थाको धारण कर रहा हो, उद्देशिकाहार राजपिण्डा-दिका त्यागी हो, गुरुभक्त हो और विनय युक्त हो। यही छटवां

स्थितिकल्प है जिसमे पहिलेके कल्पोसे सम्बन्ध है ।

(१५) ज्येष्ठ नामक स्थिति कल्प —जिसने बहुत समय पहिलेसे दीक्षा ले रक्खी हो, जो पांच महाव्रतोंको सुचारु रीत्या पालन कर रही हो ऐसी आर्थिकासे भी आज दीक्षित हुआ मुनि ज्येष्ठ होता है। यही ज्येष्ठत्व नामक स्थितिकल्प है जो कि आचार्य गुणोमे से एक है।

(१६) प्रतिक्रमण नामक स्थितिकल्प—अचेलतादि कल्पोमें रहते हुए मुनीको या आचार्यको जो अतिचार लगते हैं उनको हटानेके लिये ऐर्यापथिक, रात्रिक, दैवसिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थक रूप सातप्रकारके प्रतिक्रमणोका करना प्रतिक्रमण नामक स्थितिकल्प कहलाता है ।

(१७) मासैक वसिना नामक स्थिति कल्पः—वसन्त आदि छह ऋतुओमेसे एक एक ऋतुमे एक माससे अधिक समय तक निवास न करना, और करना भी पड़े तो एक मास तक रहना नवमा स्थिति कल्प है। यह रोक या सीमा निर्धारण इसलिये करदी है जिससे उद्गमादि दोष, आलस्य, वसतिकाप्रेम, सुख लंपटतादि दोषोका पात्र साधु न हो जाय।

(१८) पाद्य नामक स्थितिकल्पः—जिस समय जमीनके ऊपर स्थावर जंगमादि जीवोका संचरण बहुत ज्यादा होता है ऐसे वर्षाकालके चारमासोमे एक स्थान पर ही रहना पाद्य नामक स्थिति कल्प है।

(१९) अनशन नामक तप—चार प्रकारके आहारोका चौथे, छटवे, आठवे आदि भेदोको लेकर धारणा पारणा सहित त्याग करना अनशन नामक तप है ।

(२०) अवमौदर्य नामक तप—मुनिका बत्तीस ग्रास रूप मनुष्यके साधारण आहारमे से एक ग्रास अवशिष्ट रहने तक उसमे से जो कम करते जाना है सो अवमौदर्य नामक तप है ।

(२१) वृत्तिपरिसंख्याननामक तप—आहार लेनेके लिये चर्याको जब साधु निकले तब उसमे घरोकी संख्या क्रम आदिका नियम लेना

वृत्तिपरिसंख्यान कहलाता है ।

(२२) रसपरित्याग नामक तपः—घी, दूध, दही, तेल, गुड़ नमक आदि का और इनके रसका परित्याग कर भोजन लेना रसपरित्याग तपहै ।

(२३) विविक्तशय्यासन नामक तपः—प्रासुक, जन्तु रहित एकान्त वसतिकादिमे सोना, आसनादि लगाना विविक्तशय्यासन है ।

(२४) कायक्लेश नामक तपः—गोदूहन, वज्रासन, वीरासनादि आसनों को लगा ध्यान करना, शरीरसे मोह कम करना कायक्लेश नामक तप है ।

(२५) प्रायश्चित नामक तपः—प्रमादसे लगे दोषोंको दूर करना ।

(२६) विनय नामक तपः—पूज्य पुरुषोंके प्रति आदर भाव रखना ।

(२७) वैयावृत्य नामक तपः—शरीर वगैरहसे सेवा सुश्रूषा करना ।

(२८) स्वाध्याय नामक तपः—आलस्य त्याग कर सन्तत शास्त्र अध्ययनमें लगे रहना, अथवा स्व जो आत्मा उसकी ओर हमेशा अपनी दृष्टि लगाये रखना ।

(२९) व्युत्सर्ग नामक तपः—अंतरंग और बहिरंग उपाधियोंमें से ममत्व रूप परिणामोका त्याग करना ।

(३०) ध्यान नामक तपः—आत्म स्वरूपकी ओर मनको लगाना, इसको नियंत्रित करके किसी एक पदार्थके चितवनमें लगाना ध्यान नामक तप है ।

(३१) सामायिक नामक आवश्यकः—समीचीन रूपसे ज्ञान दर्शनादिक आत्मीक गुणोके स्वरूपमे अपने आपको तन्मय बना देना, अथवा रागद्वेष रहित आत्म परिणतिका होना सामायिक कहलाती है ।

(३२) चतुर्विंशतिस्तव नामक आवश्यकः—जीवोंको हितकारी मार्गका प्रदर्शन करने वाले चौबीस तीर्थंकरोमे से किसी एकका आलम्बन ले स्तुति आदि करना चतुर्विंशतिस्तव कहलाता है ।

(३३) वंदना नामक आवश्यकः—हमेशा दर्शन ज्ञान चारित्रकी आराधनामें लगे रहने वाले ग्रहनीय पुरुषोकी वंदना करना. उनके प्रति विनय नमस्कारादि करना सो वंदना नामक आवश्यक है ।

(३४) प्रतिक्रमण नामक आवश्यक—प्रमाद जन्य दोषोका आलोचनादि करके परिहार करना प्रतिक्रमण है ।

(३५) प्रत्याख्यान नामक आवश्यक—भविष्यत काल सम्बन्धी दोषोके विषयमे सावधान होकर व उनके परिहारमे तत्पर होते हुए प्रवृत्ति करना प्रत्याख्यान कहलाता है ।

(३६) कायोत्सर्ग नामक आवश्यक—कायमे ममत्वको हटा कर हाथोको लम्बा कर तथा पैरोके बीचमे चार अंगुलका अन्तराल एव खड़े हो जाना कायोत्सर्ग है । ऐसी अवस्थामे साधु या आचार्य शुभध्यानमें लवलीन रहते हैं । ये छत्तीस आचार्य गुण है । अब अगले सूत्रमे दूसरी तरहसे छत्तीस गुणोको लिखा जाता है ।

सूत्र—ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनासमितयोमनोवाक्कायगुप्तयः दशधर्मा द्वादशतपासि षडा वश्यका वा ॥६॥

अर्थ—जैसा कि संकेत दिया जा चुका है इस सूत्रमें भी एक दूसरे ढंगसे ही आचार्योंके छत्तीस गुण गिनाये गये हैं । गुणोके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं—

(१) ईर्यासमिति नामक आचार्यगुण (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोके साथ भी " नामक आचार्य गुण जोड़ लेना चाहिये) (२) भाषा समिति (३) ऐषणा समिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) प्रतिष्ठापना समिति (६) मनोगुप्ति (७) वचन गुप्ति (८) कायगुप्ति (९) उत्तम क्षमा (१०) उत्तम मार्दव (११) उत्तम आर्जव (१२) उत्तम शौच (१३) उत्तम सत्य (१४) उत्तम संयम (१५) उत्तम तप (१६) उत्तम त्याग (१७) उत्तम आकिञ्चन्य (१८) उत्तम ब्रह्मचर्य (१९) अनशन तप (२०) अवमौदर्य तप (२१) वृत्ति परिसंख्यान तप (२२) रस परित्याग तप (२३) विविक्तशय्यासन तप (२४) कायक्लेश तप (२५) प्रायश्चित

तप (२६) विनय तप (२७) वैयावृत्य तप (२८) स्वाध्याय तप (२९) व्युत्सर्ग तप (३०) ध्यान तप (३१) समता आवश्यक (३२) चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक (३३) वंदना आवश्यक (३४) प्रतिक्रमण आवश्यक (३५) प्रत्याख्यान आवश्यक (३६) कायोत्सर्ग आवश्यक ।

(१) ईर्यासमिति नामक गुण:—दिनके समय, जिस पर हाथी, गधे, ऊंट, गाय, भैंस, मनुष्यादिकोंका संचार हो चुका हो ऐसे जीव रहित प्रासुक मार्गमे शास्त्र श्रवण, तीर्थ यात्रा, गुरु दर्शनादिकके निमित्तसे चार हाथ प्रमाण भूमिको जीव रक्षाकी दृष्टिसे देखते हुए सावधानी पूर्वक गमनागमन क्रिया करना ईर्या समिति है। समितिका अर्थ साधारण तया सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करना है ।

(२) भाषासमिति नामक गुण:—पैशून्य, कर्कश, परनिन्दादि रूप प्राणियोंके प्राणोंको ठेस पहुँचाने वाले शब्दों या वचनोंका परित्याग करके अपने और परके हितकारक सीमित वचनोंको योजना भाषा समिति कहते है ।

(३) एषणा समिति नामक गुण:—छियालीस दोषोंके बिना तथा नवकोटीसे शुद्ध प्रासुक आहारको नवधाभक्ति पूर्वक ग्रहण करना ऐषणा समिति कहलाती है ।

(४) आदान निक्षेपण समिति नामक गुण:—ज्ञान अर्जनके लिये निमित्त भूत पुस्तक, ग्रंथ, आगमादि रूप ज्ञानोपाधिको, पाप क्रिया निवृत्तिरूप संयमके साधनीभूत पिच्छिकादि रूप संयमोपाधिको तथा मूत्र, पुरीष (टट्टी) आदि धोनेके लिये कारणीभूत कुंडयादि शौचोपाधिका सावधानीके साथ लेना, उठाना, धरना आदि आदाननिक्षेपण समिति कहलाता है ।

(५) प्रतिष्ठापना समिति नामक गुण:—जहां पर जन साधारणकी आवक जावक नहीं है, जहाँ हरितकाय एवं त्रसकायके जीव नहीं पाये जाते ऐसे गांवसे दूर संवृत विलादिसे रहित स्थानमे टट्टी पेशाब आदिका परित्याग करना प्रतिष्ठापना समिति कहलाती है ।

(६) मनोगुप्ति नामक गुण'—मन अनियंत्रित अथवा बेलगाम होकर आत्माको पापके गहरे गड्ढे में न गिरादे इस लिहाजसे उसको वशमे रख आत्माको असत्मार्गसे बचाये रखना मनोगुप्ति कहलाती है।

(७) वचनगुप्ति नामक गुण'--वैरकी जड़ वचन (हास्य) हुआ करते हैं। साथ ही इन वचनोका यदि नियंत्रणके साथ प्रयोग किया जाय तो इनसे बढ़कर लोकोपकारक कोई और दूसरा है नहीं। इसलिये आत्माकी रक्षा करनेके लिहाजसे वचनोंको संयमित रखकर उपयोगमे लाना भाषा समिति है।

(८) कायगुप्ति नामक गुण—कायका अर्थ शरीर है उसकी चेष्टाओ पर नियत्रण रखना अथवा हिसादिक पाप कार्योंसे अपने शरीरको दूर रखना कायगुप्ति है। गुप्तिको गुप्ति इसलिये भी कहते हैं इनके द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रादि गुणोकी रक्षाकी जाती है। ये व्रतोकी पाप या अशुभ कर्मोसे उसी प्रकार रक्षा करती हैं जैसे प्राकार या खाई नगरकी रक्षा करते हैं।

(९ से १८) दश धर्मोंके नाम हैं इनमे। इनका स्वरूप इसी अध्यायके पाचवे सूत्रकी टीकामे से जान लेना चाहिये। संक्षेपमे इनका स्वरूप यो है.—

(९) उत्तमक्षमा नामक गुण'—क्रोधका त्याग करना।

(१०) उत्तम मार्दव नामक गुणः—मान कषायको हटाना।

(११) उत्तम आर्जव नामक गुण–परिणामोकी सरलता रखना।

(१२) उत्तम शौच नामक गुण'—लोभ रूप परिणामोको हटाना।

(१३) उत्तम सत्य नामक गुण'–समीचीन वचनोको बोलना।

(१४) उत्तम संयम नामक गुणः—मन और इन्द्रियको वशमे करना।

(१५) उत्तम तप नामक गुणः–बारह प्रकारके तपोको तपना।

(१६) उत्तम त्याग नामक गुणः—विकारोंका त्याग करना, दान देना।

(१७) उत्तम आकिंचिन्य नामक गुणः—चौबीस् प्रकारके परिग्रहों का त्याग करना।

(१८) उत्तम ब्रह्मचर्य नामक गुणः—पूरे रूपसे ब्रह्मचर्य पालना।

(१६ से २०) इन नामोमे बारह प्रकारके तपोंका उल्लेख है इनका भी स्वरूप पाचवें सूत्रसे जान लेना चाहिये। संक्षेपमे इस प्रकारसे हैं:-

(१६) अनशन नामक तपः-उपवास करना अनशन कहलाता है।

(२०) अवमौदर्य नामक तपः—साधारण आहारसे कम खाना।

(२१) वृत्तिपरिसंख्यान तप·—चर्या विषयक नियम कर लेना।

(२२) रसपरित्याग नामक तपः—छह रसोका शक्ति अनुसार त्यागना।

(२३) विविक्तशय्यासन तप.—एकान्त वसतिकादिमें शयन आसन आदि करना। ऐसे स्थानको प्रासुक एवं शुद्ध होना चाहिये।

(२४) कायक्लेश नामक तपः—नाना आसनोसे शरीरको कृश करना।

(२५) प्रायश्चित नामक तपः-प्रमाद जन्य दोषोका परिहार करना।

(२६) विनय नामक तपः-गुरुजनोंके प्रति आदर भाव रखना।

(२७) वैयावृत्य नामक तपः-शरीरसे सेवा सुश्रूषादि करना।

(२८) स्वाध्याय नामक तपः-परमागमोके अध्ययनमें लगे रहना।

(२६) व्युत्सर्ग नामक तप·—बाह्य और अंतरंग परिग्रहों (क्षेत्र वास्तु आदि रूप बाह्य तथा क्रोधादि कपाय रूप अतरंग परिग्रहो) का परित्याग करना व्युत्सर्ग है।

(३०) ध्यान नामक तपः-आर्त्त रौद्र रूप ध्यानोंका परित्याग कर धर्म और शुक्ल ध्यानोंमें मनको लगाना, चित्तको स्थिर करना ध्यान है।

(३१ से ३६) इनमे छह आवश्यकोंके नाम उल्लिखित हैं। इनका स्वरूप भी पाचवें सूत्रकी टीकामे है संक्षेपमे इस प्रकारसे इनका स्वरूप

इस प्रकारसे है'—

(३१) सामायिक नामक आवश्यक—जो जीवका सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, तप आदिक गुणोंसे भले प्रकारसे मिल जाना समय कहलाता है। इसीको सामायिक कहते है। अथवा राग द्वेषादि रूप परिणतिको रोक कर सम्पूर्ण कर्तव्योंमे जो समता भावका होना, चौदह पूर्व और बारह अंगोंमे श्रद्धा रूप परिणाम रखना सामायिक कहलाती है।

(३२) चतुर्विंशति स्तव नामक आवश्यकः—चौबीस भगवानोंके किसी कल्याणक, समोशरण आदिका आश्रय ले स्तुति पाठ करना चतुर्विंशतिस्तव कहलाता है।

(३३) वन्दना नामक आवश्यक – महनीय व्यक्तियोंके प्रति आदर भाव रखते हुए उनके गुण गान करना वन्दना है।

(३४) प्रतिक्रमण नामक आवश्यकः—किये हुए दोषो या अतिचारोंसे कृत कारित अनुमोदना पूर्वक दूर हटना, उनसे शोधन अपने द्वारा आपको मुक्त करना।

(३५) प्रत्याख्यान नामक आवश्यक—भविष्यत काल संबंधी वस्तुका परित्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है।

(३६) कायोत्सर्ग नामक आवश्यक—शरीरसे ममत्व हटा कर उसका उत्सर्ग करनेमें तत्पर हो जाना, कायोत्सर्ग कहलाता है। इस तरहसे ये छत्तीस गुण हुए।

सूत्र—पञ्च समितयस्तिस्त्रोगुप्तयो दश स्थिति कल्पा द्वादशतपासि षडावश्यकाश्च ॥१०॥

अर्थ—आचार्योंके छत्तीस गुणोंके दो ढग लगातार वर्णित हो चुके हैं। इस सूत्रमे तीसरे ढंगसे छत्तीस गुणोंको गिनाया गया है। पाच समितियों, तीन गुप्तियो, दश स्थितिकल्पों, बारह तपो और छह आवश्यकोंको यदि जोड़ दिया जाय तो आचार्यके छत्तीस गुण हो जायेंगे। इन छत्तीस गुणोंको अलग अलग इस प्रकार लिखा जायगा,

या उनके अलग २ नाम ये हैं:—

(१) ईर्यासमिति नामक आचार्य गुण (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी नामक आचार्यगुण पद जोड़ लेना चाहिये) (२) भाषा समिति (३) ऐषणा समिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) प्रतिष्ठापना समिति (६) मनोगुप्ति (७) वचनगुप्ति (८) कायगुप्ति (९) अचेलक स्थितिकल्प (१०) उद्देशिक कल्प (११) सेज्जाधर स्थिति-कल्प (१२) राजपिण्ड विवर्जन (१३) कृतिकर्म नामक स्थितिकल्प (१४) व्रतारोपण योग्यता स्थितिकल्प (१५) ज्येष्ठ स्थिति कल्प (१६) प्रतिक्रमण स्थितिकल्प (१७) मासैक वसिता स्थितिकल्प (१८) पाद्य स्थितिकल्प (१९) अनशन तप (२०) अवमौदर्य तप (२१) वृत्तिपरिसं-ख्यान तप (२२) रसपरित्याग तप (२३) विविक्तशय्यासन तप (२४) काय-क्लेश तप (२५) प्रायश्चित्त तप (२६) विनय तप (२७) वैयावृत्य तप (२८) स्वाध्याय तप (२९) व्युत्सर्ग तप (३०) ध्यान तप (३१) सामायिक आवश्यक (३२) चतुर्विंशितिस्तव आवश्यक (३३) वंदना आवश्यक (३४) प्रतिक्रमण आवश्यक (३५) प्रत्याख्यान आवश्यक (३६) कायोत्सर्ग आवश्यक ।

(१ से ५) पांच समितियोंके नाम इनमें दिये गये हैं। इनका स्वरूप पूर्व सूत्रमे बतला दिया गया है । फिर भी संक्षेपमे यो हैं:—

(१) ईर्या समितिः—सावधानी पूर्वक गमनागमन करना ।

(२) भाषा समितिः—हित मित और समीचीन भाषाका बोलना ।

(३) ऐषणा समितिः—छियालीस दोष रहित शुद्ध भोजन करना ।

(४) आदाननिक्षेपण समितिः—ज्ञानोपाधियों, संयमोपाधियों और शौचापाधियोंको देखभालकर उठाना धरना ।

(५) प्रतिष्ठापना समितिः—प्रासुक स्थानपर मलमूत्रादिक्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है ।

(६) मनोगुप्तिः—मनकी स्वेच्छाचारिताको रोकना ।

(७) वचनगुप्तिः—वचनकी स्वेच्छाचारिताको रोकना ।

(८) कायगुप्ति—शरीरकी चेष्टाओंको नियंत्रित करना।

(९ से १८ तक) दश स्थिति कल्पोंके इनमे नाम हैं। इनका वर्णन आठवे सूत्रमे कर दिया गया है, वहांसे इनका स्वरूप जान लेना चाहिये।

(१९ से ३० तक) इनमे वारह तपोके नाम लिखे गये हैं, इनका वर्णन भी पूर्व सूत्रमे दिया जा चुका है, वहांसे इनका स्वरूप जान लेना चाहिये।

(३१ से ३६ तक) इनमे छह आवश्यकोंके नाम लिखे गये हैं। इनका स्वरूप भी पूर्व सूत्रमे दिया जा चुका है, वहांसे इनका स्वरूप जान लेना चाहिये। इस प्रकार तीन सूत्रोमे आचार्यके गुणोंको तीन तरह वर्णित किया जा चुका है।

सूत्र—भैरववगालीवैरारीमाध्वीसैंधवनटकल्याणटोडीगौरीखंभावतमालकौशपटमंजरिरामकर्लागुनकलीविलाविलहिंडौलकानरोमानकेदारा कामोदधनासिरदीपक देसीमारू, आशावरीभूपालीगुर्जरीसोरठ विहग मल्हारजैतश्रीसारंग वसन्तमोहनीविभासललिताख्यास्तीर्थकृज्जन्मोत्सवेइन्द्रगीतप्रधानरागाः ॥११॥

अर्थः—षोडस कारण-भावनाओंकी भावना भानेसे प्राणी अपना संसार समाप्तिकी ओर तो लेही आता है साथ ही अपनी जीवन नौकाको तीर्थ वना वहुतोंको भव समुद्रसे पार उतार देता है। ऐसा लोकहितकारी भावनासे ओतप्रोत वह जव अगले भवमे जन्म लेता है, तव वह तीर्थंकर कहलाता है। उसके पांच अवसरोपर पांच कल्याणक मनाये जाते हैं, संसारके समस्त प्राणी आनन्द विभोर हो नाचने लग जाते हैं। जव गर्भोत्सव हो चुकता है और भगवान तीर्थंकरका जन्म होता है तो नर नारी, वालक, वृद्ध आदि खुशिया मनाते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, देवता लोग, उनके अधिपत्ति इन्द्रादिक भी अवधिज्ञानसे भगवानका जन्म जान उत्सव मनानेके लिये आते हैं। वे विविध रागोंमें गुणगान करते हैं। इन्द्र जिन रागोंका आश्रय ले गाता है, उनके नाम ये हैं:—

(१) भैरव राग (२) बंगाली राग (३) वैरारी राग (४) माध्वी राग (५) सैंधव राग (६) नट राग (७) कल्याण राग (८) टोडी राग (९) गौरी राग (१०) खंभावत राग (११) मालकोश राग (१२) पट राग (१३) मंजरि राग (१४) रामकली राग (१५) गुनकली राग (१६) बिलाबिल राग (१७) हिंदोलक राग (१८) सोमान राग (१९) केदारा राग (२०) कामोदध राग (२१) नासिर राग (२२) दीपक राग (२३) देशी राग (२४) मारू राग (२५) आशावरी राग (२६) भूपाली राग (२७) गुर्जरी राग (२८) सोरठ राग (२९) विहंग राग (३०) मल्हार राग (३१) जैनश्री राग (३२) सारंग राग (३३) बसन्त राग (३४) मोहनी राग (३५) बिभास राग (३६) ललित राग। इन रागोंमें भगवानके गुणोंका गान कर इन्द्र अपनी श्रद्धा व भक्ति प्रदर्शित करता है। इसके बाद जन्म कल्याणकका उत्सव मना वह स्वर्गमें चला जाता है।

सूत्र—कारणत्रयाष्टमदपञ्चेन्द्रियविकथाचतुष्कसप्तव्यसनकषायचतुष्कमिथ्यात्वपञ्चकेतिषट्त्रिंशद् कर्माणि निगोदकारणानि ॥१२॥

अर्थः—घृणिततम एवं नीचतम कर्मोंका फल यह प्राणी निगोद पर्यायको प्राप्त कर भोगता है। वहां जन्म मरणके दुःखोंको प्राप्त करता है। अंतमुहूर्तमें छियासठ हजार तीनसौ छत्तीस (६६३३६) बार वह जन्मता है और मरणको प्राप्त होता रहता है। जन्मके और मरणके दुःखोंसे बढ़कर और कोई दूसरे दुःख नहीं हैं। ऐसे दुःखके स्थान भूत निगोदकी प्राप्ति किन कारणोंसे होती है, उनको इस सूत्रमें गिनाया गया है। कारणोंकी संख्या छत्तीस है और उनके अलग अलग नाम यों हैं:—

(१) मिथ्यादर्शन रूप करण (परिणाम) (२) मिथ्याज्ञान रूप करण (३) मिथ्याचारित्र रूप करण (४) कुलमद (५) जातिमद (६) रूपमद (७) ज्ञानमद (८) धनमद (९) बलमद (१०) तपमद (११) आज्ञा या प्रभुतामद (१२) स्पर्शनेन्द्रियविषय लम्पटता (१३) रसनेन्द्रिय लम्पटता (१४) घ्राणेन्द्रिय लम्पटता (१५) चक्षुरिन्द्रिय लम्पटता (१६) कर्णेन्द्रिय

लम्पटता (१७) स्त्री कथा (१८) चौर कथा (१९) भोजन कथा (२०) राज-कथा (२१) द्यूत व्यसन (२२) मांस भक्षण व्यसन (२३) मद्य पान व्यसन (२४) वेश्या-गमन व्यसन (२५) आखेट खेलन व्यसन (२६) चौर्यकरण व्यसन (२७) पर स्त्री गमन व्यसन (२८) क्रोध कषाय (२९) मान कषाय (३०) माया कषाय (३१) लोभ कषाय (३२) एकान्त मिथ्यात्व (३३) विपरीत मिथ्यात्व (३४) विनय मिथ्यात्व (३५) संशय मिथ्यात्व (३६) अज्ञान मिथ्यात्व।

(१) मिथ्यादर्शन रूप करण—प्राणीके प्रयोजनकी प्राप्तिमे जीव अजीव आदिक सात समीचीन तत्वोका विपरीत श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन कहलाता है।

(२) मिथ्याज्ञान रूप करण—सप्त तत्वोके स्वरूपका विपरीत ज्ञान होना मिथ्याज्ञान कहलाता है।

(३) मिथ्याचारित्र रूप करण—पापवर्धक क्रियाओमे श्रद्धा रखते हुए उनका आचरण करना मिथ्याचारित्र है। यज्ञादिकमे हिसा करना ऐसी ही क्रिया हैं।

(४) कुलमद—अपने पिताके कुलका आश्रय ले गर्व रूप परिणाम करना कुलमद है।

(५) जातिमद:—माता या मामाके कुलका आश्रय ले अभिमान भरे परिणाम रखना जातिमद कहलाता है।

(६) रूपमद:—अपने सुन्दर स्वरूपका आश्रय लेकर घमण्ड करना रूपमद कहलाता है।

(७) ज्ञानमद:—शास्त्रीय ज्ञानका आश्रय लेकर गर्व रूप परिणाम रखना ज्ञानमद कहलाता है।

(८) धनमद:—अपने पासमे पाई जाने वाली धन सम्पत्तिका सहारा लेकर घमण्ड करना धनमद है।

(९) बलमद:—बलका अर्थ शक्ति है, उस शक्तिका आश्रय लेकर घमण्ड करना बलमद कहलाता है।

(१०) तपमद:—अनेक प्रकारके तपाराधनसे जो घमण्डसे भरे परिणाम होते हैं उसे तपमद कहते हैं।

(११) प्रभुतामद:—प्रभुताका अर्थ ऐश्वर्य या ठाठ बाठ है, उसका सहारा लेकर घमण्ड करना, प्रभुतामद कहलाता है।

(१२) स्पर्शनेन्द्रिय लम्पटता:—स्पर्शन इन्द्रिय संबंधी विषयोंके प्रति अतिगृध्नताके परिणाम रखना।

(१३) रसनेन्द्रिय लम्पटता:—रसना इन्द्रिय संबंधी विषयोंमें अति गृध्नता रखना रसनेन्द्रिय लम्पटता है।

(१४) घ्राणेन्द्रिय लम्पटता:—नासिका इन्द्रियके विषय भूत गंधमें बहुत ज्यादा लौ होना घ्राणेन्द्रिय लम्पटता है।

(१५) चक्षुरिन्द्रिय लम्पटता:—नेत्र इन्द्रियके विषय भूत विविध वर्णों में लम्पटता होना।

(१६) कर्णेन्द्रिय लम्पटता:—कर्णेन्द्रियके विषयभूत विविधप्रकार के शब्दोंमें गृध्नता होना कर्णेन्द्रिय लम्पटता कहलाती है। अथवा पांच इन्द्रियोंसे सम्पन्न विविध जीवोंके प्राणोंका घात करना रूप अर्थ भी पंचेन्द्रियसे गृहीत हो सकता है।

(१७) स्त्री कथा:—स्त्रियोंमें अनुरागकी तथा काम वासनासे युक्त परिणामोंकी, जिनके सुननेसे, उत्पत्ति होती है ऐसी स्त्री संबंधी कथाओं में मनको लगाना, उसमें दिलचस्पी लेना स्त्रीकथानुराग कहलाता है।

(१८) चौर कथा:—ऐसी कथाएं जिनमें चोरी करनेके उपायों, कला, आदिका वर्णन रहता है उनके सुननेमें मनको लगाना चौरकथानुराग है।

(१९) भोजन कथा:—जिनमें नाना प्रकारके भोजनोंका, उनके बनानेकी विधि आदिका विवेचन रहता है, उनके सुननेमें मनको लगाना भोजनकथानुराग है।

(२०) राज कथा:—राजनीति विषयक चर्चा जिनमें पाई जाती है ऐसी कथाओंके प्रति अनुराग रखना राजकथानुराग कहलाता है।

(२१) द्यूत व्यसन—द्यूतका अर्थ है जुआ खेलना। इस बुरी आदतके वशमे होकर प्राणी अपना इहलोक और परलोक खराब कर लेता है। पाण्डवोंकी दुर्दशा नसीहतके लिये काफी है। इससे संक्लिष्ट प्राणी निगोद् प्राप्त करता है।

(२२) मांस भक्षण-व्यसन—द्वीन्द्रियादिक जंगम जीवका वध करके उसके गोश्त खानेकी आदत पड़ जानेको मांस भक्षण व्यसन कहते हैं। इससे राजा बककी इस लोक और परलोकमे बड़ी दुर्दशा हुई थी।

(२३) मद्यपान व्यसनः—शराब, नशीली वस्तुओ आदिका ग्रहण मद्य शब्दके द्वारा होता है। मद्यसे बुद्धि विकृत हो जाती है।

(२४) वेश्या गमन व्यसन—बाजारमे अपने रूप और शरीरको बेचकर पेट भरनेवाली औरते वेश्याएं कहलाती हैं। इनके यहां जाना, काम सेवनादिक करना वेश्या गमन व्यसन कहलाता है।

(२५) आखेट खेलन व्यसनः—मजा, आनन्द या तफरीके लिये जंगलके निरीह प्राणियोके प्राणोंके साथ खिलवाड़ करनेकी, उनके वध करनेकी आदतका पड़ जाना आखेट खेलन व्यसन कहलाता है।

(२६) चौर्य करण व्यसनः—दूसरेकी वस्तुको, उसके स्वामीकी आज्ञाके बिना ले लेनेकी आदतको चौर्य करण व्यसन कहते हैं। इससे इस लोकमे राजासे दण्ड मिलता है, सजा भुगतनी पड़ती है और अनेको ही आपदाएं प्राप्त होती हैं।

(२७) परस्त्री गमन व्यसन—जो अपनी विवाहित पत्नीके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंके पास काम सेवनकी दृष्टिसे जाता है। उनके प्रति दुर्भावना रखता है, उसे परस्त्री सेवी कहते हैं और दूसरेकी स्त्रियोंके पास कामुकताकी दृष्टिसे जानेकी आदत पड़ जानेको परस्त्री गमन व्यसन कहते हैं।

(२८) क्रोध कषाय – क्रोध गुस्सेको कहते हैं। अनन्तानु बन्धी क्रोधके वशमें हुआ प्राणी कृष्ण लेश्या रूप परिणाम कर अपने आपको

निगोद पर्यायका मांगीदार बना लेना है।

(२६) मान कषाय:—मानका अर्थ घमण्ड है। दूसरे प्राणीकी इज्जत प्रतिष्ठा आदिको तुच्छ समझ गर्वमें मदोन्मत्त रहना मान कषाय है। घमण्डीका सिर सदा नीचा रहता है (Where there is a pride. there is a fall) इस लिहाजसे वह पतिततम पद (स्थान) निगोदको प्राप्त करता है।

(३०) माया कषाय:—मन वचन कायकी कुटिल परणतिका नाम माया है। मायावी मनमें कुछ सोचता है वचनसे कुछ बोलता है और कायकी कुछ और ही चेष्टाएं उसकी होती है। वह स्वयं कतरनी के समान अपने प्राणोंको कष्टसे कतरता रहता है और दूसरोंको भी दुःख देता रहता है।

(३१) लोभ कषाय:—लालच, हाप और लोभ पर्यायवाची शब्द हैं। पर पदार्थों मे अति गृध्नता होनेसे प्राणीको सतत संक्लेश बना रहता है। उन संक्लेश परिणामोंके वशमें होता हुआ दुःखी होता है और आर्त्त परिणामोसे मरण कर प्राणी अपनेको निगोदका पात्र बना लेता है।

(३२) एकान्त मिथ्यात्व:—अनेक धर्म वाली वस्तुके किसी एक धर्मका आश्रय ले उसीको समस्त वस्तुका स्वरूप मान बैठना और हठ या कदाग्रह वश उसी समस्त वस्तु स्वरूपसे चिपके रहना एकान्तवाद नामक मिथ्यात्व है। ऐसा व्यक्ति मात्र अपनी दृष्टिको समीचीन मान अन्य पक्षों या दृष्टियोंका निषेध ही नहीं अपितु उनसे घृणा करता है।

(३३) विपरीत मिथ्यात्व:—वस्तुका जो स्वरूप ही नहीं है ऐसे धर्माभासका आश्रय ले, उसे विपरीत अर्थात् धर्म रूपसे ग्रहण कर उस पर अड़े रहना विपरीत मिथ्यात्व है। ऐसा व्यक्ति सुखकी आशा लेकर, काटों और जहरीले सांप अजगरादिसे भरे अंधकूपकी ओर बढ़ने वाले प्राणीके समान होता है। प्राणी गिर कर अनेक यातनाओं को भोगता है और कष्ट झेलता है, इसी प्रकार मिथ्यात्वी मनुष्य

निगोदमे जा दुःख भोगता है।

(३४) विनय मिथ्यात्वः—गुणोके ऊपर दृष्टि न रखते हुए, पक्ष मोहके कारण, कुदेव सुदेव आदिका भेद न करना तथा कुदेवादिक दस प्रकारके पूज्याभासोके प्रति विनय प्रदर्शित करना विनय मिथ्यात्व कहलाता है।

(३५) संशय मिथ्यात्वः—संशयका अर्थ है सन्देह या शक जिनकी वस्तु स्वरूप विषयक श्रद्धा परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियोको स्पर्श करती रहती है उसे संशय मिथ्यात्वके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। शरीरमे चुभे हुए कांटेके समान यह संशय शल्य कलिकाल मे (पाचवे कालमे) प्राणियोकी सच्ची श्रद्धामे घुसकर वेदना प्रदान करता रहता है और अंत समयमे निगोद प्राप्तिका कारण बनता है।

(३६) अज्ञान मिथ्यात्वः—वस्तुके सच्चे स्वरूपको बतलाने वाले सर्वज्ञ वीतरागी देवकी श्रद्धासे प्राणीको विमुख कर उसे पतके गर्तमे गिरा देने वाला अज्ञान मिथ्यात्व होता है। स्वार्थी जिव्हालम्पटी व्यक्ति भोले भाले प्राणियोको कुछका कुछ स्वरूप बतला कर मतलब गांठते रहते हैं। विचारा अज्ञानी-भोला प्राणी पापपूर्ण जीव वधादि क्रियाओं को करके अनिष्ट और दुःखसे युक्त निगोद कूपको प्राप्त करता है।

इस प्रकार ये वे छत्तीस कारण है जिनसे जीव निगोद प्राप्त करता। इनसे निगोद ही मिलता है यह बात नहीं है किन्तु यदि कोई जीव-निगोद जायगा तो उसके इनमेसे कोई न कोई कारण निश्चित रूपसे पाया जायगा।

❀ सैतीसवां अध्याय ❀

सूत्र—मिथ्यादर्शनपिशुनताकूटमानकरणकूटतुलाकरणप्रतिरूपणास्थि-रचित्तस्वभावताकुटिलसाक्षित्वाङ्गोपाङ्गच्यावनवर्णगंधरसस्पर्शान्यथाकरण-यत्रपंजरकरणद्रव्यान्तरविषयसवंधनिकृतिभूयिष्ठतापरनिन्दात्मप्रशंसानृतव-चनपरद्रव्यादानमहारंभपरिग्रहोज्ज्वलवेपरूपमदपरुपासत्यप्रलापाक्रोशमौरव-र्यसौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनालकारादरचैत्यप्रदेशगंध्य-

माल्यादिमोषणविडवनोपहासेष्टपाकदवाग्निप्रयोगप्रतिमापतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशतीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवित्वजातय अशुभनामकर्माश्रवहेतवः ॥१॥

अर्थः—प्राणी जब तक संसारी अवस्थामे है तब तक नाम कर्मके महत्वको ओझल नहीं किया जा सकता है। माना कि मनुष्य या प्राणी की प्रवृत्ति पर इसकी क्रिया निर्भर है फिर भी नाना योनियोमे प्राणीके बाह्य दिखावे पर नाम कर्मकी पूरी पर्याय भर अमिट छाप बनी रहती है। प्राणीकी सुरूपता कुरूपतादि सभी नाम कर्मके निमित्तसे होती है। इस प्रकार यह नाना योनियोमे शरीरादिककी रचना कर कर्मफल भोगनेमे साधन बनता रहता है। वह प्राणीको सुन्दर, सुभग, शुभ शरीरकी प्राप्तिमे सहायक होता है तो उसीसे कुब्जउदार, विढंगे, कुरूप, रूप व शरीरकी भी प्राप्ति होती है। यही कारण है कि नाम कर्मके दो भेद हैं, शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म। इस सूत्रमे अशुभ नाम कर्मका जिन कारणोसे आश्रव होता है ऐसे छत्तीस कारणोको गिनाया गया है। नाम उनके अलग अलग इस प्रकारसे है:—

(१) मिथ्यादर्शन नामक अशुभनाम कर्माश्रव हेतु (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोके साथ भी "नामक अशुभ नामकर्म" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) पिशुनता (३) कूट मान करण (४) कूट तुला करण (५) प्रतिरूपण (६) अस्थिर चित्तस्वभावता (७) कुटिल साक्षित्व (८) आङ्गोपाङ्गच्यावन (९) वर्ण अन्यथा करण (९) गंध अन्यथा करण (९) रस अन्यथा करण (९) स्पर्श अन्यथा करण। वर्णगंधरसस्पर्श अन्यथाकरण नामक एक मिला हुआ हेतु है भूलसे अलग २ लिखा गया है चारोंपर एकसा नम्बर डाल दिया है। (१०) यंत्रपंजरकरण (११) द्रव्यान्तरविषय संबंध (१२) निकृतिभूयिष्ठता (१३) परनिन्दा (१४) आत्मप्रशंसा (१५) अनृतवचनत्व (१६) परद्रव्यादान (१७) महारम्भ (१८) महापरिग्रह (१९) उज्जवल वेषरूपमद (२०) परुषासत्यप्रलाप (२१) आक्रोश (२२) मौखर्य (२३) सौभाग्योपयोग (२४) वशीकरण

प्रयोग (२५) परकुतूहलोत्पादन (२६) अलंकारादर (२७) चैत्यप्रदेशगंध्य-माल्यधूपादिमोषण (२८) विडंबनोपहास (२९) इष्टकापाक प्रयोग (३०) दवाग्निप्रयोग (३१) प्रतिमा-आयतनविनाश (३२) प्रतिश्रयारामोद्यान विनाश (३३) तीव्रक्रोध (३४) तीव्रमान (३५) तीव्रमाया (३६) तीव्र लोभ (३७) पापकर्मोपजीवित्वजाति।

(१) मिथ्यादर्शन नामक हेतु:—आत्माको परमात्मा-पदकी प्राप्तिमे सहायता देने वाले जीवादिक सात तत्व है। उनके वास्तविक स्वरूपकी जानकारी न रखते हुए कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुकी सेवा उपासना आदिमे लगे रहना मिथ्यादर्शन है। इससे अशुभ नामकर्म संबंधी कर्म परमाणुओका आश्रव होता है।

(२) पिशुनता नामक हेतु:—यहांकी बात वहाँ और वहांकी बात यहां कहना, दूसरोकी झूंठी बुराई आदि कर अपने मतलब गांठनेमे लगे रहना पिशुनता है। इसीको चुगलखोरी भी कहते हैं। अशुभ नाम कर्मकी इससे प्राप्ति होती है।

(३) कूटमानकरण नामक हेतु.—दूसरोको देनेके लिये छोटे और उनसे लेनेके लिये बड़े मापके गज, फुट आदि साधनोको रखना कूट-मान-करण कहलाता है।

(४) कूट-तुला-करण नामक हेतु:—जिनसे वस्तुओको तोला जाता है ऐसे तराजू, मन, सेर, छटांक आदि बाटोको दूसरेको ठगनेके लिहाजसे छोटे बड़े रखना कुट-तुला-करण कहलाता है।

(५) प्रतिरूपण नामक हेतु —बहुमूल्य वस्तुके साथ वैसी ही अल्प मूल्य वाली वस्तु मिलाकर ऊचे ही दामोमे बेचना, कृत्रिम (Immitation) मोती, स्वर्ण आदिकोको सच्चा कहकर बेचना अधिक मूल्य लेकर धोखा देना प्रति रूपण कहलाता है। इससे भी अशुभ नाम कर्म संबंधी परमाणु संबंधको प्राप्त करते रहते हैं।

(६) अस्थिरचित्तस्वभावता नामक हेतु -चित्तका पर्यायवाची शब्द मन है। मनका किसी एक बात पर स्थिर न रहकर अति चलायमान

होना, उसकी अस्थिर स्वभावता कहलाती है। इससे अन्य व्यक्तियोंको अनेको ही असमंजसताओमे फंस जाना पड़ता है और कभी २ स्वयं भी कठिनाइयोका शिकार हो जाता है।

(७) कुटिल साक्षित्व नामक हेतुः—मन वचनकी सरलता न रखते हुए किसी स्वार्थ या द्वेषके वशसे झूंठी ही गवाही देना। अज्ञात और हिंसा कारक बातका समर्थन करना, उसकी हां मे हॉ मिलाना।

(८) आङ्गोपाङ्गच्यावन नामक हेतुः—दूसरेके शरीरके अंगो या उपाङ्गोका छेदन भेदनादि कर कष्ट पहॅुचाना आङ्गोपाङ्गच्यावन कहलाता है। बैलोको बदिया करना आदि क्रियाएं इसके अंतर्गत रक्खी जा सकती हैं।

(९) वर्ण गंधरसस्पर्शान्यथा करण नामक हेतुः—हीन वस्तुके रंग, रस, खुशबू, स्पर्श आदिमे हेर फारकर उसे बहुमूल्य बनाकर दूसरेको धोखा देना वर्णगधरसस्पर्शान्यथाकरण कहते है। उदाहरणके लिये ह्वाईट आयल (वेल तेल) मे सेंट आदि मिलाना और अच्छा असली कहकर वेचना।

(१०) यंत्र पंजर करण नामक हेतुः—वहु जीवघातक यंत्रों पींजड़ों आदिका बनाना भी अशुभ नाम कर्मके लिये कारण होता है।

(११) द्रव्यान्तरविषय सम्बन्ध नामक हेतुः—किसी बहुमूल्य पदार्थमें वैसे ही अल्पमूल्य वाले पदार्थको मिला उसे बहुमूल्य पदार्थके देना, हो अथवा अतिशीतमे अति उष्ण पदार्थका मिलाना, द्रव्यान्तर विषय सम्बन्ध कहलाता है, इससे जीवोंको आघात पहुँचता है और अशुभ नामकर्मकी प्राप्ति होती हैं।

(१२) निकृतिभूयिष्ठताः—निकृति वंचना या छल कपटको कहते हैं। साधारण व्यवहारमे अति छल कपट पूर्ण व्यवहार कर दूसरेको गढ्ढे मे डालना अशुभ नामकर्मके लिये हेतु होता है।

(१३) परनिन्दा नामक हेतुः—दूसरे की झूंठी बुराई करना।

(१४) आत्म प्रशंसा नामक हेतुः—अपनी थोथी ही तारीफ करना।

(१५) अनृतवचन नामक हेतु'--दूसरेके अहित कारक एवं प्राणों पर आघात करने वाले झूंठे वचनों को बोलना।

(१६) परद्रव्यादान नामक हेतु'--दूसरेके द्रव्यको लुक छुप कर, धीरेसे या चुराकर ले लेना भी अशुभ नामकर्मकी प्राप्तिमे निमित्त होता है।

(१७) महारंभ नामक हेतुः--जिनमे हिंसादिक पाप करने पड़ते हैं ऐसे कार्योंका आरंभ कहलाता है। जब ऐसे ही आरंभ बड़े पैमाने पर किये जाते हे तो वे महारंभ कहलाने लगते हैं।

(१८) महा परिग्रह नामक हेतु--पर पदार्थोंमें ममता रूप परिणामोंका होना, उनमे आसक्ति रखना परिग्रह कहलाता है। जब ऐसे ही परिणामोकी अधिकता हो जाती है और स्वार्थ तथा हापके वशीभूत होता हुआ परपदार्थोंको बटोरनेमे दिनरात प्राणी लगा रहता है तो वह महापरिग्रही कहलाता है। इससे प्राणी कुरूप और विढंगे शरीर वाला होता है।

(१९) उज्ज्वलवेषरूपमद नामक हेतुः—अपनी भड़कीली पोशाक, रहन सहन तथा सुन्दर रूपके घमंडके नशेमें चूर हो प्रवृत्ति करना उज्ज्वल वेषरूप मद कहलाता है।

(२०) परुषा सत्यप्रलाप नामक हेतुः—जिससे सुनने वालेको कष्ट हो ऐसे पत्थरके समान चोट करने वाले, कठोर, झूंठे व बिना सिर पैरके रोनेधोनेकी क्रिया करना और व्यर्थमे ही उसके निमित्तसे दूसरेको झंझटमे डाल देना परुषासत्य प्रलाप कहलाता है।

(२१) आक्रोश नामक हेतुः--कष्ट कारक जोरका हल्ला मचाना जिससे सुनने वाले धोखेमे आकर परेशानीमें पड़ जांय आक्रोश कहलाता है।

(२२) मौखर्य नामक हेतुः—मुख है, इसलिये दिन रात उससे चपर चपर करके कुछ न कुछ कहते रहना और परस्परमें कलह पैदा कराते रहना मौखर्यपना कहलाता है। इससे अशुभ नामकर्मकी प्राप्ति

होती है ।

(२३) सौभाग्योपयोग नामक हेतुः—दिन रात छैल छबीले पनमें लगे रहना तथा विलासितामें फंसाये रखना सौभाग्योपयोग कहलाता है ।

(२४) वशीकरणप्रयोग नामक हेतुः—अन्य स्त्रियोंको वशमें लानेके लिये, अपनी कामुकतादिकी पूर्तिके लिये, जो मंत्रादिका प्रयोग करना है उसे वशी करण प्रयोग कहते हैं । इससे परिणामोंमें हमेशा अशान्ति और बेचैनी बनी रहती है जिसका फल अशुभ नामकर्मका पाना होता है ।

(२५) परकुतूहलोत्पादन नामक हेतुः—दूसरे प्राणीके हृदयमें असत्य कारणोंका आश्रय ले एक ऐसी बातको पैदा कर देना जिससे कि वह शान्ति आदिको खोकर विकल हो जाय, इसे परकुतूहलोत्पादन कहते हैं ।

(२६) अलंकारादर नामक हेतुः—अलंकार आभूषणों या गहनों-को कहते है । इनके प्रति इतना ज्यादा आकर्षण होना, तथा दिन रात उनहीकी रटन रटते रहना जिससे कि कलह अपना साम्राज्य जमा लेवे परिवारमे अशान्ति बनी रहे इसीको अलंकारादर कहते हैं ।

(२७) चैत्य प्रदेश गंध्यमाल्यादि मोषण नामक हेतुः—जिन मन्दिर या जिन चैत्यमेंसे सुगंधित पदार्थों, मालाओ आदिको चुराना चैत्य प्रदेशगंध्यमाल्यादि मोषण कहलाता है ।

(२८) विडंबनोपहास नामक हेतुः—विडंबना या नकल उतारते हुए दूसरेकी हंसी या खिल्ली उड़ाना, उसे शर्मिन्दा या नीचा दिखाना विडंबनोपहास कहलाता है ।

(२९) इष्टकापाकप्रयोग नामक हेतुः—ईटोंको पकानेके लिये बड़े बड़े भट्टे या अवा लगाना इष्टाकापाकप्रयोग कहलाता है । इसमें बहुत से पृथ्वी, तेज, वायु, जलादि स्थावर जीवों और अनेकों ही त्रस जीवों-का घात होता है अतः इसे अशुभ नामकर्मके आश्रवोंमें गिनाया गया है ।

(३०) दवाग्निप्रयोग नामक हेतुः—दवाग्निका अर्थ भयंकर जंगली आग है। इसको किसी स्वार्थके वशमे होकर अपने प्रयोगसे पैदा कराना दवाग्निप्रयोग कहलाता है। इससे वनस्पतिकायके जीवोका घात तो होता ही है किन्तु साथमे त्रसवध भी होता है। जंगलके प्राणी भयभीत होकर यहां वहां भागते फिरते हैं और कभी कभी अपने प्राणोसे भी हाथ धो बैठते हैं।

(३१) प्रतिमायतन विनाश नामक हेतु—जहांपर पूजनीय बिंब आदिक मूर्तियां रक्खी जाती हैं उन पवित्र वंदनीय स्थानोको प्रतिमा आयतन कहते है। उनके नाश करनेकी क्रिया करना या नाश ही कर डालना अशुभनामकर्मकी प्राप्तिमे निमित्त होता है।

(३२) प्रतिश्रयारामोद्यान विनाश नामक हेतु—जहां पर आकर यहां वहांके थके मांदे प्राणी आकर विश्राम करते हैं, ठहरकर अपने अन्य कामोको पूरा करते ऐसे आरामो और बगीचोका नाश करना प्रतिश्रयारामोद्यान विनाश कहलाता है। इससे मानवों पशुओ आदि प्राणियोंकी सहूलियते नष्ट हो जाती हैं और अनेको ही असुविधाओ का सामना करना पड़ता है।

(३३) तीव्रकोध नामक हेतुः—तेजीको लिए हुए ऐसे गुस्सेका होना जिससे दूसरेको संताप हो।

(३४) तीव्रमान नामक हेतु—घमण्डकी मात्रा इस ढंगकी होना जिसके मदमे चूर हो दूसरेका अपमान कर बैठना तीव्रमान कहलाता है।

(३५) तीव्रमाया नामक हेतु—मन वचन कायकी ऐसी घुमावदार कुटिल या पेंचीदी प्रवृत्ति होना जिससे दूसरा प्राणी वस्तुस्थितिको न जानकर संकटमे फंस जाय तीव्र माया कहलाती है।

(३६) तीव्र लोभ नामक हेतुः—सम्पूर्ण पापोंका मूलभूत लालच है, उसकी इतनी ज्यादा मात्राका पाये जाना कि प्राणी अपने प्राणोको भी संकटमे डालनेसे न हिचके। वह "चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाने पाय" को अपना आदर्श मान बैठे ऐसे परिणामोको तीव्र लोभके नाम

से पुकारा जाता है। प्राणी इससे तथा ऐसी ही अन्य कषायोंसे अशुभ नाम कर्मका आश्रव करना रहता है।

(३७) पाप कर्मोपजीवित्व नामक हेतु:—ऐसे कर्म जो जीवात्मा को पतनकी ओर ले जाते हैं तथा हमेशा ही उसे अच्छे कर्मों (कार्यों, क्रियाओं) से दूर रखते हैं उन्हें पाप कर्म कहते है। उदाहरणके लिये प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करना, दूसरेके धनको चुरा लेना आदि इन पाप कर्मों के जरिये अपनी आजीविका चलाना अपना वा पारिवारिक जनोंका भरण पोषण करना पापकर्मोपजीवित्व कहलाता है। इससे तथा इन ही जैसे अन्य और कारणोंसे भी अशुभ नामकर्म संबंधी कर्म परमाणुओंकी प्राप्ति होती है।

एक साधारण सा नियम है, कि गेहूँके बीजसे गेहूं होता है इसी प्रकार ऐसे काम जिनसे दूसरे प्राणियोंके शरीरमे विकृति, छेदन, भेदन आदि होता है, उनके फल स्वरूप यदि कुवड़े, काने आदि विढंगे शरीरादि (अशुभ नामकर्म) की प्राप्ति हो तो वह स्वाभाविक बात ही है।

सूत्र—पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिहिंसाविरतयः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोविषयाविरतयः सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगसत्यासत्योभयानुभयवचनयोगौदारिककाययोगाः प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा देशसंयतेआश्रवाः ॥२॥

अर्थः—देशसंयत पाचवें गुणस्थानका नाम है। इस गुणस्थानमें पाये जाने वाले प्राणीके, साधारण सांसारिक जीवोंके समान सतत कर्मोंका आश्रव होता रहता है। इस सूत्रमें उन बातोंको गिनाया गया है जिनके द्वारा जीवके पास कर्म परमाणु आते हैं और वे बद्ध होकर जीवको बंधनसे बद्ध करते रहते है। आश्रव द्वारोंकी संख्या इस सूत्रमें सेंतीस बतलाई गई हैं। नाम उनके अलग अलग इस प्रकारसे है:—

(१) पृथ्वी-हिंसा-अविरति (२) अप् हिंसा अविरति (३) तेज हिंसा—अविरति (४) वायु—हिंसा-अविरति (५) वनस्पति-हिंसा अविरति (६) स्पर्शनेन्द्रिय—विषय—अविरति (७) रसनेन्द्रिय—विषय—अविरति

(८) घ्राणेन्द्रिय-विषय-अविरति (९) चक्षुरिन्द्रिय-विषय-अविरति (१०) श्रोत्रेन्द्रिय-विषय-अविरति (११) मनो विषय-अविरति (१२) सत्यमनोयोग (१३) असत्य मनोयोग (१४) उभय मनोयोग (१५) अनुभयमनोयोग (१६) सत्य वचन योग (१७) असत्य वचन योग (१८) उभय वचनयोग (१९) अनुभयवचनयोग (२०) औदारिक काय-योग (२१) प्रत्याख्यानावरणी क्रोध (२२) प्रत्याख्यानावरणी मान (२३) प्रत्याख्यानावरणी माया (२४) प्रत्याख्यानावरणी लोभ (२५) संज्व-लन क्रोध (२६) संज्वलन मान (२७) सज्वलन माया (२८) संज्वलन लोभ (२९) हास्य (३०) रति (३१) अरति (३२) शोक (३३) भय (३४) जुगुप्सा (३५) पुंवेद (३६) स्त्रीवेद (३७) नपुंसक वेद।

(१ से ५) विरति त्यागको कहते हैं या उसका न होना अविरति कहलाती है। पृथ्वी आदि पांच स्थावर कायके जीवोंकी हिंसाका त्यागी श्रावक नहीं होता है इसलिये पाच अविरतियां कर्मके आश्रवमे निमित्त होती हैं।

(६ से ११) पांच इन्द्रिय और मन सबंधी विषयोकी भी विरति पांचवे गुणस्थान वर्तीके नहीं होती अत. ये छह अविरतियां भी कर्माश्रव की कारण हैं।

(१२ से २०) आत्माके प्रदेशोसे जो हलन चलन होनी है उसे योग कहते हैं। यह हलन चलन मनके, वचनके, या कायके निमित्तसे होती है। इनमे मन संबंधी चार, वचन संबंधी चार और काय संबंधी एक इस प्रकार कुल नौं योगोंको गिनाया गया है जिनसे पाचवें गुणस्थान मे आश्रव होता है।

(२१ से २८) प्रत्याख्यान और संज्वलन संबंधी क्रोधमान माया लोभसे कर्मोंका आश्रव इस गुणस्थानमे होता रहता है।

(२९ से ३७) इनमे नौं नोकषाय हैं जिनके वशमे होकर श्रावक या देशसंयती कर्मो का आश्रव करता रहता है। इस प्रकार ये वे सैंतीस द्वार हैं जिनसे कर्मपरमाणु संबद्ध होते रहते हैं आत्मासे।

सूत्र—"ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणि चक्रेणानुकूलं साधय साधय शत्रूनुन्मूलयोन्मूलयस्वाहा" इति शत्रु-आराधन हानिवारणनिमित्तः सप्त त्रिंशदक्षर मंत्रः ॥२॥

अर्थः—इस सूत्रमें सैंतीस अक्षर वाला मंत्र लिखा गया है। इस मंत्रके जपनसे शत्रु अनुकूल हो जाता है, साथ ही इसके जो नुकसान टोटा या हानिका सामना करना पड़ता है तत्संबंधी झंझट भी मिट जाती है। मंत्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

ॐ न मो च क्रे श्व री दे वी च क्र धा रि णी च क्रे णा नु कू लं सा ध य सा ध य श त्रू नु न्नू ल यो न्मू ल य स्वा हा।

❀ अड़तीसवां अध्याय ❀

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोद-सप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित-प्रत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियसञ्ज्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥१॥

अर्थः—जीव समासोंके कई प्रकारसे कई भेद होते हैं इस सूत्रमें भी एक ढंगसे जीव समासके भेद गिनाये गये हैं। भेद अड़तीस हैं और उनके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (इसी प्रकार अन्य आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक जीवसमास" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५) बादर अप् (जल) पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१०) बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर नित्य निगोद पर्याप्त (१८) बादर नित्य निगोद अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म नित्य निगोद पर्याप्त (२०) सूक्ष्म नित्य निगोद अपर्याप्त (२१) बादर इतर निगोद पर्याप्त (२२) बादर इतर निगोद अपर्याप्त (२३) सूक्ष्म इतर

निगोद पर्याप्त (२४) सूक्ष्म इतर निगोद अपर्याप्त (२५) सप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त (२६) सप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त (२७) अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त (२८) अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त (२९) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (३०) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (३१) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३२) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (३३) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३४) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (३५) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३६) सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त (३७) असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र—" ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रः असि आ उसा अप्रतिचक्रे फटविचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ॐ ह्री लक्ष्मण राम चन्द्रदेव्यै नमः स्वाहा" इत्यष्ठत्रिंशदक्षरविद्या मंत्रः सर्वारिष्टाङ्ग पीडावारणनिमित्तः ॥२॥

अर्थ—मंत्रोंके ऋद्धि मंत्र विद्यामंत्र आदि भेदोमे से यह अड़तीस अक्षरो वाला विद्या मंत्र है। इस मंत्रके जपनसे सम्पूर्ण अरिष्टोंको दूर करनेमे सहायता प्राप्त होती है। आगोपाङ्ग सम्बन्धी पीडा दूर करनेमें भी यह सहायक होता है। इसके अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:—

ह्रां ह्री ह्रूं ह्र अ सि आ उ सा अ प्र ति च क्रे फ ट् वि च क्रा य झ्रौं झ्रौ स्वा हा ॐ ह्रीं ल क्ष्म ण रा म चं द्र दे व्यै न म. स्वा हा।

सूत्र—ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं नमो वाञ्छित सिद्ध्यै नमो नमः अप्रति चक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा इति दुर्जनवशीकरणजिव्हा स्तम्भननिमित्तः ॥३॥

अर्थ—दुर्जन जनोको अपने आधीन करने तथा अकारण और व्यर्थकी बकवास जो जिव्हा (जीभ) करती रहती उसको रोकनेमे यह मंत्र सहायक होता है। इसके अड़तीस अक्षर हैं और उन अक्षरोको अलग अलग इस प्रकार लिखा जा सकता है—

ॐ न मो भ ग व ते अ प्र ति च क्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं न मो वां छि त सि द्ध्यै न मो न मः अ प्र ति च क्रे ह्री ठः ठः स्वा हा।

—.०:०:—

❀ उनतालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजो वायुवनस्पतिकाय-विकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञि-पञ्चेन्द्रियपर्याप्त निवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता जीवसमासाः ॥१॥

अर्थः—इस सूत्रमे जीवसमासोंके उनतालीस भेद गिनाये गये हैं। भेदोके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) बादर पृथ्वीकाय पर्याप्त (२) बादर पृथ्वीकाय निवृत्यपर्याप्त (३) बादर पृथ्वीकाय लब्ध्यपर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वीकाय पर्याप्त (५) सूक्ष्म पृथ्वीकाय निवृत्यपर्याप्त (६) सूक्ष्म पृथ्वीकाय लब्ध्यपर्याप्त (७) बादर अप् (जल) काय पर्याप्त (८) बादर अप्काय निवृत्य पर्याप्त (९) बादर अप्काय लब्ध्यपर्याप्त (१०) सूक्ष्म अप्काय पर्याप्त (११) सूक्ष्म अप्काय निवृत्य पर्याप्त (१२) सूक्ष्म अप्काय लब्ध्यपर्याप्त (१३) बादर तेज (आग) काय पर्याप्त (१४) बादर तेजकाय निवृत्य पर्याप्त (१५) बादर तेजकाय लब्ध्यपर्याप्त (१६) सूक्ष्म तेजकाय पर्याप्त (१७) सूक्ष्म तेजकाय निवृत्यपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेजकाय लब्ध्यपर्याप्त (१९) बादर वायुकाय पर्याप्त (२०) बादर वायुकाय निवृत्यपर्याप्त (२१) बादर वायुकाय लब्ध्य-पर्याप्त (२२) सूक्ष्मवायुकाय पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायुकाय निवृत्यपर्याप्त (२४) सूक्ष्म वायुकाय लब्ध्यपर्याप्त (२५) बादर वनस्पतिकाय पर्याप्त (२६) बादर वनस्पतिकाय निवृत्यपर्याप्त (२७) बादर वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (२८) सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त (२९) सूक्ष्म वनस्पतिकाय निवृत्यपर्याप्त (३०) सूक्ष्म वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (३१) विकलेन्द्रिय पर्याप्त (३२) विकलेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३३) विकलेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त (३४) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३५) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३६) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (३७) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (३८) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३९) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्त।

सूत्र—"ॐ नमो भगवते जयविजय जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय सर्व

सिद्धिसम्पत्तिसौख्य कुरु कुरु स्वाहा" इति व्यवसायलाभ सौख्यविजयलाभ-निमित्तो नवत्रिंशदक्षरमंत्रः ॥२॥

अर्थः—उनतालीस अक्षरो वाला यह मंत्र है। इस मंत्रके जपनसे जो कुछ भी व्यापार धन्धा किया जाता उसमे लाभ प्राप्ति होती है। साथ ही इसके सुख लाभमे और विजय लाभमे भी यह सहायक होता है। मंत्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे है:—

ॐ न मो भ ग व ते ज य वि ज य जृं भ य जृं भ य मो ह य मो ह य स र्व सि द्धि स म्प त्ति सौ ख्यं कु रु कु रु स्वा हा।

सूत्र—कायोत्सर्गद्वात्रिंशन्मलाः शरीरममतावृत्तिकुबिम्बभक्तिवत्स्थित्याकीर्णस्थानैकपादस्थितिजन्तुवहुल देशप्रमादस्थितिस्त्रीवहुलदेशप्रमाद-स्थितिपरधनवहुलप्रमादस्थितिसापध्यानाङ्ग व्यापारनिवृत्तीनि कायगुप्ति मलाः ॥३॥

अर्थः—मुनिधर्म या सकल संयममे गुप्तियोंका एक महत्व पूर्ण स्थान है और है भी यह उचित ही। गुप्तियां जहां मुनियोके द्वारा धारण किये गये व्रतोमे स्थिरता और दृढ़ता लाती हैं वहीं वे मन वचन काय की उच्छृंखल या स्वेच्छाचारितासे युक्त प्रवृत्तिपर नियंत्रण रखती हैं। गुप्तियोंका परिपालन मुनियोके लिये आवश्यक बतलाया है अत आवश्यक है कि उन बातोको जान लिया जिनसे इनके पालनेमे दोष लगते हैं या शिथिलता आती है। सूत्रमे कायगुप्ति संबंधी उनतालीस मलोको गिनाया गया है। मलोके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:-

शुरुके बत्तीस दोष तो वे ही हैं जो कायोत्सर्ग सम्बन्धी दोष हैं, अर्थात् (१) घोटक दोष (२) लता दोष (३) स्तम्भ दोष (४) पट्टक दोष (५) माला दोष (६) शृंखलित दोष (७) शवरी दोष (८) लम्बित दोष (९) उत्तरित दोष (१०) स्तनोन्नति दोष (११) वायस दोष (१२) खलीनित दोष (१३) युग दोष (१४) कपित्थ दोष (१५) शीर्षकम्पन दोष (१६) मूकित दोष (१७) अंगुली दोष (१८) भ्रूक्षेप दोष (१९) उन्मत्त दोष (२०) ग्रीवोर्ध्वनयन दोष (२१) ग्रीवाधोनयन दोष (२२) निष्ठीवन दोष

(२३) वपुस्पर्श दोष (२४) न्यूनत्व दोष (२५) दिगवेक्षण दोष (२६) मायाप्रायास्थिति दोष (२७) वयोपेक्षा विवर्जन दोष (२८) व्याक्षेपासक्तचित्तत्व दोष (२६) कालापेक्षा व्यतिक्रम दोष (३०) लोभाकुलत्व दोष (३१) मूढत्व दोष (३२) पापकर्मैकसर्गता दोष (३३) शरीरममता वृत्ति दोष (३४) कुबिम्ब भक्तिवत्स्थाति दोष (३५) आकीर्णस्थानैकपादस्थिति दोष (३६) जन्तुबहुलदेशप्रमाद स्थिति दोष (३७) स्त्री-बहुलदेश प्रमाद स्थिति दोष (३८) परधनबहुल प्रमाद स्थिति दोष (३६) सापध्यानाङ्गव्यापारनिवृत्ति दोष।

(१) घोटकनामक दोषः—जैसे एक अच्छी नस्लका घोड़ा एक पैरको जमीनपर न रखते हुए खड़ा रहता है उसी प्रकार एक पैरसे खड़े रहना कायगुप्ति संबंधी घोटक दोष है।

(२) लता नामक दोषः—जैसे हवाके झोंकेसे लता हिलती डुलती है वैसे ही कायगुप्ति-पालन करते हुए हिलते डुलते रहना लता नामक दोष है।

(३) स्तम्भनामक दोषः—खम्भे या दीवाल आदिका सहारा लेना और कायगुप्तिके पालनमे शिथिलता लाना स्तम्भ दोष है।

(४) पट्टकनामक दोषः—कायगुप्तिके पालनके समय पाटा चौकी, चटाई आदिका आश्रय लेना पाट्टक दोष है।

(५) मालानामक दोषः—शिरके उर्ध्वभागपर माला आदि रखकर कायगुप्ति पालनमें प्रयत्न करना माला दोष कहलाता है।

(६) शृंखलितनामक दोषः—वेड़ीमे जैसे पैर जकड़े रहते हैं उसी तरह कायगुप्ति पालनके समय पैरोंको कसे हुए रखना शृंखलित दोष कहलाता है।

(७) शवरीनामक कायगुप्ति दोषः—जैसे भीलनी अपने गुह्यांगों को दोनों जंघाओं या हाथोंसे छिपा लेती है उसी प्रकार लज्जावश अपने गुह्यांगोंको छिपानेके गरजसे वैसी क्रियाएं करना या खड़े होना शवरीनामक कायगुप्तिका दोष है। इससे परिणामोमें मोहवृत्ति जागृत

हो उठती है।

(८) लम्बितनामक दोष.—शिरको लम्बा करके झुकाना लम्बित-दोष कहलाता है।

(९) उत्तरित नामक दोपः—कायगुप्तिका पालन करते हुए शिरको ऊँचा करके खड़े होना उत्तरित दोष कहलाता है।

(१०) स्तन्नोन्नति नामक दोष—जैसे दूध पिलाने वाली स्त्री अपने स्तनोंकी ओर देखती है उसी प्रकार कायगुप्तिके पालनके समय अपने उन्नत वक्षस्थलकी ओर देखना दोप कारक है।

(११) वायस नामक दोपः—कायगुप्तिके पालनके समय कौएके समान अपने नेत्रोंको चंचल रखना वायस दोष है।

(१२) खलीनित नामक दोषः—जैसे मुंहमे लगी हुई लोहेकी लगामको दातोंसे चबाता हुआ घोड़ा जैसे आवाज करता रहता है उसी प्रकार कायगुप्तिके पालनके समय दातोंको पीसते और किटकिटाते रहना खलीनित दोप कहलाता है।

(१३) युग नामक दोष—युग जुआंरीको कहते हैं जो गाड़ी या हलमे जुते हुए बैलोंके कन्धोपर रक्खी जाती है। ज्यादा वजन होनेपर जैसे बैल गर्दन झुका देते हैं उसी प्रकार कायगुप्ति पालनके समय गर्दन झुका लेना युग दोष कहलाता है।

(१४) कपित्थनामक दोष—कपित्थ कैंथ या कबीरको कहते हैं जैसे यह गोल और कठोर होता है उसी प्रकार कायगुप्तिके पालनके समय दोनो मुट्ठियोंको कसकर रखना कपित्थ दोष है। ऐसा करनेका असर यह होगा कि परिणामोमे कठोरता और क्रूरता आजायगी।

(१५) शीर्पकम्पननामक दोषः—कायगुप्तिके समय सिर हिलाते रहना शीर्पकम्पन दोष है।

(१६) मूकित नामक दोषः—जैसे गूंगा अपनी नाक मुंह आदिके विकार करता है उसी प्रकार कायगुप्तिके पालनके समय वस्त्रादिकेद्वारा मुख नासिकादिमे विकार कर क्रियामे लगना मूकित दोष है।

(१७) अंगुली नामक दोष:—कायगुप्तिका पालन करते हुए अंगुलीकी पोरोंसे गिनती आदि करते रहना अंगुली दोष है।

(१८) भ्रूक्षेप नामक दोष:—जिस समय कायगुप्तिमें लगे हुए हों उस समय आंखोंकी भृकुटियोंको नचाते फिरना भ्रूक्षेप या भ्रूविकार नामक दोष कहलाता है।

(१९) उन्मत्तनामक दोष:—जैसे शराबी पागल जैसा होता हुआ यहां वहां घूमता फिरता व चक्कर काटता है उसके समान ही काय-गुप्तिका पालन करते हुए यहां वहां चक्कर काटते फिरना उन्मत्त दोष है।

(२०) ग्रीवाउर्ध्व नयन नामक दोष:—बार बार अनेक प्रकारसे ग्रीवाको, कायगुप्तिका परिपालन करते हुए, ऊंचा उठाना ग्रीवोर्ध्वनयन दोष कहलाता है। ऐसा करनेसे उस प्रदेशमें पाये जाने वाले जीवोंको कष्ट होता है।

(२१) ग्रीवाधोनयन नामक दोष:—गर्दनको कई प्रकारसे नीचेकी ओर झुकाना ग्रीवाधोनयन दोष कहलाता है।

(२२) निष्ठीवन नामक दोष:—कायगुप्तिके अंतर्गत ही कायोत्सर्ग किया जाता है अतः जहाँ कायगुप्तिका उल्लेख किया जाता है वहां कायोत्सर्ग तो आ ही जाता है, तो उस समय कफ, थूक आदिका निकालना निष्ठीवनदोष कहलाता है।

(२३) वपुस्पर्श नामक दोष:- शरीर आदिका छू जाना कायगुप्ति संबंधी दोष कहलाता है।

(२४) न्यूनत्व नामक दोष:—जितना समय कायगुप्ति या कायो-त्सर्गके लिये निश्चित किया था उस परिमाणमें भी कमी कर बैठना न्यूनत्व दोष कहलाता है।

(२५) दिगवेक्षण नामक दोष:—दिशाओंमें यहाँ वहाँ देखते फिरना और मनको डुलाते फिरना कायगुप्तिमें दोषकारक होता है। इसीको दिगवेक्षण दोष कहते हैं।

(२६) मायाप्रायास्थिति नामक दोषः—कायगुप्ति पालनके समय चित्र विचित्र अवस्थाओंको अपनाना, अंतरंगमे अति माया युक्त परिणाम रखना मायाप्रायास्थिति दोष कहलाता है।

(२७) वयोपेक्षाविवर्जननामक दोष.—वयके कारण, कायगुप्तिके पालनमे जितनी तत्परता या मुस्तैदी होना चाहिये उतनी तत्परतासे प्रवृत्ति न करना, धीरे धीरे इतनी ज्यादा शिथिलताका बढ़ जाना कि कायगुप्तिके छोड़नेके लिये तत्पर हो उठना वयोपेक्षाविवर्जन दोष कहलाता है।

(२८) व्याक्षेपासक्तचित्तत्व नामक दोषः— कायगुप्ति या कायोत्सर्ग करते हुए मनको स्थिर एवं शान्त न रखते हुए यहां वहां डुलाते फिरना व्याक्षेपासक्तचित्तत्व दोष कहलाता है।

(२९) कालापेक्षा व्यतिक्रम नामक दोषः—जिस समय कायगुप्ति (कायोत्सर्ग) करना चाहिये उस समय न करना, उसके समयमे व्यतिक्रम कर देना कालापेक्षाव्यतिक्रम दोष है। व्यतिक्रम क्रम-उल्लंघनको कहते हैं।

(३०) लोभाकुलत्व नामक दोष —लालच रूप परिणामोंके कारण कायोत्सर्ग या कायगुप्तिमे मनको न लगाना। ज्यो त्यो कर समय पूरे होनेकी बाट जोहना आदि आकुलता रूप परिणामोका होना लोभाकुलत्व कहलाता है।

(३१) मूढत्व नामक दोष —कृत्य और अकृत्यका कुछ भी विवेक न करते हुए अंधश्रद्धावश क्रियाओंको करते रहना मूढ़त्वनामक दोष कहलाता है।

(३२) पापकर्मैकसर्गता नामक दोषः—पतनकी ओर ले जाने वाले हिंसाके कर्मोंमे उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करना पापकर्मैकसर्गता दोष कहलाता है।

(३३) शरीरममतावृत्ति नामक दोष.—शरीरमे आत्मबुद्धिका पैदा होना शरीरममतावृत्ति कहलाती है। इस वृत्तिका होना कायगुप्तिमे

बाधक होती है। जब तक मुनिके हृदयमें यह [illegible] रहेगी तब तक उसे संयत नहीं किया जा सकेगा; अतः इस वृत्तिको दोषोमें शामिल किया है।

(२४) कुनिम्बभक्तिवत्स्थिति नामक दोषः—खोटे देवोंकी मूर्तियोंमें भक्ति रखनेसे कायगुप्तिके परिपालनमें शैथिल्य आता है। जैसी पूज्य-मूर्ति होगी उसीके अनुकूल परिणाम होंगे अतः शरीरसे स्नेह व उसमें स्वत्व बुद्धि जागृत हो जाती है। इसे भी इसलिये दोषोंमें शामिल किया गया है।

(२५) आकीर्णस्थानैकपादस्थिति नामक दोषः—जहांपर बहुतसे प्राणियोंका आवागमन हो रहा है तथा कोलाहल भी जहां बहुत ज्यादा हो रहा है ऐसे स्थानमें एक पैरसे खड़े होकर ठहरे रहना कायगुप्ति संबंधी दोष है।

(२६) जन्तुबहुलदेशप्रमादस्थिति नामक दोषः—जहांपर बहुतसे जीव जन्तुओंका संचार बढ़ रहा है ऐसे स्थानोंपर प्रमादपूर्वक ठहरना-अयत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करना कायगुप्तिके लिये दोष कारक है।

(२७) स्त्रीबहुलदेशप्रमादस्थिति नामक दोषः—ऐसे स्थानोंपर जहां बहुतसी स्त्रियोंका आवागमन हो रहा है या वे पाई जाती हैं उन स्थानोंमें शिथिलाचारपूर्वक प्रवृत्ति करना तथा वहीं ठहरे रहना कायगुप्ति संबंधी दोष है। इससे शरीरमें विकारोंके होनेकी संभावना रहती है।

(२८) परधनबहुलप्रमाद स्थितिः—ऐसे स्थानोंको भी कायगुप्तिकी साधनाके लिये दोषकारक कहा गया है जिनमें दूसरे व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बहुमात्रामें पाई जाती है। ऐसे स्थानोंमें रहनेसे रागवृत्ति बढ़ जाती है।

(२९) सापध्यानाङ्गव्यापार निवृत्ति नामक दोषः—उन व्यापारोंमें जिनसे परिणामोंमें सर्वदा अपध्यान होता रहता है, दिलचस्पी लेना; उनके करनेमें विशेष उत्साह दिखाना, कायगुप्ति-परिपालनमें दोष कारक है।

साधुको इन उनतालीस दोषोंका परिहार करते हुए कायगुप्तिके परिपालनमे सतत उद्यमी बने रहना चाहिये।

❀ चालीसवाँ अध्याय ❀

सूत्र—अर्हलिङ्गशिक्षाविनयसमाध्यनियतविहार परिणामोपाधित्याग-श्रितिभावनासल्लेखनादिशा क्षमणानुशिष्टिपरगणचर्यामार्गणसुस्थितोपसप-दापरीक्षाप्रतिलेखापृच्छाप्रतिच्छनालोचनागुणदोष शय्यासस्तरनिर्यापकप्र-काशन हानिप्रत्याख्यान क्षामणक्षमणानुशिष्टिसारणाकवचसमताध्यान लेश्याफल शरीरत्यागाः समाध्यर्थज्ञेयवस्तवः ॥१॥

अर्थ—इस सूत्रमे उन चालीस बातोंका उल्लेख किया गया है जिनका समाधिके लिये जानना आवश्यक है या जो जानने योग्य हैं। समाधिसे प्रयोजन यद्यपि मनको नियंत्रितकरके स्व स्वरूप रूप जो एकाग्र, उसकी ओर लगानेसे है फिर भी इसके द्वारा सविचार-भक्तप्रत्याख्यान नामक पण्डित मरणकी प्राप्ति करना रूप उद्देश्यकी ओर सकेत मिलना है।

मरणके सत्रह भेद होते हैं, उनमेसे पण्डित मरण नामका दूसरा भेद है। इस पण्डितमरणके तीन भेद होते है—प्रायोपगमन, इंगिनी मरण और भक्त प्रत्याख्यान। शुरूके जो भेद हैं (प्रायोपगमन, इंगनी मरण) उनकेलिये तो विशेप वज्रवृषभनाराचसंहननादिकी आवश्यकता होती है, अत. इस काल (दु खमा नामक पंचमकाल) मे उनकी उपपत्ति नहीं बैठ सकती भक्त प्रत्याख्यान नामक ही एक ऐसा प्रशस्त (पंडित) मरण है जिसको आजका मुमुक्षु मानव अपना कर आत्महितके प्रशस्त मार्ग पर निर्बाध और निर्भय रूपसे आगे बढ़ सकता है।

इस भक्त- प्रत्याख्यान नामक मरणके दो भेद हैं एक सविचार भक्त प्रत्याख्यान दूसरा अविचार भक्त प्रत्याख्यान। सविचार भक्त प्रत्या-ख्यानमरण इस लिये कहलाता है कि इसमे अर्ह, लिग आदि विकल्प रूप विचार पाये जाते हैं। इसका वही साधु आचरण करता है जो उत्साह एवं बलसे सम्पन्न है, जिसका मरण निकट भविष्यमे जल्दी ही

नहीं होने वाला है। इस मरणका भी उद्देश्य यही रहता है कि सावधानी के साथ मन और इन्द्रियोंको संयमित रखते हुए प्रवृत्तिकी जाय और ऐसी ही क्रिया करते २ जीवनका अन्त हो जाय। इस प्रकार यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि उद्देश्य साम्यकी दृष्टिसे सविचार भक्तप्रत्याख्यान एवं समाधि पर्यायवाची शब्द हैं और उनका समीचीन रूपसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तथा चरित्रमें उतारनेके लिये चालीस ज्ञेय वस्तुओंके नाम यहां लिखे जा रहे हैं। नाम अलग अलग इस प्रकार हैं—

(१) अर्ह नामक ज्ञेय वस्तु (२) लिंग नामक ज्ञेय वस्तु (३) शिक्षा नामक ज्ञेय वस्तु (४) विनय (५) समाधि (६) अनियतविहार (७) परिणाम (८) उपधित्याग (९) श्रिति (१०) भावना (११) सल्लेखना (१२) दिशा (१३) क्षमण (१४) अनुशिष्टि (१५) परगणचर्या (१६) मार्गणा (१७) सुस्थित (१८) उपसंपदा (१९) परीक्षा (२०) प्रतिलेखन (२१) आपृच्छा (२२) प्रतिच्छन्न (प्रतिपृच्छ्यैकसंग्रह) (२३) आलोचना (२४) गुणदोष (२५) शय्या (२६) संस्तर (२७) निर्यापक परिग्रह (२८) प्रकाशन (२९) हानि (३०) प्रत्याख्यान (३१) क्षामण (३२) क्षमण (३३) अनुशिष्टि (३४) सारणा (३५) कवच (३६) समता (३७) ध्यान (३८) लेश्या (३९) फल (४०) शरीर त्याग नामक ज्ञेय वस्तु।

(१) अर्ह नामक ज्ञेय वस्तुः—अर्हका अर्थ है योग्य, अतः अर्ह पदसे भक्त प्रत्याख्याख्यान मरणकी योग्यताका बोध होता है अर्थात् जो सविचार भक्तप्रत्याख्यान नामक मरणको अपनाना चाह रहा है उसे किस योग्यतासे युक्त होना चाहिये उसका उल्लेख इसमे किया गया है। ऐसा साधु जो ऐसी महान व्याधिसे पीडित हो जिससे संयम समुदायका नाश होने वाला हो, जोरदार प्रयत्न और चिकित्सा करने पर भी ठीक होना जिसका कठिन है अथवा तिर्यंच मनुष्य या देवोंके द्वारा भीषण प्राणाहारी संकट या उपसर्गसे आक्रान्त होगया हो वह भक्तप्रत्याख्यान मरणको अपनानेके लिये योग्य पात्र है।

(२) लिङ्ग नामक ज्ञेय वस्तुः—लिङ्ग चिह्नको कहते हैं। भक्तप्रत्याख्यान

के लिये तत्पर साधुका लिग (चिह्न) नग्नता (सर्व संग त्याग) है। इसके दो भेद हैं एक औत्सर्गित लिंग दूसरा अपवादिक लिंग। जब श्रावक भी भक्त प्रत्याख्यानके लिये समुद्यत होता है तब पुरुष उसके लिगमे दोष होनेके कारण अपवाद लिगका उल्लेख किया गया है। इसमे परिग्रह रखा जा सकता है।

(३) शिक्षा नागक ज्ञेय वस्तुः—जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा उपदिष्ट वचनोका अध्ययन करना शिक्षा नामक ज्ञेय वस्तु कहलाती है। इससे विनयादिकोंके आचरणमे सहायता मिलती है। जिनवचन तप प्रमाणादिसे सुचारुरीत्या विवेचित हैं, पूर्वापरविरोधरहित हैं, अनुत्तर हैं, निकाचित हैं, और पापको हरने वाले हैं। ऐसे जिनोपदिष्ट वचन जिनमे निबद्ध है उन आगम ग्रन्थो से ज्ञानका उपार्जन करना शिक्षामे ही सम्मिलित कर्म है।

(४) विनय नामक ज्ञेयवस्तुः—लिंग, ज्ञानार्जनादिके वाद भक्तप्रत्याख्यानके लिये तत्पर साधुको विनयमे तत्पर होना चाहिये। जो अशुभ कर्मोंको दूर करती है उसे विनय (विनयति अपनयति यत्कर्माशुभं तद्विनयः) कहते हैं। इसके पांच भेद होते हैं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उपचार विनय। विनय मर्यादाको भी कहते हैं गुणोसे समृद्ध गुरू आदिकोंके प्रति आदर भाव रखना इसीमे गर्भित है।

(५) समाधि नामक ज्ञेयवस्तु—जिसने अशुभ परणतिकी ओर दौड़ना छोड़ दिया है ऐसे मनसे युक्त साधु जब उसे (मनको) जहां लगाता है वहीं ठहरके उसमे स्थिर हो जाता है तब उसे समाहित (समाधिसे युक्त) मन कहते हैं। इसमे मनको ध्येय वस्तुके साथ एकमेक कर देना पड़ता है। साधु शुभोपयोग या शुद्धोपयोगमें जो अपने मनको लगाये रहता है उसे भी समाधि ही कहते हैं।

(६) अनियतविहार नामक ज्ञेय वस्तु—किसी निश्चित क्षेत्रमे वास नहीं करना तथा विहार प्रचुर अपनी प्रवृत्ति रखना अनियतविहार कहते हैं। इससे जहा दर्शन गुणमे निर्मलता, उसमें दृढ़ता, बाधारा-

हित्यादि गुणोंकी प्राप्ति होती है वहीं सबसे बड़ा फायदा समाधिमरणके योग्य स्थानको ढूंढ लेनेका होता है। परिणामोंमें ममत्व भाव पैदा नहीं हो पाते तथा जीवादिक तत्वोंके प्रतिपादनमे कुशलता आ जाती है।

(७) परिणाम नामक ज्ञेय वस्तुः—बहुत लम्बे समयसे मैं अपने आपको दर्शनज्ञान चरित्रादि रूप परिणतिमे लगाये रक्खा रहा, मुनि पर्यायको धारण किया शिष्योंको ग्रंथों और अर्थोंका स्वरूप अच्छी तरहसे समझाया, उनको पढ़ा लिखाकर व संयममे लगाकर तैयार भी कर चुका हूं अब मुझे अपने हित करनेमें भी तत्पर होना चाहिये ऐसे मनमे विचार रखना या करना परिणाम कहलाता है ऐसे परिणामोका होना आवश्यक है, कारण कि आचार्योंने आत्महित और परहितमे कौन श्रेयस्कर है, इस प्रश्नके उत्तरमे आत्महित संपादनको ही श्रेष्ठ बतलाया है।

(८) उपाधित्याग नामक ज्ञेयवस्तुः—उपाधिके द्वारा अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका ग्रहण होता है। संयम या ज्ञानके उपकरणोंको छोड़ अन्य परिग्रहोंका तीनों योगपूर्वक त्याग कर देना उपाधित्याग कहलाता है। यह आवश्यक इसलिये है कि इसके बिना साधु समाधि प्राप्त नहीं कर पाता। समाधिके लिये पांच प्रकारकी शुद्धि एवं पांच प्रकारके विवेक आवश्यक होते हैं। इन्हींमें परिग्रह परित्याग गर्भित है।

(९) श्रितिनामक ज्ञेयवस्तु—श्रितिका अर्थ ऊपर चढ़ना है। इसके दो भेद हैं भावश्रिति और द्रव्यश्रिति। अपने अंतस्तलमे रत्नत्रयादि गुणों तथा शुभपरिणामोंका दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर विकास करते जाना, उनकी उन्नति होना भावश्रिति कहलाती है तथा उच्चस्थानमें स्थित पदार्थ लेनेकेलिये जो नसैनी आदिका आलम्बन लेकर एक एक करके ऊपर चढ़ना द्रव्यश्रिति कहलाती है। इनमेंसे साधुकेलिये भावश्रिति अपनाने योग्य है। अतः इस प्रकरणमे भावश्रितिसे ही प्रयोजन है।

(१०) भावनानामक ज्ञेयवस्तु—"भावना अभ्यासः" भावना अभ्यासको कहते हैं। समाधि या भक्तप्रत्याख्यानके तत्पर साधुको कंदर्प आदि पांच कुभावनाओंको हृदयमे बिलकुल स्थान न देते हुए, उन्हे हृदयसे निकालते हुए छटवीं भावनाके अभ्यासमें लगाना चाहिये। इस भावनाका नाम है असंक्लिष्ट भावना। इसमे तप, ज्ञान, निर्भयता एकत्व, धृतिबल नामकी भावनाये अंतर्निहित हैं। इन उपरिलिखित पांच भावनाओंमे मनको लगाना, उनका अभ्यास करना भावना कहलाती है। इससे आत्मशुद्धिके साथ ही साथ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिमे निरतिचार साधुकी प्रवृत्ति होती है।

(११) सल्लेखनानामक ज्ञेयवस्तु'—साधु जब लिङ्ग शिक्षा विनय, अभ्यासादिके द्वारा भक्त प्रत्याख्यानके लिये तत्पर हो जाता है तो बाह्य एवं अंतरंग तपकी आराधना करते हुए अपने शरीरको कृश करना प्रारंभ कर देता है इसीको सल्लेखना कहते हैं। यह कृश करने की क्रिया अंतरंगमे कषायोके और बहिरंगमे शरीरको क्षीण करनेसे होती है।

(१२) दिशानामक ज्ञेयवस्तु.—अपनी आयुका अंत निकटमे ही जानकर सल्लेखना करता हुआ आचार्य, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप धर्मतीर्थका प्रवर्तन होता रहे, इसकी परिपाटीका क्रम खंडित न हो, इस दृष्टिसे सौम्य तिथि, करण, नक्षत्र और लग्नके समयमे, अपने स्थानपर जिसको नियुक्त करनेका सोचा है ऐसे बाल आचार्यको बुलाकर संघस्थ व्यक्तियोके समक्ष, उसे समस्त गणका आचार्य घोषित करना दिशा कहलाता है।

(१३) क्षमणनामक ज्ञेयवस्तुः—नव नियुक्त आचार्यको बुलाकर, उसे गणके बीचमें स्थापित कर जो मुनि आदिकोसे क्षमा मांगना है सो क्षमण ज्ञेयवस्तु कहलाती है। अपने पदसे मुक्त साधु कहता है "हे साधु गण! आप लोगोके साथ दीर्घकाल तक रहकर ममत्व, स्नेह, रागादिके निमित्तसे कठोर वाक्य कहे होंगे जिससे मनमे कलुषभाव

उत्पन्न हुआ होगा। उस सबका परित्याग कर आचार्यसे मेरे अपराधकी क्षमा करें। आप सबसे मैं क्षमा मांगता हूं"। इसके बाद पूरा का पूरा संघ मन वचन कायसे क्षमा मांगता है।

(१४) अनुशिष्टिनामक ज्ञेयवस्तुः—भक्तप्रत्याख्यानके लिये तत्पर तथा अपने पदसे मुक्त हुआ साधु क्षमा मांग लेनेके बाद पूरे संघ व नव नियुक्त बालाचार्यको आगम एवं सूत्र ग्रन्थोंके अनुसार उपदेश देता है इसीको अनुशिष्टि कहते है।

(१५) परगणचर्यानामक ज्ञेयवस्तुः—उपदेश देनेके बाद वह साधु रत्नत्रयमें प्रवृत्ति करनेके लिये एवं आराधनाके लिये दूसरे संघमें जाने की इच्छा करता है, इसीको परगणचर्या कहते हैं। यहां रहनेपर आज्ञा भंग, कठोर वचन, कारुण्य, ध्यानविघ्न, असमाधि आदि दोषोंके होनेकी संभावना बनी रहती है। दूसरेके गणमें जाता हुआ साधु संसारसे भयभीत रहता है, पाप कर्मसे भीरु होता है तथा समस्त शास्त्रके रहस्यको जानने वाला होता है अतः समाधिमरणोद्यमी होकर आराधनाकी सिद्धिमें दत्तचित्त हो पूरी मुस्तैदीके साथ उसमें लग जाता है।

(१६) मार्गणा नामक ज्ञेयवस्तुः—मार्गणाका अर्थ है खोज करना। अपनेमें पाये जाने वाले रत्नत्रयोंमे निर्मलताकी वृद्धि एवं समीचीनरूपसे समाधिमरणकेलिये योग्य, शास्त्रनिर्दिष्ट गुणोंसे विशिष्ट आचार्यकी खोजको वह साधु पांचसौ, छहसौ, सातसौ या इससे भी अधिक योजनोंको चलकर पूरा करता है। इसीको मार्गणा ज्ञेयवस्तु कहते हैं।

(१७) सुस्थितनामक ज्ञेयवस्तुः—आचारवान् आदि आठ गुणोंसे युक्त निर्यापक आचार्यको प्राप्तकर समाधि मरणकेलिये तत्पर हुआ साधु अपनी पूरी आराधनाकी वृद्धिमें अच्छी तरहसे स्थिर बुद्धि हो जाता है। जिसे संसारसे भय उत्पन्न हुआ है ऐसा वह साधु समस्त बाधाओंको दूर करनेमें समर्थ समूची आराधनाको भी प्राप्त कर लेता

है। इसीको सुस्थित ज्ञेयवस्तु कहते हैं।

(१८) उपसंपदानामक ज्ञेयवस्तुः— अपनी बुद्धिको सुस्थिर कर, भली प्रकारसे खोजे गये तथा आचार वानादि निर्यापक गुणोसे विशिष्ट आचार्यके प्रति वह साधु अपने आपको समर्पित कर देता है। उपसंपदा का अर्थ है गुरुकुलमे गुरुके समक्ष आत्मसमर्पण करना यही उपसंपद या उपसंपदा कहलाती है।

(१९) परीक्षानामक ज्ञेयवस्तु — निर्यापक आचार्य भी, उस समाधि मरणकेलिये तत्पर हुए साधुकी, जिसने अपने आपको समर्पित किया है, परीक्षा लेते हैं कि यह रत्नत्रयाराधनाकी क्रिया करनेमे उत्साही है या नहीं, मनोहर मिष्ट आहारोमे यह अभिलाषा रखता है या नहीं आदि। यही परीक्षा ज्ञेयवस्तु कहलाती है। समाधिकेलिये यह आवश्यक है।

(२०) प्रतिलेखननामक ज्ञेयवस्तुः परीक्षा करनेके बाद साधुके राज्य, (कौनसे राज्यसे आया है) देश, ग्राम, नगर, अधिपति आदिके विषयमे खोज करना प्रतिलेखन कहलाता है। इस खोजका उद्देश्य आराधनाकी निर्विघ्नतापूर्वक समाप्ति रहती है। इसलिये वह (आचार्य) लेखा जोखा लगाता है, खोजके आधार पर, कि अमुकदेश, अमुक राज्यादि इसकी आराधनाकेलिये शुभ होगा या नहीं आदि अतः यह भी उसी (प्रति लेखन) के अतर्गत है।

(२१) आपृच्छानामक ज्ञेयवस्तुः— निर्यापक आचार्य अपने संघमे पाये जानेवाले साधुओंमे पूंछते हैं कि "सघके साधुगण! यह साधु आराधनाकेलिये तत्पर होता हुआ सघमे आना चाहता है, और चाहता है कि संघकी सहायतासे समाधिमरण करनेमे सफल हो जाऊ। यह तो तुम लोगोको मालूम ही है कि साधु समाधि और वैयावृत्य करण तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृतिके बंधके कारण हैं इसलिये स्पष्टरूपसे कहो कि समागत साधुके प्रति अनुग्रह या सहाय्य करें या नहीं। इसी सम्पतिपर सब कुछ निर्भर है" इस प्रकारके पूछनेको

आपृच्छा कहते हैं। चूंकि इसमें प्रश्न रहता है अतः आपृच्छा इसे कहते हैं।

(२२) प्रतिपृच्छ्यैकसंग्रह (प्रतिछन्न) नामक ज्ञेयवस्तुः—आचार्य द्वारा साधुके अपनानेके विषयमे पूंछे गये प्रश्नके उत्तररूपमें जब संघ एकमत होकर अपनानेकेलिये सहमति दे देता है तब आचार्य उस समागत क्षपकको संघमे सम्मिलत करते है। साथ समूचे संघके बीचमें बिठाकर उसे समाधिमरणस्वरूप बतलाते हैं जिससे समागत साधुके साथ ही साथ संघ भी समाधिमरणके स्वरूपको समझ सके। इस प्रकार एक मति प्राप्त करनेको प्रतिपृच्छ्यैक संग्रह कहते हैं।

(२३) आलोचनानामक ज्ञेयवस्तु—निर्यापक आचार्यकी खोज करनेमे अथवा अन्य किसी प्रकारसे जो पूर्वमे अपराध हो चुके हैं, उनका प्रायश्चित्तादि लेनेकी गरजसे गुरुके समक्ष निश्छल होकर निवेदन कर देना आलोचना है। यह संघमे प्रविष्ट हुआ साधु आचार्य के समक्ष अपने पूर्वापराधोंको अति विनयसे सत्यता सहित सामने रखता है। परिणाम स्वरूप साधु इससे निःशल्य हो जाता है। कांटेके शरीरमें लग जानेसे समूचे शरीरमें पीड़ा होती है तथा उसके निकल जानेपर सुखका अनुभवन होता है। आलोचनासे भी साधुको सुखका अनुभवन होता है। इस समय वह पहिले आचार्यकी वंदना करता है, हाथमें पिच्छिकालेकर अंजुलि करता है फिर अपने सर्व दोषोंको उनके समक्ष रखता है।

(२४) गुणदोषनामक ज्ञेयवस्तुः—आलोचनासे होने वाले लाभों और उसके न करनेसे होने वाले नुकसानों (हानियो) की शिष्यके समक्ष विस्तारपूर्वक विवेचना करना गुणदोष कहलाता है। अनुकम्पित, अनुमानादि दोषोका आलोचना करते समय परिहार करना चाहिये।

(२५) शय्यानामक ज्ञेयवस्तुः—भक्त प्रत्याख्यानकी आराधनामें तत्पर आराधक (क्षपक) को कैसी वसतिकामे रहना चाहिये? कौनसी वसतिकाएं अयोग्य हैं इसका परिज्ञान शय्यानामक ज्ञेयवस्तुसे होता

है। जहां रहनेसे इन्द्रिया संयमित रही आवें एकाग्रता नष्ट न होवे, और ध्यानकी सिद्धि भी निर्विघ्न रूपसे होती रहे ऐसा स्थान वसतिका के लिये योग्य है।

(२६) संस्तरनामक ज्ञेयवस्तु.—क्षपकके रहने योग्य वसतिकामें कैसा संस्तर (सोनेकेलिये बिछौना) होना चाहिये इसका वर्णन इस ज्ञेयवस्तुके अंतर्गत किया जाता है। क्षपकके योग्य चार प्रकारके संस्तर बतलाये गये हैं (१) शिलासंस्तर (२) भूमिसंस्तर (३) फलकमयसंस्तर (४) तृणमयसंस्तर। इन सस्तरोपर साधुको पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर शिर करके शयन करना चाहिये। यही संस्तर ज्ञेयवस्तु कहलाती है।

(२७) निर्यापकपरिग्रह (परिकर) ज्ञेयवस्तु —समाधिमरणके लिये तत्पर हुआ साधु, सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त निर्यापक आचार्यपर अपना भार रखकर अर्थात् उसको ही शरण मानकर योग्य वसतिकामें रखे हुए संस्तरपर आरोहण करता है। आचार्य उस आराधककी समाधिमे सहायक होता हुआ उसे सहायता देनेकेलिये समाधिसवंधी क्रियाओमे विज्ञ अड़तालीस साधुओंको नियुक्त करता है। ये वैयावृत्यादि कर उसके परिणामोमे दृढ़ता पैदा करते रहते हैं। इन्हींको निर्यापक परिकर या निर्यापकपरिग्रह कहते हैं।

(२८) प्रकाशन (आहारप्रकाशन) नामक ज्ञेयवस्तु —संस्तरपर आरूढ़ व समाधिमरणमे तत्पर साधुका अंत समय समीप आ रहा हो उस अंतिम समयमे तीनो प्रकारके आहारोंको बतलाकर एवं तत्संबंधी बुराईयो तथा हानियोको समझाकर उनका त्याग कराना प्रकाशन कहलाता है।

(२९) हानिनामक ज्ञेयवस्तु —आहारका प्रकाशन करते हुए किसी क्षपकके मनमे आहार विशेषके खानेकी अभिलाषा पैदा हो जाय तो उस अभिलाषारूपी सूक्ष्म मनःशल्यको निकालनेकेलिये आचार्य शांतिपूर्ण उपदेशोंके द्वारा प्रयत्न करते हैं। इसीको हानि कहते हैं। क्षपक उपदेश सुन पहिले ही प्रमादको छोड़ देता है। और यदि इतने पर भी

आहारमें गृद्धता रहती है, क्षपक अशन भक्षणसे विमुख नहीं होता तब निर्यापकाचार्य सम्पूर्ण आहारोंमे से क्रमसे एक एक आहारका त्याग कराते हैं और समाधिमरणमे तत्पर उसे बनाये रखते हैं। यह भी क्रिया हानिके ही अंतर्गत है।

(३०) प्रत्याख्याननामक ज्ञेयवस्तु:—हानि क्रियाके कारण यदि पेटमें मल एकत्रित होगया हो तो उसका शोधन कराकर निर्यापकाचार्य त्रिप्रकारके सर्व आहारो (अशन, खाद्य, स्वाद्य) का त्याग करा सम्पूर्ण संघको इसकी सूचना देता है। संघ उसकी आराधना निर्विघ्नरूपसे पूरी हो, इसके लिये कायोत्सर्ग करता है। निर्यापकाचार्य, इसके बाद संघसमुदायमे उपस्थित कर उस क्षपकसे सविकल्पप्रत्याख्यान (चारों प्रकारके आहारका त्याग) कराता है। क्षपक इतर प्रत्याख्यानको भी गुरु-आज्ञापूर्वक करता है।

(३१) क्षामणनामक ज्ञेयवस्तु:—क्षपक इसके (प्रत्याख्यान विधि) बाद आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक मुनि, कुलमुनि आदिके विषयमे होने वाले कषाय रूप परिणामोको दूर करनेकेलिये सबसे क्षमा मांगता है और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर रखते हुए नमस्कार करता है, यही क्षामण ज्ञेयवस्तु कहलाती है।

(३२) क्षमणनामक ज्ञेयवस्तु:—क्षपक भी स्वयं, दूसरे व्यक्तियोंने जो उसके प्रति अपराध किये है उनको भुलाता हुआ सबको क्षमा प्रदान करता है इसे क्षमणनामक ज्ञेयवस्तु कहते हैं।

(३३) अनुशिष्टिनामक ज्ञेयवस्तु:—इस प्रकार पूर्णरूपसे निवृत्त एवं संस्तरारूढ़ हुए उस साधुको निर्यापकाचार्य श्रुतज्ञानके अनुसार उपदेश देते है। साथ ही संवेग और निर्वेद भावोको उत्पन्न करनेवाले कर्णजापको भी देते हैं। इसीको अनुशिष्टि कहते हैं।

(३४) सारणानामक ज्ञेयवस्तु:—संस्तरपर आरूढ़ क्षपकको कर्म के उदयसे कोई, पीड़ा हो जाय, पेटमे शूलादि हो जाय तो निर्यापक आचार्य एवं वैयावृत्यमे तत्पर उनका परिकर रोगको दूर करनेकेलिये

प्रयत्न करते हैं। अग्निसे सेकना, औषधिका लेप करना, अंगमर्दनादि करना रूप बाह्य उपचारोंके करने पर भी यदि रोगका उपशमन नहीं होता, विकलता बढ़ती ही जाती है और मूर्च्छितावस्थाको प्राप्त करने वाला जब क्षपक होता है तो आचार्य प्रश्नोंको पूंछकर जागृत बनाये रखते हैं और उसे रत्नत्रयमे स्थिर रखनेका प्रयत्न करते हैं। इसीको सारण या सारणा कहते है।

(३५) कवच नामक ज्ञेयवस्तु—दुःखाभिभूत क्षपक प्रतिज्ञाभंग करनेकेलिये तैयार हो जाय उस समय आचार्य कड़वे, कठोर व भर्त्सनात्मक वचनोंको न कहकर धर्ममे जिससे दृढ़ता पैदा हो ऐसे उपदेशात्मक उदाहरणयुक्त वचन कहता है वे उत्साह, ओज, साहस और संवेगके भावोंको पैदा करने वाले वचनोंको कह व्रतभंगके निमित्तसे होने वाली निन्दा आदि बुराईयोंको बतलाते हैं। यही कवच कहलाता है कवचको पहिने हुए योद्धा निर्भीक हो शत्रुओंके बीचमे घूमता है, शत्रु उसपर आक्रमण नहीं कर पाते इसी प्रकार उपदेश रूपी कवचसे उक्त होता हुआ क्षपक परीषहादि रूपी शत्रुओंके बीचमे रहता हुआ निर्भीकताकेसाथ धर्मध्यान और शुक्लध्यानमे तत्पर रहता है और अपनी आराधनाकी पूर्तिमे लगा रहता है।

(३६) समतानामक ज्ञेयवस्तुः—उपदेशादिकसे प्रबुद्ध क्षपक शरीर, वसतिका, गण, परिचारक मुनि आदिसे ममत्व त्यागका रागद्वेष विहीन समताभावमें स्थिर होता है। तीनो योगोकी प्रवृत्तिको नियंत्रित कर मैत्री, प्रमोद, कृपा माध्यस्थ्यादि भावनाओंको विचारता रहता है। इसीको समता कहते हैं। इस समय साधु जीवन, मरण, भोगादिसे रागद्वेषादिका त्याग कर देता है।

(३७) ध्याननामक ज्ञेयवस्तुः—मनको समता सलिलसे शीतल कर साधु अपने चित्तको निश्चल करते है और वे उसे अपने मात्र निरंजन शुद्ध आत्म स्वरूपके चितवनमे लगाते हैं इसीको ध्यान कहते हैं। क्षपक धर्मध्यानका चितवनकर शुक्लध्यानमे तत्पर होते हैं।

(३८) लेश्यानामक ज्ञेयवस्तुः—लेश्यासे संबंध परिणामोंसे है। क्षपक क्रमसे गुण श्रेणीपर चढ़ता हुआ पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या रूप परिणामोंको करता है। उसकी विशुद्धिकी मात्रा उत्तरोत्तर अधिक होती जाती है। इसीको लेश्यारूप ज्ञेयवस्तु कहते हैं।

(३९) फलनामक ज्ञेयवस्तुः—लेश्यातीत अवस्थाको प्राप्त कर क्षपक सिद्धावस्थाकी प्राप्तिकी-ओर उन्मुख होता है। आयुष्यके क्षय होनेपर वह सिद्धपदप्राप्तिरूप फल प्राप्त कर लेता है। इसीके अंतर्गत आराधनासे होने वाले लाभों और विराधना करनेसे होनेवाली हानियों का विवेचन भी रहता है।

(४०) शरीर त्याग या विजहणा नामक ज्ञेयवस्तुः—आयुष्य क्षय होनेपर क्षपक परिणामोंकी निर्मलताके अनुसार देवेन्द्र, अहमिन्द्रादि पर्यायको प्राप्त करता है और इस प्रकार शरीरका त्याग कर उसे वहीं छोड़ जाता है। इस छोड़े हुए शरीरकी जो अंतिम क्रियाएं वैयावृत्यमें तत्पर साधु करते हैं उनका उल्लेख इसके अतर्गत किया जाता है।

इस प्रकार चालीस आराधना (समाधिमरण) संबंधी बातोंकी जानकारी प्राप्त कर जो क्षपक या साधु सविचारभक्तप्रत्याख्यान मरणको वरण करनेके लिये समुद्यत होता है वही अपने साध्य या लक्ष्यकी सिद्धिमें सफल होता है। इसीलिये इनको ज्ञेयवस्तु यह संज्ञा प्रदान की।

सूत्रः—धूमोद्गारविदाहोष्णाङ्गत्वमतिभ्रमकान्तिहानिकण्टशोषमुखशोपाल्पशुक्रतातिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वस्वेदस्त्रावाङ्गपाकवलमहरितवर्णत्वातृप्तिपीतकायतारक्तस्रावाङ्गदरणलोहगधास्यतादौर्गन्ध्यपीतमूत्रत्वारतिपीतविट्कतापीतावलोकनपीतनेत्रतापीतदन्तताशीतेच्छा पीतनखतातेजोद्वेषाल्पनिद्रताकोपगात्रसाद भिन्नविट्कत्वान्धतोष्णोच्छ्वासत्वोष्णमूत्रत्वोष्णमलत्व तमोदर्शनपित्तमण्डलदर्शननिःसरत्वानि पित्तकोपजरुजः ॥२॥

अर्थः—प्रत्येक मानव शरीर वात, पित्त और कफ नामके तीन विकार पाये जाते हैं। इनमेंसे जब जिसकी प्रबलता होती है और उनकी साम्यावस्थाकी मात्रामें अंतर आ जाता है तब रोग हो जाते हैं। मानव

शरीर संबंधी रोगोंके अंतः स्वरूपमे घुस कर देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि जितने भी रोग होते है उनमे उपरिलिखित तीन विकारोमेसे किसी एककी प्रधानता अवश्य रहेगी, इनके अभावमे रोग ही नहीं हो सकता। इस सूत्रमे उन चालीस रोगोंको गिनाया गया है जिनमे पित्तकी प्रधानता रहती है अथवा जो पित्त भड़क जानेसे पैदा हो जाते हैं। रोगों-के नाम अलग अलग इस प्रकारसे है:—

(१) धूमोद्‌गार नामक पित्तकोप जन्य रोग (आगे जो और नाम लिखे जानेवाले हैं उनके साथ भी "नामक पित्तकोपज रोग" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) विदाह (३) उष्णाङ्गत्व (४) मतिभ्रम (५) कान्ति हानि (६) कण्ठशोषता (७) मुखशोषता (८) अल्पशुक्रता (९) तिक्ता-स्यता (१०) आम्लवक्त्रत्व (११) स्वेदस्राव (१२) अङ्गपाक (१३) क्लम (१४) हरितवर्णत्व (१५) अतृप्ति (१६) पीतकायता (१७) रक्तस्राव (१८) अङ्गदरण (१९) लोहगंधास्यता (२०) दौर्गन्ध्य (२१) पीतमूत्रत्व (२२) अरति (२३) पीत विट्‌कत्व (२४) पीतावलोकन (२५) पीतनेत्रता (२६) पीतदन्तता (२७) शीतेच्छा (२८) पीतनखता (२९) तेजोद्वेष (३०) अल्पनिद्रता (३१) कोप (३२) गात्रसाद (३३) भिन्नविट्‌कत्व (३४) अन्धता (३५) उष्णोच्छ्वासता (३६) उष्णमूत्रत्व (३७) उष्ण-मलत्व (३८) तमोदर्शन (३९) पित्तमण्डलदर्शन (४०) निःसरत्व।

(१) धूमोद्‌गार नामक रोग—मानव शरीरमे पित्तप्रकृतिका प्रकोप बढ़ जानेपर भीतरसे डकारे आने लगती हैं, साथ ही में उनके साथ मुंहसे जो श्वासोछ्वास निकलता है वह धुंआंसा मालूम देता है। इसीको धूमोद्‌गारनामक रोग कहते हैं।

(२) विदाहनामक रोग—पित्तका प्राबल्य होनेपर पुरुषके पेटमे या छाती (सीना) के बीचमे विशेषरूपसे जलन होने लगती है, इसीको विदाह रोग कहते हैं। इससे रोगाक्रांत व्यक्ति विकल हो जाता है।

(३) उष्णाङ्गत्वनामक रोगः—इससे सारे शरीरमें उष्ठता बनी रहती है।

(४) मतिभ्रमनामक रोगः—सारे शरीरमे जो जलन होती है उसकी वेदनासे विकल होता हुआ रोगी अपनी बुद्धि की विवेकशीलताको खो देता है। उसकी बुद्धिमे विकार हो जाता है। इसीको मतिभ्रम कहते हैं।

(५) कान्तिहानिनामक रोगः—जब रोगी प्राणीके ऊपर पित्तका प्रबल प्रहार होता है तो उसके शरीरकी कान्तिमे कमी होने लगती है इसीको कान्तिहानि रोग कहते हैं। शरीर इसके प्रहारसे असुन्दर प्रतीत होने लगता है।

(६) कण्ठशोषनामक रोगः—इस रोगके कारण रोगीका कण्ठ (गले) भीतर ही भीतर सूखता रहता है।

(७) मुखशोषनामक रोगः—इसके प्रभावसे रोगाक्रान्त व्यक्तिका चेहरा ओज रहित होता हुआ पिचका भद्दा और सूखा सूखासा दिखाई देने लगता है।

(८) अल्पशुक्रता नामक रोगः—पित्तकी प्रबलताके कारण रोगीका खून भीतर ही जलने लग जाता है परिणाम यह होता है कि वीर्यकी मात्रामें कमी होने लगती है। रक्त और वीर्य परस्परमें सम्बन्धित हैं तथा वीर्यकी अल्पता या अधिकता रक्तकी अल्पता और अधिकता पर निर्भरित रहती है। इससे रोगीमे अशक्ति और निरुत्साहपन आ जाता है।

(९) तिक्तास्यतानामक रोगः—पित्तके कारण रोगीका मुंह सदैव कडुआ कडुआ बना रहता है।

(१०) आम्लवक्त्रता नामक रोग —कडुएपनके साथ ही मुंहमें इस रोगसे एक बिढंगे खट्टेपनको लिये हुए रोगी दुःखी होता रहता है।

(११) स्वेदस्त्रावनामक रोगः—यह रोग पित्तके बढ़ जाने पर होता है। कमजोरीके साथ ही साथ रोगीके शरीरसे पसीना आता रहता है। इसीको स्वेदस्त्राव रोग कहते हैं।

(१२) अङ्गपाकनामक रोगः—जैसे अत्यन्त तेज गर्मीके कारण वृक्षों-के पत्तें पक कर पीले हो जाते हैं उसी प्रकार रोगीके आङ्गोपाङ्ग पित्तकी गर्मीके कारण पके पकेसे निर्बल हो जाते हैं। इसीको अङ्गोपाक कहते हैं

(१३) क्लमनामक रोग —क्लम थकानको कहते हैं। इस रोगके कारण थोड़ा सा काम करने पर रोगीको थकावटका अनुभवन होने लगता है और वह काम नहीं कर पाता है। इसीको क्लम रोग कहते हैं।

(१४) हरितवर्णत्व नामक रोगः—पित्तकी प्रवलता होने पर शरीर की नसे कमजोरीके कारण हरी हरी हो जाती हैं और आगे जाकर प्रभाव यह होता सारे शरीरमे हरे रंगकी झांई आने लगती है। यही कमज़ोरी को प्रदर्शित करने वाला हरितवर्णत्व नामक रोग कहलाता है।

(१५) अतृप्ति नामक रोग.—पित्तके बढ़ जानेपर रोगीके सदैव अतृप्ति बनी रहती है। वह कुछ भी मुंहके स्वादके कारण नहीं खा पाता है।

(१६) पीतकायतानामक रोग —पित्तके कारण अगपकसां तो पहिले ही जाता है साथ ही सारे शरीर पिलाहट (पीलापन) आ जाता है। इसीको पीतकायता या पाण्डुरोग नामक रोग कहते हैं।

(१७) रक्तस्राव नामक रोग —पित्तकी तीव्रता होनेपर रोग के नांक, मुंह, गुदास्थानादिसे खून गिरने लगता है। नाक फूटना, मुंहसे कफके साथ खून आदि रोग इसीसे संबंधित रहते हैं।

(१८) अङ्गदरण नामक रोगः—शरीरके हाथ पांव आदि अंग और उपाङ्ग पित्तके कारण फटने लगते हैं और उनमेसे खून निकलने लगता है जिसके कारण तीव्र वेदना का अनुभवन रोगीको करना पड़ता है। इसीको अगदरण रोग कहते हैं।

(१९) लोहगंधास्यता.—पित्तरोगके रोगीके मुंहसे लोहके समान बदबूका आना लोहगंधास्यता है।

(२०) दौर्गन्ध्य नामक रोगः—लोहगंधास्यता बढ़ते बढ़ते तीव्रताको धारण कर लेती है और मुंह आदिसे दुर्गन्ध आने लगती है। दूसरे मनुष्य पासमें आनेसे घबड़ाते हैं। यह सब दौर्गन्ध्य रोगके निमित्तसे होता है।

(२१) पीतमूत्रता नामक रोग.—पेशाबकी पीली आना पीतमूत्रता

कहलाता है। इससे जलनका अनुभवन होता है ।

(२२) अरति नामक रोग—इसके कारण रोगीका मन किसी भी विषयकी ओर रुचि पूर्वक नहीं जाता। वह खिन्न और उदास सा बना रहता है।

(२३) पीत विट्कता नामक रोगः—पीले रंगकी टट्टीका होना इस रोग का प्रभाव है।

(२४) पीतावलोकननामक रोगः—पाण्डु या हरदिया रोगके रोगी-को जैसे समस्त पदार्थ असली रूपमे दिखलाई न देकर पीले पीले दिखाई देते हैं ऐसे ही पित्तसे उत्पन्न होनेवाले इस रोगके रोगीको समस्त पदार्थ पीले पीले प्रतीत होते हैं ।

(२५) पीतनेत्रता नामक रोगः—साधारणतया नेत्रके मध्यभागमें पाई जाने वाली पुतली श्यामल और अवशिष्ट भाग स्वेत होता है किन्तु पित्तके कारण रोगीके नेत्र पीले पीले हो जाते हैं इसीको पीतनेत्रता कहते हैं ।

(२६) पीतदन्तता नामक रोगः—नेत्रोंकी पिलाहटके साथ ही साथ रोगीके दातोंमें भी पीलापन आजाता है। यही पीतदन्तता रोग कहलाता है।

(२७) शीतेच्छानामक रोगः—इतनी दाह या उष्णता रोगीके शरीरमे पित्तके प्रकोपसे बनी रहती है कि वह हमेशा शीत पदार्थोंके संयोगको चाहता रहता है।

(२८) पीतनखतानामक रोगः—पित्तके कारण नेत्र और दांत ही पीले होते हों सो बात नहीं, अंगुलियोंके अग्रभागमें रहने वाले नख भी पीले पड़ जाते हैं।

(२९) तेजोद्वेष नामक रोगः—इस रोगका रोगी चमक वाले पदार्थोंको पसन्द नहीं करता, वह प्रकाश, उज्वलतादिसेबिचकना या घृणा करता है। यही तेजोद्वेष कहलाता है।

(३०) अल्पनिद्रता नामक रोगः—पित्तके प्रकुपित हो जाने पर

रोगीको नींद नहीं आती है जैसे तैसे आती भी है तो वह थोड़े समय रहती है उसमे भी दुःस्वप्नसे आते हैं।

(३१) कोपनामक रोगः—पित्तके कारण रोगीके स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ जाता है वह जरा जरा सी बातपर गुस्सा करने लगता है।

(३२) गात्रसाद नामक रोगः—सारे शरीरमे पीड़ाका होना गात्रसादता कहलाती है।

(३३) भिन्न विट्कत्व नामक रोग.—पित्तके कारण रोगीको फटी फटी छितराई हुई टट्टी लगने लगती है, इसीको भिन्नविट्कत्व कहते हैं, आंवका लगना, चिरकना आदि इसमे गर्भित रहते हैं।

(३४) अन्धता नामक रोग.—रोगीको अनेक उपद्रवोंका सामना करना पड़ता है। अति उष्णता नेत्रोमे होनेसे आखे लाल २ हो जाती हैं। ललाई बढ़ते बढ़ते आखोंको खराब कर डालती है और उनसे कुछ दिखाई नही देता यही अन्धता कहलाती है।

(३५) उष्णोच्छ्वासता नामक रोग —पित्तके तापसे संतप्त रोगी के मुंहसे गरम गरम सांस निकलने लग जाती है। इसीको उष्णोच्छ्वासता कहते हैं।

(३६) उष्णमूत्रत्व नामक रोगः—रोगीके मूत्रका रंग, पित्तके कारण, जहां पीला हो जाता है वही उष्ण स्पर्श वाला भी वह हो जाता है। मूत्र स्थानमे जलन होने लगती है। ये सब उपद्रव उष्णमूत्रत्वके कारण होते हैं। पित्त और औष्ण्य परस्पर संबंधित हैं।

(३७) उष्णमलत्व नामक रोगः—पित्तके कारण सारे शरीरमे दाह रहता है, यह पहिले कहा जा चुका है। इसीके फल स्वरूप शरीर से निकलने वाला टट्टी आदि मल भी उष्णताको लिये हुए होता है। इससे विकलता बढ़ जाती है।

(३८) तमोदर्शन नामक रोग —कमजोरीके कारण रोगी निर्बल हो जाता है और इसकी मात्रा जब बढ़ जाती है तब उठते बैठते आंखो के सामने अंधेरा छाने लग जाता है। रोगीको अपने आसपास अंधकार

के सिवाय; कुछ समय तक, और कुछ दिखाई नहीं देता।

(३६) पित्तमंडलदर्शन नामक रोगः—पित्तके कारण होने वाले रोगोंमे एक रोग यह है कि रोगीका जी मचलाने लगता है। उसे वमन की इच्छा होती है और साथमे चक्कर भी आने लगते हैं।

(४०) निःसरत्वनामक रोगः—पित्तके कारण रोग का कभी २ मल भी खिसक जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि रोगीको प्राणो के लाले पड़ जाते हैं और उसका जीवित रहना असाध्य यदि नही तो दुःसाध्य हो जाता है। इसीको निःसरत्व कहते हैं।

सूत्रः—अरोराऽसमीयोडीयौभ्काकनाड़ीकराढीकायथीगुजरातीगुरुमुखी-ग्रंथंतामिलतैलगूथलदोगरीदेवनागरीतिमारीनेपालीपराचीपहाणिवाणिया-वगलाभावलपुरीविसातीवडियामणिपुरामलयालमराटीमारवाडीमुलतानीमै-थिलीमोडीरोरीलामावासीलुण्डीशिराकीसारिकासईसीसिहलीशिकारपुरीसि-न्ध्यो भारते ब्राह्मीह्लिपिनिःसृतवर्तमानलिपयः ॥२॥

अर्थः—जहां मानव है वहां मननशीलताका पाया जाना स्वाभाविक है। मनन शीलताके कारण वह विचारता है, सोचता है व साथ ही मे जो कुछ सोचता था विचारता है उसे दूसरोंके सामने रखनेका प्रयत्न भी करता है। इसको वह दो तरहसे करता है बोल करके या लिख करके। लिखकर विचार व्यक्त करनेमे वह जिन अक्षरात्मक संकेतों या आकृतियोका सहारा लेता है उन्हे लिपि कहते हैं। लिपियों की संख्या और बनावट समयके परिवर्तनके साथ ही परिवर्तित होती रही हैं और होती रहेंगी। यह तथ्य जितना निर्विवाद और निर्णीत है उतना ही यह तथ्य भी सत्य व विवाद कोटिके परे है कि परिवर्तनमें कालके साथ ही साथ देश भेद भी हिस्सा बंटाता है। वर्तमानमे भारत देशमे पाई जाने वाली प्रमुख लिपियोंके नाम इस सूत्रमे गिनाये गये हैं। जहॉ तक प्राचीनताका प्रश्न है, इतिहास ही कुछ आगे बढ़कर उत्तर देता है कि सबसे प्राचीन लिपि आदि ब्रह्मा श्री वृषभदेव द्वारा निर्मित ब्राह्मी लिपि है। इसी लिपिसे देवनागरी आदि लिपि निकली

हैं। लिपियोंकी संख्या चालीस है, भारतके विभिन्न भागोंमें प्रचलित हैं और नाम अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

(१) अरौरा नामक लिपि (२) असामिया लिपि (३) उडिया लिपि (४) ओझा (५) कणाड़ी (६) कराड़ी (७) कायथी (८) गुजराती (९) गुरुमुखी (१०) ग्रंथम् (११) तामिल (१२) तेलगू (१३) थल (१४) दौगरी (१५) देवनागरी (१६) निमारी (१७) नेपाली (१८) पराची (१९) पहाड़ी (२०) वषिया (२१) वंगला (२२) भावलपुरी (२३) बिसाती (२४) बड़िया (२५) मणिपुरा (२६) मलयालम (२७) मराठी (२८) मारवाड़ी (२९) मुलतानी (३०) मैथिली (३१) मोढ़ी (३२) रोरी (३३) लामावासी (३४) लुण्डी (३५) शराकी या श्रावकी (३६) सारिका (३७) सईसी (३८) सिहली (३९) शिकारपुरी (४०) सिन्धी।

(१) अरोरा नामकी लिपिका प्रचार सिन्धु प्रदेशमे है।

(२) असामिया नाम हीसे ज्ञात होता है कि इस लिपिका अस्तित्व आसाम देशमें पाया जाता होगा।

(३) उड़िया, उड़ीसा प्रान्त प्रयुक्त होने वाली, लिपि हैं।

(४) ओझा लिपिका प्रयोग बिहारके ब्राह्मणोमे होता है।

(५) कणाड़ी:—इसका प्रयोग कर्नाटक प्रदेशमे पाया जाता है।

(६) कराड़ी:—

(७) कायथी या कैथी:—इस लिपिका भी काश्मीर प्रदेशमे प्रयोग होता है।

(८) गुजराती:—इसीके नामसे ज्ञात होता है कि इस लिपिका प्रयोग अहमदाबादके आस पासके प्रदेशमें किया जाता होगा और अभी भी प्रयोग होता है। आज कल इसे सौराष्ट्र प्रदेश कहते हैं।

(९) गुरुमुखी:—पंजाब प्रान्तमे प्रयोग इसका बहुत किया जाता है। पंजाबियोंका धर्मग्रंथ "ग्रंथ साहब" इसी लिपिमे लिखा हुआ है।

(१०) ग्रंथम्:—तमिल प्रान्तमे रहने वाले ब्राह्मणोंके मध्यमें इस लिपिका प्रचार पाया जाता है।

(११) तामिल:—इस लिपिका प्रचार दक्षिणके प्रदेशोमें, जैसे मंगलूर आदि, पाया जाता है।

(१२) तेलगू:—दक्षिण प्रान्तमें प्रयुक्त होने वाली यह भी एक लिपि है। इसमे लिखा कुछ साहित्य भी मिलता है।

(१३) थल:—इस लिपिका प्रयोग पंजाबके डेरा जात प्रदेशमे किया जाता है।

(१४) दोगरी:—पैशाचीसे मिलती जुलती काश्मीरमें प्रयुक्त होने वाली लिपिका नाम है।

(१५) देवनागरी लिपि:—यह लिपि समूचे भारतमें प्रचलित है। स्वाधीन भारतकी राष्ट्रलिपिके रूपमे इसे अंगीकार किया गया है।

(१६) निमारी या निमाड़ी:—मध्यभारतमे और मध्यप्रदेशके बीचमें खरगौन ऊंन, महेश्वर आदि प्रदेश नीमाड़ प्रदेश कहलाता है। इसमे नीमाड़ी लिपिका प्रयोग किया जाता है।

(१७) नेपाली:—इसके नाम हीसे इसके प्रयोग क्षेत्रका ज्ञान हो जाता। भारतसे सटा हुआ वभारतके उत्तरी पूर्वी कोनेमें नेपाल देश पाया जाता है। वहांकी लिपि है।

(१८) पराची लिपिका प्रयोग भेदमें होता है।

(१९) पहाणी—कुमायूं गढवालके आस पासके प्रदेशोंमें इस लिपिका प्रचार पाया जाता है।

(२०) वणिया:—सिरसा हिसारमे व इनके आस आसके स्थानोंमें यह लिपि प्रचलित है।

(२१) बंगला:—वर्तमानिक लिपियों व भाषाओंमें बंगलाका अत्युच्चस्थान है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, शरद्चन्द्र चटर्जी, डा० रवीन्द्रनाथ टेगौर आदि ने इसे जीवित भाषाओंमे प्रमुख पद प्रदान करानेमें खूब हाथ बटाया।

(२२) भावलपुरी:—इसका प्रयोग, जैसा कि नामसे मालूम देता है, भावलपुर राज्यमे पाया जाता होगा।

(२३) विसाती

(२४) वडिया

(२५) मणिपुरा, आसामके किसी भागकी भाषा है।

(२६) मलयालम, मद्रास आदि दक्षिण प्रदेशकी जीवित भाषाओं की लिपियोंमे से यह एक है।

(२७) मराठी:—इसका प्रयोग बरार नागपुर पूनाके आस पास बहुत ज्यादा किया जाता है। इसका भी अच्छा खासा मौलिक साहित्य पाया जाता है।

(२८) मारवाड़ी—जयपुर, नागौर आदि प्रदेशमे खाते बहियोमे इसकी सत्ता विद्यमान है। इसमे नवीन साहित्यका अभाव सा है। प्राचीन साहित्य अवश्य कुछ पाया जाता है।

(२९) मुलतानी:—मुलतान प्रदेशमें इसका प्रयोग किया जाना प्रतीत होता है।

(३०) मैथिली:—इस लिपिका प्रयोग मिथलाके आस पासके प्रदेशोंमें पाया जाता है विद्यापति चुने हुए साहित्यस्रष्टाओंमे से एक जितने इसे अभी तक अमरत्व प्रदान किया।

(३१) मोड़ी —इस लिपिमे मुढ़िया भाषाका साहित्य लिपिवद्ध होता था। कोई २ पुराने व्यापारी इसका प्रयोग करते हैं।

(३२) रोरी—पञ्जाबकी भाषाओंमे एक भाषा इस लिपिमें बद्ध है।

(३३) जामावासी लिपिका अस्तित्व तिब्बतसे लगे हुए आस पासके स्थानो मे होना चाहिये।

(३४) लुण्डी:—यह स्यालकोटके आस पास पाई जाने वाली एक लिपि है।

(३५) शराकी या श्रावकी:—हजारीबाग मधुबनके आसपास लाखों की संख्या में सराक लोग पाये जाते हैं। उनकी यह लिपि होनी चाहिये।

(३६) सारिका —पंजाबके डेराजाल प्रदेशमे यह लिपि प्रचलित

थी, संभवतः अब भी पाई जाती है ।

(३७) सईसी:—यह एक नौकरी पेशा मनुष्योंकी, जो उत्तरपश्चिममे पाये जाते हैं, लिपिका नाम है ।

(३८) सिंहली:—हिन्दुस्तानसे लगे हुए लंकाद्वीपमें इस लिपिका प्रचार है । इसमें कुछ वौद्ध साहित्य और हठयोग सम्बन्धी ग्रन्थ बद्ध हैं ।

(३९) शिकारपुरी:—उत्तर प्रदेशमें शिकारपुर पाया जाता है, वहां और उसके आस पासके प्रदेशोंमें इस लिपिका अस्तित्व या संभवतः अभी भी हो ।

(४०) सिन्धी:—यह एक प्रमुख लिपियोमें से एक है, उर्दू से कुछ मिलती जुलती सी दिखाई देती है और इसका कुछ निश्चित स्थान नहीं है । इसके लिखने वाले व इस भाषाका प्रयोग करने वाले व्यक्ति सारे भारतवर्षमें फैल गये हैं । भारत विभाजन, जो कि १९४७ में हुआ इससे, इस लिपिमे बहुत ज्यादा उथल पुथल या, परिवर्तन हो गया ।

सूत्र—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः असिआउसा अप्रतिचक्रे फट् वि चक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा इति चत्वारिंशदक्षरर्द्धि मंत्रः ॥४॥

यह मंत्र होते हुए एक ऋद्धि मंत्र है । इसमे चालीस अक्षर हैं । अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

ॐ ह्रीं अ र्हं ण मो अ रि हं ता णं ण मो जि णा णं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अ प्र ति च क्रे फट् वि च क्रा य झ्रौं झ्रौं स्वा हा ।

सूत्र—बुद्धिधृतिशौर्यज्ञानबलतेजःक्षमादयासत्संगहित वचननिष्प्रमादप्रजापालनसेनासंग्रहनीतिविचारसत्यवाक्प्रसन्नमुखेंगिताकारसामदामदण्डभेदाः पुरुषार्थे कल्याण ग्राहिसरलचित्तेतिहाससंदातृप्रियदर्शितत्वज्ञजितेन्द्रियकुलीन कृतज्ञनिर्लोभदक्षश्रुतवत्सावधानधर्मज्ञकोमलमर्मज्ञबहुश्रुत दण्ड वेदिताः प्रजापालकराजगुणाः ॥५॥

अर्थ:—प्रजाको पुत्रसे भी अधिक प्रेम कर, राज्यको एक धरोहर मान कर तथा सेवाको अपना कर्तव्य मान कर राज्य करने वाले राजा

लोग एक युगमे हुआ करते थे। प्रजा उनके राज्यमें सुख समृद्धिमे सम्पन्न होती हुई चैनकी वशी बजाती थी। प्रजापालक कह अपने पलक पांवडे बिछा देती थी, बड़ी श्रद्धा सन्मान और गौरव उन्हे प्रदान करती थी। नरेन्द्रमुकुटमणि रामचन्द्र जी ऐसे ही नृपति थे, प्रजा पालक थे। उंगुली पर गिने जानेवाले ऐसे राजाओमे कौन कौनसे गुण पाये जाते हैं, या एक सच्चे अर्थोंमे राजा कहलाने वाले नृपतिमे किन गुणोंका पाया जाना आवश्यक है, उन गुणोको इस सूत्रमे सूचित किया है। गुणोंकी संख्या चालीस है, नाम उनके अलग अलग यो हैं:—

(१) बुद्धि नामक गुण (२) धृति गुण (३) शौर्यगुण (४) ज्ञान गुण (५) बल गुण (६) तेज गुण (७) क्षमा गुण (८) दयागुण (९) सत्संग गुण (१०) हितवचन गुण (११) निष्प्रमाद गुण (१२) प्रजापालन गुण (१३) सेना सग्रह गुण (१४) नीति विचार (१५) सत्यवाक् (१६) प्रसन्न मुख (१७) इंगिताकार (१८) साम (१९) दाम (२०) दण्ड (२१) भेद (२२) पुरुषार्थी (२३) कल्याणग्राही (२४) सरलचित्त (२५) इतिहासज्ञ (२६) दाता (२७) प्रियदर्शी (२८) तत्वज्ञ (२९) जितेन्द्रिय (३०) कुलीन (३१) कृतज्ञ (३२) निर्लोभ (३३) दक्ष (३४) श्रुतवान् (३५) सावधान (३६) धर्मज्ञ (३७) कोमल (३८) मर्मज्ञ (३९) बहुश्रुत (४०) बहुश्रुतवेदित्व।

(१) बुद्धि नामक गुण.—पुरुष और पशुमे विभेदकी कारणीभूत यदि कोई वस्तु है तो वह है बुद्धि बुद्धिके अभावमे ज्ञान मनुष्यके लिये कभी २ भार भी हो जाता है। बुद्धिके सद्भावमे ही वह सत् असत्का विवेक कर पाता है। पालकमे इसका पाया जाना नितान्त आवश्यक है।

(२) धृति नामक गुण—इस गुणके अभावमें पालक एक क्षण भी शासन भार वह न करनेमे समर्थ नहीं हो सकता। राज्यकी समस्यायें महान होती है, यदि उनके सुलझानेमें धैर्य गुणका आलंबन न लिया गया तो वे उलझीं ही रहेगी। उलझनोंसे प्रजाकी उलझने बढ़ती ही चली जायगी अतः पालकमे धैर्य गुण भी आवश्यक है।

(३) शौर्य नामक गुण —कठिनाईयो और कष्टोसे संक्लेशित

न होते हुए विपदाओंका वीरतासे मुकाबिला करना शौर्य है । डरपोकपन और असफलताको जीवनके शब्द कोशमे से निकाल कर फेंक डालने वाला भी पालकके लिये होना चाहिये ।

(४) ज्ञान गुणः—राजा अपने कर्तव्यको पूरा तभी कर सकेगा जब स्फुरणशीला प्रज्ञासे उक्त होता हुआ प्रकृष्ट ज्ञानको संपादित कर लेगा । बिना ज्ञानके शासनके विभागीय कार्योंकी जानकारी हासिल नहीं कर पायेगा । नौकर, कर्मचारी, अधिकारी आदि मनमानी घर-जानी कर प्रजाको दुःखित करते रहेंगे अतः ज्ञानकी महती आवश्यकता है पालकके लिये ।

(५) बल नामक गुणः—दुष्ट दलन, शत्रु संहरण एवं सज्जन संरक्षणके लिये शरीर सामर्थ्य जिसे बल या शक्ति कहते हैं, का राजामें पाया जाना जरूरी है बिना बलके आस पास शत्रु आदि शिर उठाने लगते हैं ।

(६) तेज नामक गुणः—तेज प्रतापको कहते हैं । पालकमें जितनी तेजस्विता होगी उतनी ही ग्राह्यता प्रजाके द्वारा होगी । उगते सूर्यको झुकनेसे ही व्यक्त होती है महत्ता तेजकी । तेजके होनेपर ही शौर्यादि गुणोंकी सफलता निर्भर है ।

(७) क्षमा गुणः—शूरता, प्रताप, सामर्थ्य आदिसे सम्पन्न होते हुए भी पालकको गम्भीर स्वभाव वाला होना चाहिये । जरा जरासी बातोंसे खूनमे उबाल आ जाना, आखे लाल हो जाना आदि बातें राजा के उचित नही है । उसे सामर्थ्यसे युक्त होते हुए भी सहनशील क्षमा प्रदायक होना चाहिये ।

(८) दया गुणः—वही सच्चे अर्थोंमें नरपति या पालक कहलाने योग्य हो सकेगा जो दूसरेके दुःख दर्दमे हमदर्द होगा । राज्यमे दीन, हीन, गरीब भी पाये जाते हैं उनकी चिन्ता भी उसे होनी चाहिये । यह बात उसमें दया गुणके होनेपर ही हो सकेगी, यह एक निश्चित तथ्य है ।

(९) सत्संग नामक गुण —दया, क्षमा आदि गुणोंका समुचित विकास उसी हालतमे हो सकेगा जब वह अपनी संगति या सोहबतको ठीक रक्खेगा। संगति मानवको शिखरारूढ़ कर देती है वही उसे पतनके गहरे गर्तमे भी गिरा देती है। सत्संगतिका होना इस दृष्टिसे पालकके लिये आवश्यक है।

(१०) हितवचन नामक गुण —नृपतिके लिये जरूरी है कि वह प्रजाहितको दृष्टिमे रख अपने वचनोंको प्रयुक्त करे। अहितकारक वचनोंसे प्रजाके संकट बढ़ जानेकी आशंका रहती है।

(११) निष्प्रमाद नामक गुण —प्रजापालक अपने कर्त्तव्यको पूरी तौरसे निभा सके इसके लिये आवश्यक है कि वह हमेश मुस्तैद या सतर्क रहे। आलसी और लापरवाहीका जीवन उसे प्रजाकी दृष्टिमें से गिरा देगा अतः प्रमाद या आलस्यको दूर कर सर्वदा सचेत या सतर्क (Alert) बने रहना चाहिये।

(१२) प्रजापालन नामक गुण.—जैसे पिता अपने पुत्रको पालता है, उसका पोषण करता है, और अनेक संकटोसे बचाता है उसी प्रकार शासनान्तर्गत मानवोको ही नहीं अपितु पशु पक्षियोंको पालता हो पोषता हो, उसे ही प्रजापति या पालक कहते है।

(१३) सेनासंग्रह नामक गुण —शासितोकी सुरक्षा यदि शासक नहीं कर पा रहा हो तो वह नामका ही राजा है। इस जिम्मेदारीको पूरा करनेकेलिये पदातियो (पैदल सिपाहियो) रथारोहियो, अश्वारोहियो और गजारोहियोकी सेनाका संग्रह भी उसे रखना चाहिये।

(१४) नीतिविचार नामक गुण —मानसिक विचारोका प्रभाव मानवकी चेष्टाओपर पडा करता है। राजा भी अपनी चेष्टाओंसे प्रजा को सुख साता पहुँचा सके इसके लिये निष्पक्ष अनुभवी महात्माओके द्वारा व्यक्त किये गये उपदेशोका उसे सतत अध्ययन, चिंतन और मनन करते रहना चाहिये।

(१५) सत्यवाक् नामक गुण — राजा "प्राण जांहि पर वचन न

जांहि" के आदर्शको अपने सामने रख सदा ही अपने वचनोंको सम्हाल कर बोला करते थे। सदैव उनकी दृष्टि रहती थी कि हमारे मुखसे कोई असत्य, प्राणि घातक, अन्यायवर्धक वचन न निकल जांय। राजा सत्य वचनोको बोलना ही अपना आदर्श रखते थे और प्रजा उनके लिये अपना जीवन तक निछावर कर देनेमे गौरवका अनुभवन करती थी आजके युगमें भी राजाओंको सच्चे अर्थोंमे राजा बननेकेलिये समीचीन, सत्यवाणी बोलनेकी आदतको अपनाना नितान्त आवश्यक है।

(१६) प्रसन्नमुख नामक गुणः—संकटो और बाधाओंके रहनेपर भी अपने चेहरेपर विषादकी रेखाओंकी झलक न दिखलाई देवे इस प्रकारसे अपने मुखको हमेशा खुश रखना प्रसन्न मुख गुण कहलाता है। राजाको इस गुणके अपनानेमें प्रमादी नहीं बनना चाहिये।

(१७) इंगिताकार नामक गुणः—बाहरी रंग ढंग या ऊपरी चाल ढालसे ही बातको समझ जाने वाला राजाको होना चाहिये। इतनी सतर्कता राजामें न रहेगी तो स्वार्थी अपना मतलब गांठ स्वयं नृपको प्रजाको कष्टमे डाल देंगे। इस गुणके अभावमें गुप्तचरोंसे भी ठीक तौरसे काम न ले सकेगा।

(१८) सामनामक गुणः—विरोधी शत्रु यदि प्रबल हो अथवा व्यर्थमे ही जीव घात क्यो हो इस दृष्टिसे आपसमे शांति पूर्वक कलहको शांत कर लेना सामगुण कहलाता है। सफल, कुशल, एवं नीतिनिपुण नृप सर्व प्रथम अवसर आनेपर इसी गुणका आश्रय लिया करते हैं। प्रजा पालकको चाहिये कि वह इस गुणके चयन करनेमें अपने आपकी शक्तिको लगाये।

(१९) दामनामक गुणः—शांति प्रयत्नोंको अपनानेके बावजूद भी यदि शत्रु सीधा नहीं हो रहा हो उस समय विरोधीको उसकी सेनाके आदमियोंको लालच देकर, अपनी ओर करके शत्रुको वशमें कर लेना दाम गुण कहलाता है। राजाको दाम गुणके लिये भी सचेष्ट होना चाहिये। राज संचालनमें दाम गुणका महत्वपूर्ण स्थान है।

(२०) दण्ड नामक गुण—राज्य संचालन एवं प्रजाकी शांतिको सुरक्षित बनाये रखनेके लिये उपद्रवियों विविध प्रकारकी धर्मकियां, यातनाएं, सजाएं आदि देना दण्ड गुण कहलाता है। दण्ड नृपका मण्डन है। राजनीतिका प्रमुख स्तम्भ है। प्रजापालकको इसकी मान्यता के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। इसका प्रयोग करते हुए सज्जन संरक्षण एवं दुष्ट दलनके ध्येयको सामने रक्खे रहना चाहिये।

(२१) भेद नामक गुण—निपुण नरपति साम, दाम, दण्डके प्रयोग करनेके बाद भी जब कलह शान्ति या युद्ध टालनेमें सफल नहीं होता है तब अपने कुशल राजनीतिज्ञोंके द्वारा विरोधी पक्षके उच्चाधिकारियोमें, उनके मित्रो आदिमे भेद युक्त बातोंका प्रचार कर वैमनस्य पैदा करा देता, मनमुटावकी भावनाओंको प्रोत्साहित कराता है, तथा परस्परकी कलहके बीजोको अंकुरित कर निर्वल बना देता है और सहजमे ही उसको वशमें कर लेता है। यह भेद नामक गुण भी प्रजा पालकके लिये उपयोगी है।

(२२) पुरुषार्थी नामक गुणः—पुरुषार्थ करना पौरुषकी निशानी है। इस गुणके अभावमे प्रजाके सुख दुःखकी वास्तविक स्थितिका परिज्ञान होना कठिन है। अतः प्रजा पालकके लिये पुरुषार्थी होना जरूरी है।

(२३) कल्याणग्राही नामक गुणः—जिससे मंगलकी प्राप्ति होती है ऐसे कल्याणकारी मार्गका अनुसरण कर्ता भी प्रजापालक होता है।

(२४) सरलचित्त नामकगुणः—मन वचन कायकी कुटिलताका परित्याग कर अपने हृदयमे गुड़ी या भेदका नहीं रखना सरलचित्तपना कहलाता है। राजामे यदि यह गुण नहीं पाया जायगा तो निम्न अधिकारी पूरी ईमानदारीसे, सचाईसे या निष्कपटतासे काम नहीं करेगे।

(२५) इतिहासज्ञ नामक गुणः—शासक अपने जीवन-धन्वा (धनुष) पर क्रिया शीलताकी डोरी चढ़ाता हुआ विवेक बाणको चढ़ाकर

जितना ज्यादा पीछेकी ओर (भूतकालीन वृत्त-इतिहास) खींचेगा वह उतनी ही सफलताके साथ भावी कर्तव्य कर्मकी पूर्ति रूपी लक्ष्य वेधनमें सफल होगा। पूर्वके पद चिन्होंपर ही भावी जीवनकी गति निर्भर रहती है। अतः इतिहासज्ञ भी उसे होना चाहिये।

(२६) दाता नामक गुणः—लोभी, कृपण, या स्वार्थी पुरुष मुश्किलसे अपना ही पोषण कर पाता है उससे एक देशकी प्रजा पालनकी आशा करना रेतसे तेल निकालना जैसा है। यदि प्रजा पालनके कर्तव्य को पूरा करनेकी इच्छा नृपके हृदयमें वर्तमान है तो उसे उदार हृदय होनेके साथ ही साथ दाता भी होना चाहिये।

(२७) प्रियदर्शी नामक गुणः—जहां तक आकृतिका प्रश्न है उसका सुन्दर या असुन्दर होना नाम कर्मके आधीन है। फिर भी सुन्दरताकी कसौटी आकृति मात्र ही हो यह नहीं है। वह एक गौण (Secondary) वस्तु है। जनता द्वारा प्रियता प्राप्त करनेके लिये नृप को लोक हितकारी कृतियोंको करना चाहिये (Hand Some that who hand some works) ऐसा होनेपर वह (नृप) प्रियदर्शी कहला सकेगा।

(२८) तत्वज्ञ नामक गुणः—तत्व सार पदार्थको कहते हैं। लोक यात्राको करते हुए तत्व जो स्वात्महित उसको जानने वाला भी उसे होना चाहिये। एक लम्बी चौड़ी कोई घटना घट जाय उसके मूल मुद्दे को थोड़ेमे जल्दी ही समझ लेने वाला तत्वज्ञ कहलाता है। राजाको दोनों तरहकी तत्वज्ञता प्राप्त करनी चाहिये।

(२९) जितेन्द्रिय नामक गुणः—वही तत्वकी ओर दृष्टि देगा जो लौकिक विषयोंमे अति गृद्धतासे न लिपटा हो। लोकमें वही सन्मान या आदर प्राप्त कर पाता है जो जितेन्द्रिय होता है। राजाको अपने पद की प्रतिष्ठा और कर्तव्य पूर्तिके लक्ष्यको ध्यानमें रख अपनी इन्द्रियोंको नियंत्रित रखना चाहिये। यही इन्द्रियोकी संयमित दशा जितेन्द्रियता कहलाती है। जितेन्द्रियताको अपनाना प्रत्येक नृपका कर्तव्य है।

(३०) कुलीन नामक गुण:—उच्च कुलके पुरुषोंके अनुरूप अपने आचार विचार, खान पान, रहन सहन आदि रखना कुलीनता कहलाती है। कुलीनता भी अन्य गुणोंके समान आदरणीय है।

(३१) कृतज्ञ नामक गुण:—"न हि कृतमुपकारं साधवः विस्मरन्ति" नृप कुलीन होता है तत्वज्ञ होता है अतः उसे चाहिये कि यदि दूसरे व्यक्तिने थोड़ासा भी उपकार किया है तो वह उसका एहसान माने, उसका आभारी है। इसीको कृतज्ञता कहते हैं।

(३२) निर्लोभ नामक गुण—पालकको सतत अपने ध्यानमें रखना चाहिये कि समस्त अनर्थों या पापोंकी एक मात्र कोई जड़ है तो वह है लोभ। लोभको समस्त पापोंका बाप बतलाया गया है। अत उसका परित्याग कर उदारचेता होना चाहिये।

(३३) दक्ष नामक गुण:—दक्षका अर्थ है चतुर। राजाको चतुर होना चाहिये, इस गुणके अभावमें न्याय, दया आदिका उचित उपयोग नहीं हो सकेगा।

(३४) श्रुतवान् नामक गुण:—दर्शन, धर्म, राजनीति, विज्ञान, कला, वाणिज्य आदि विषयोके शास्त्रोंका जानकार भी उसे होना चाहिये। इससे ज्ञानकी वृद्धिके साथ ही साथ अनुभवकी वृद्धि होती है। समस्याओका सहज ही मे वह हल प्राप्त कर लेता है। अतः प्रजापालकको चाहिये कि वह अपने आपको श्रुतवान् बनावे।

(३५) सावधान नामक गुण:—बे खबर हो अपने जीवनको बितानेका अर्थ है स्वयंको खतरेमे डालना। राजाको प्रतिदिन अनेक तरहके व्यक्तियोसे मिलना पड़ता है। यदि वह उनके साथ सावधानीसे व्यवहार नहीं करेगा तो निश्चित है कि उसे पद पद पर ठोकरे खानी पड़ेगी। सावधानी, सतर्कता, होशयारी आदि पर्यायवाची शब्द हैं।

(३६) धर्मज्ञ नामक गुण:—धर्मके प्रति रुचि रखने वाला व्यक्ति अच्छे और बुरे कर्मोंके स्वरूप और उनके फल (परिणामों) को जानने वाला व्यक्ति हुआ करता है। बुरे कार्यो से अपनेको विमुख कर वह

अच्छे कामोंके करनेमें लगाये रखता है। राजा भी एक पुरुष है अतः धर्मज्ञ यदि वह रहेगा तो ऐसे कामोंके करनेसे अपनेको दूर रक्खेगा जिससे प्रजाको कष्ट हो। इसतरह प्रजा हित एवं स्वयंके हितकी दृष्टिसे उसे धर्मज्ञ भी होना चाहिये।

(३७) कोमल नामक गुणः—प्रजापालक महापुरुषोंमें से एक माना गया है। महापुरुषोंको लक्ष्यमें रख कहा गया है कि उनका हृदय "वज्रादपिकठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" वज्रसे भी कठोर और कुसम (फूल) से भी कोमल हुआ करता है। राजाको भी इसी प्रकारकी कोमल वृत्तिका धारक होना चाहिये।

(३८) मर्मज्ञ नामक गुणः—बाह्याडम्बरोंसे निहित, किसी भी विषयके मर्मस्थलको जाननेकी शक्ति सम्पन्न शासक ही प्रजाको सच्चा न्याय प्रदान कर उसे संतुष्ट कर सकता है। मर्मज्ञताके अभावमें वाक्छलोंके द्वारा वावदूक गण अनुचित पक्षकी पक्षता या अनुमोदना कराकर प्रजाके कष्टोंको बढ़ाते रहेंगे।

(३९) बहुश्रुत नामक गुणः—राजाको बहुतसे श्रुत वाला होना चाहिये। श्रुतका अर्थ है सुनना अर्थात् राज्यमें कहां अशान्ति है, रोग है, आदि बातोंके विषयमें सुनते रहना चाहिये। गुप्तचरोंके द्वारा, स्वयं वेष परिवर्तन करके शासनके विषयमें सुनना चाहिये तथा सुन करके जो कष्ट हों उनको दूर करना चाहिये। यह भी राजाके लिये उपयोगी एक गुण है।

(४०) बहुश्रुतवेदित्व नामक गुणः—श्रुतवान होनेके नाते वह एक भाषा में लिखित विविध शास्त्रोंका जान कार होता है किन्तु बहुश्रुतवेदिताके नाते वह देशविदेशोंमें प्रयुक्त होने वाली विविध भाषाओंकी जानकारी हासिल करता है। साथ ही इसके वह यह भी चेष्टा करता है कि उनमें निबद्ध शास्त्रीय साहित्यकी भी जानकारी प्राप्त कर लेवे। इससे होता यह है कि राजा किसी प्रजाहितकारी योजना का परिज्ञान प्राप्त कर उसे अपने राज्यमें कार्यान्वित करता है। परिणाम

यह होता है कि प्रजा सुखका अनुभवन करती है।

इसी प्रकार ये चालीस गुण हैं। इन गुणोंका एक सफल प्रजा-पालकमें होना आवश्यक है। इनके होनेसे वह प्रजाकी वास्तविक स्थितिको जान लेगा और आधि, ईति भीति आदि व्याधियोंसे मुक्तकर उन्हें अपने गुण, अनुभव और ज्ञानके बलसे सुख सम्पन्न करनेमें समर्थ हो सकेगा।

❀ इकतालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—पर्याप्तनारकपर्याप्तदेवसामान्यकेवलितीर्थंकरकेवलिसमुद्घातिकेवलिसमुद्घातितीर्थंकरकेवल्याहारकर्द्धिमन्तो बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणपर्याप्तापर्याप्ताः प्रत्येकवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिमनुष्यपर्याप्तापर्याप्ता नामकर्मोदयस्थानविषयभूता जीवपदाः ॥१॥

अर्थ.—प्राणी जब नाना योनियोंको प्राप्त करता हुआ वहां जन्म लेता है। जन्म धारणके साथ ही साथ देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक संबंधी पर्यायोंके शरीरोंको भी धारण करता है। इन शरीरोंकी रचनाके लिये कारणी भूत जो कर्म होता है उसे नाम कर्म कहते हैं। ऐसे नामकर्मके उदय स्थानोंको, जिनकी कि भिन्न भिन्न संख्या हैं, को जाननेके लिये इकतालीस जीव स्थान या पद होते हैं। इन जीव पदों या स्थानोंके नाम इस सूत्रमे लिखे गये हैं। भेदोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

(१) पर्याप्त नारक नामक जीवपद (२) पर्याप्त देव नामक जीवपद (३) सामान्य केवलि जीवपद (४) तीर्थंकर केवलि जीवपद (५) समुद्घातिकेवलि जीवपद (६) समुद्घातितीर्थंकर केवलि जीवपद (७) आहारक ऋद्धिमान् जीवपद (८) बादर पृथ्वी पर्याप्त जीवपद (९) बादर पृथ्वी अपर्याप्त जीवपद (१०) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (११) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त जीवपद (१२) बादर अप् पर्याप्त (१३) बादर अप् अपर्याप्त (१४) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (१५) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (१६) बादर तेज पर्याप्त (१७) बादर तेज अपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१९) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त

(२०) बादर वायु पर्याप्त (२१) बादर वायु अपर्याप्त (२२) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (२४) बादर साधारणवनस्पति पर्याप्त (२५) बादर साधारण वनस्पति अपर्याप्त (२६) सूक्ष्म साधारण वनस्पति पर्याप्त (२७) सूक्ष्म साधारण वनस्पति अपर्याप्त (२८) प्रत्येक वनस्पति पर्याप्त (२९) प्रत्येक वनस्पति अपर्याप्त (३०) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (३१) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त (३२) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३३) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त (३४) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३५) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त (३६) असंज्ञी पंचेन्द्रिय (तिर्यंच) पर्याप्त (३७) असंज्ञी पंचेन्द्रिय (तिर्यंच) अपर्याप्त (३८) संज्ञी पंचेन्द्रिय (तिर्यंच) पर्याप्त (३९) संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त (०४) मनुष्य पर्याप्त नामक जीवपद (४१) मनुष्य अपर्याप्त नामक जीवपद ।

सूत्र—औदयिकौदयिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकसान्निपातिकौदयिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकपारिणामिकसान्निपातिकाः औपशमिककौपशमिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकौदयिकसान्निपातिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकाः क्षायिकक्षायिकसान्निपातिकक्षायिकौपशमिकसान्निपातिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकक्षायिकौदयिकसान्निपातिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकाः क्षायोपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकौदयिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकौपशमिकसान्निपातिकक्षायोपशमिकक्षायिक सान्निपातिकक्षायोपशमिक पारिणामिकसान्निपातिकाः पारिणामिकपारिणामिकसान्निपातिकपारिणामिकौपशमिकसान्निपातिकपारिणामिकक्षायिकसान्निपातिकपारिणामिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकपारिणामिकौदयिकसान्निपातिकाः औदयिकौपशमिकक्षायिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौपशमिकक्षा-

योपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिका औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसान्निपातिका औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकः सान्निपातिका भावाः ॥२॥

अर्थ—सान्निपातिक भावोंसे जीवके उन असाधारण भावोंका ग्रहण होता है जो मिले हुए होते हैं। जीवके मुख्य स्व तत्व या असाधारण भाव पांच हैं। इन पाचो भेदोंके प्रभेदोंके मिलापसे ये सान्निपातिक भाव, जिनको सूत्रमें निबद्ध कर परिगणित कराया है, बनते हैं। भावोंकी संख्या इकतालीस है और नाम उनके अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

(१) औदयिक औदयिक सान्निपातिक जीवभाव (२) औदयिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (३) औदयिक—क्षायिक—सान्निपातिक जीवभाव (४) औदयिक—क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (५) औदयिक—पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (६) औपशमिक—औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (७) औपशमिक—क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव (८) औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (९) औपशमिक—औदयिक सान्निपातिक जीवभाव (१०) औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (११) क्षायिक—क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव (१२) क्षायिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (१३) क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (१४) क्षायिक औदयिक सान्निपातिक जीवभाव (१५) क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (१६) क्षायोपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (१७) क्षायोपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीवभाव (१८) क्षायोपशमिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (१९) क्षायोपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव (२०) क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (२१) पारिणामिक

पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (२२) पारिणामिक औपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (२३) पारिणामिक क्षायिक सान्निपातिक जीव-भाव (२४) पारिणामिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (२५) पा-रिणामिक औदयिक सान्निपातिक जीवभाव (२६) औदयिक औपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभाव (२७) औदयिक औपशमिक क्षायोपश-मिक सान्निपातिक जीवभाव (२८) औदयिक औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (२९) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपा-तिक जीवभाव (३०) औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (३१) औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (३२) औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (३३) औपशमिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभाव (३४) औ-पशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (३५) क्षा-यिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (३६) औपश-मिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक जीवभाव (३७) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (३८) औ-दयिक औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (३९) औदयिक औपशमिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव (४०) औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव (४१) औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणा-मिक सान्निपातिक जीव भाव।

(१) औदयिक-औदयिक सान्निपातिक जीव भाव:—कर्मों के उदयसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे जो मिला हुआ भाव होता है उसे इस नामसे पुकारते हैं। जैसे मनुष्य मानी रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(२) औदयिक-औपशमिक सान्निपातिक जीव भाव:—कर्मके उदय तथा उपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिला हुआ भाव होता है उसे औदयिक औपशमिक सान्निपातिक भाव कहते हैं

जैसे मनुष्य उपशान्त क्रोध रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(३) औदयिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मके उदय तथा क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे इस कोटिमे रक्खा जा सकता है। मनुष्य क्षीण कषायी।

(४) औदयिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—उन मिले हुए भावोको इस नामसे पुकारते हैं जो कर्मों के उदय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे उत्पन्न होते हैं। जैसे क्रोधी मतिज्ञानी रूप सान्निपातिक जीवभाव।

(५) औदयिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव—इस नाम से उन मिले हुए भावोका ग्रहण होता जो कर्मों के उदय तथा परिणाम से पैदा होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे मनुष्य भव्य रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(६) औपशमिक औपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इसके द्वारा उन मिले हुए भावोको सम्मिलित किया जाता जो कर्मों के उपशम से उत्पन्न होने वाले दो भावोके मेलसे उत्पन्न होते हैं। जैसे उपशम सम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय नामक सान्निपातिक जीवभाव।

(७) औपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीवभावः—उन मिले हुए भावोको इस नामसे पुकारते हैं जो कर्मों के उपशम और क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोके मेलसे उत्पन्न होते हैं। जैसे उपशान्त क्रोधी क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(८) औपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इस नामके अन्तर्गत उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मों के उपशम और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मिलनसे उत्पन्न होते हैं। जैसे उपशान्त कषाय अवधिज्ञानी रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(९) औपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीवभावः—कर्मों के उपशम और उदयसे उत्पन्न होने वाले भावोके मिलापसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे औपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीव भाव

कहते हैं। जैसे उपशान्त कषाय मनुष्य रूप सान्निपातिक भाव।

(१०) औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—यह संज्ञा उन मिले हुए भावोंको दी जाती है जो कर्मों के उपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मिलनसे पैदा होते हैं। जैसे उपशान्तदर्शनमोह जीव रूप सान्निपातिक भाव।

(११) क्षायिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मों के क्षयसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हें क्षायिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव कहते हैं। जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षीण कषाय रूप सान्निपातिक भाव।

(१२) क्षायिक औदयिक सान्निपातिक जीव भावः—इस नामसे उन मिले हुए भावोंका ग्रहण होता है जो कर्मोंके क्षय और उदयसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे क्षीण कषाय मनुष्य रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(१३) क्षायिक औपशमिक सान्निपातिक जीव भावः- वे मिले हुए भाव इस नामसे पुकारे जाते हैं जो कर्मों के क्षय व उपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशान्तवेद रूप सान्निपातिक भाव।

(१४) क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इस नाम के अन्तर्गत उन्हीं भावोंको रक्खा जाता है जो मिले हुए होते हैं। कर्मों के क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे इस तरहके भाव पैदा होते हैं। जैसे क्षीण कषायी मतिज्ञानी रूप सान्निपातिक भाव।

(१५) क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—इस शीर्षक के अंतर्गत उन्हीं मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मोंके क्षय और स्वाभाविक परिणामसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे क्षीण मोह भव्य नामक भाव।

(१६) क्षायोपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—

यह नाम उन मिले हुए भावोंको दिया जाता है जो कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे संयत अवधिज्ञानी रूप भाव।

(१७) क्षायोपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीव भाव:—कर्मों के क्षयोपशम और उदयसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे क्षायोपशमिक औदयिक सान्निपातिक जीव भाव कहते हैं। जैसे संयत मनुष्य रूप भाव।

(१८) क्षायोपशमिक औपशमिक सान्निपातिक जीव भाव —इसके द्वारा उन मिले हुए भावोंको परिगणित किया जाता है जो कर्मोंके क्षयोपशम और उपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे संयत उपशान्तकषाय रूप भाव।

(१९) क्षायोपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भाव:—ऐसे ही मिले हुए भावोंको इस नामके अतर्गत रक्खा जाता है जो कर्मोंके क्षयोपशम तथा क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे संयतासंयत क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप भाव।

(२०) क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव—कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदिकी अपेक्षा न रखते हुए परिणामसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उनको इस नामसे पुकारा जाना है। जैसे अप्रमत्त संयमी जीव रूप भाव।

(२१) पारिणामिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव:—कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमादिकी अपेक्षा न रखते हुए परिणाम से उत्पन्न होने वाले दो भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं। उनको इस नामसे सम्बोधित करते हैं जैसे जीव भव्य रूप भाव।

(२२) पारिणामिक औदयिक सान्निपातिक जीव भाव:—परिणाम तथा कर्मोंके उदयसे पैदा होने वाले परिणामोंके मेलसे जो भाव मिले हुए पैदा होते हैं उन्हे पारिणामिक औदयिक भाव कहते हैं। जैसे

भव्य मनुष्य रूप भाव।

(२३) पारिणामिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भावः—स्वाभाविक परिणाम और कर्मों के क्षयसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव होते हैं उन्हें इस नामसे पुकारते हैं। जैसे भव्य क्षीण कषायी रूप भाव।

(२४) पारिणामिक औपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—परिणाम और कर्मों के उपशमनसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते है उन्हे इस नामसे पुकारा जाता है जैसे भव्य उपशान्त कषायी रूप भाव। इसमे भव्य पारिणामिक और उपशान्त कषायित्व औपशमिक भाव है इन दोनोके मेलसे यह सान्निपातिक जीव भाव बना है। पूर्वके उदाहरणों तथा आगे जो उदाहरण दिये जाने वाले हैं उनमें इसी प्रकार उपपत्ति बिठा लेनी चाहिये।

(२५) पारिणामिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—परिणाम और कर्मों के क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं उन्हे यह संज्ञा प्रदानकी जाती है। जैसे भव्य संयत रूप जीव भाव।

(२६) औदयिक औपशमिक क्षायिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मों के उदय उपशम और क्षयके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते है उन्हे इस कोटिमे रक्खा जाता है। जैसे मनुष्य उपशान्त वेद क्षायिक सम्यग्दृष्टि रूप भाव। इससे पूर्व तकके सान्निपातिक भावोंमे दो भावोंका मेल रहा है, अब इस भावसे लगाकर पैंतीसवें भाव तकके भावोंमें तीन भावोंका मेल है। उनके मेलसे ये सान्निपातिक भाव बने हैं।

(२७) औदयिकऔपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—वे मिले हुए भाव इस नामके अंतर्गत आते हैं जो कर्मों के उदय उपशम और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं जैसे मनुष्य उपशान्तकषाय अवधिज्ञानी रूप भाव।

(२८) औदयिक औपशमिकपारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—

इस शीर्षकके अंतर्गत उन मिले हुए भावों को रक्खा जाता है जो कर्मों के उदय उपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे बनते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्त कषाय भव्य रूप परिणाम (भाव)।

(२९) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः— वे मिले हुए भाव इस नामको प्राप्त करते हैं जो कर्मों के उदय, क्षय और क्षयोपशमके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे मनुष्य क्षीणकषायी मतिज्ञानी रूप भाव।

(३०) औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः— इसके अंतर्गत उन भावोंको रक्खा जाता है जो मिले हुए होते हैं। कर्मों के उदय, क्षय और स्वाभाविक परिणामसे उत्पन्न होने वाले भावों-के मेलकी आवश्यकता इन भावोंके लिये जरूरी है। उदाहरणके लिये मनुष्य क्षीण कषायी भव्य रूप भाव को कहा जा सकता है।

(३१) औदयिक क्षायोप शमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव— उन मिले हुए भावोंका यह नाम है जो कर्मों के उदय क्षयोपशम तथा स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते है जैसे क्रोधी मतिज्ञानी अभव्य रूप भाव।

(३२) औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भावः—इस शीर्षकके अन्तर्गत उन मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मों के उपशम क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे उत्पन्न होते हैं। जैसे उपशान्त कषाय क्षायिक सम्यग्दृष्टि अवधि-ज्ञानी रूप सान्निपातिक भाव।

(३३) औपशमिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः— वे मिले हुए भाव इस नामको धारण करने वाले होते हैं जो कर्मोंके उपशम क्षय और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे उपशान्तक्रोधी क्षायिकसम्यग्दृष्टि भव्य रूप भाव।

(३४) औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव

भावः—इस नाम वाले भाव भी मिले हुए भाव होते हैं। ये कर्मोंके उपशम, क्षयोपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं। जैसे उपशान्तकषायी अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

(३५) क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—इस शीर्षक या कोटिमें उन्हीं मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मोंके क्षय, क्षयोपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे पैदा होने वाले भावोके मेलसे होता है। जैसे क्षीण कषायी मतिज्ञानी भव्य रूप सान्निपातिक जीव भाव।

(३६) औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—इसमे उन मिले हुए भावोको सम्मिलित किया जाता है जो कर्मोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे होते हैं जैसे उपशान्त कषायी क्षायिक सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

(३७) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मोंके उदय, क्षय, क्षयोपशम तथा स्वाभाविक परिणाम के निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलमे जो मिले हुए भाव पैदा होते हैं वे इस नामको धारण करते हैं। जैसे मनुष्य क्षायिक सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

(३८) औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीवभावः—कर्मों के उदय, उपशम, क्षयोपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे पैदा होने वाले भावोके मेलसे जो पैदा होते हैं उन मिले हुए भावोंको इसमे गर्भित किया जाता है। जैसे मनुष्य उपशान्त-वेद अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

(३९) औदयिक औपशमिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भावः—कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव पैदा होते

हैं उनको इस नामसे पुकारा जाता है। जैसे मनुष्य उपशान्तवेद क्षायिक सम्यग्दृष्टि भव्य रूप भाव।

(४०) औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीवभाव.—इस नामके अंतर्गत उन मिले हुए भावोंको रक्खा जाता है जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे पैदा होते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तवेदी क्षायिक सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी रूप भाव। छत्तीसवें भावसे लेकर चालीसवें भाव तकके भावोंमें यह ध्यान देने योग्य है कि इनमें चार चार प्रकारके भावोंका मेल हुआ है। ऐसे ये भाव कुल पांच हैं।

(४१) औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव—कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम और स्वाभाविक परिणामके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले भावोंके मेलसे जो मिले हुए भाव होते हैं वे इस कोटिमें आते हैं। जैसे मनुष्य उपशान्तक्रोधी क्षायिक सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी भव्य रूप भाव।

सूत्र—अष्टौ दर्शनाङ्गा अष्टज्ञानाङ्गास्त्रयोदशचारित्राङ्गा द्वादशतपांसि सर्वाराधनाः ॥२॥

अर्थ.—संसार समुद्र-संतरणके लिये समुद्यत हुआ संसारी प्राणी स्वात्मलाभ रूप स्वार्थकी पूर्तिके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वा तप रूप गुणोंको अपने रूप करके उनका सेवन करता है तब उस क्रियाको आराधना कहते हैं। ऐसी मुख्य आराधनाएं चार हैं, सम्यग्दर्शन आराधना, सम्यग्ज्ञान आराधना, सम्यक् चारित्र आराधना, सम्यक् तप आराधना। इन चारों आराधनाओंके प्रभेदोंको मिला दिया जाय तो इकतालीस आराधनाए हो जायगी। इन्हीं इकतालीसकी ओर इस सूत्रमें संकेत किया गया है। नाम इन भेदोंके अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

सम्यग्दर्शन आराधना संबंधी आठ अग.—(१) निःशंकित अंग (२) निकांक्षित अंग (३) निर्विचिकित्सा अग (४) अमूढ दृष्टि अंग

(५) उपगूहन अंग (६) स्थितिकरण अंग (७) वात्सल्य अंग (८) प्रभावना अंग।

(२) सम्यग्ज्ञान आराधना संबंधी आठ अंगः—(९) काल नामक अंग (१०) विनय अंग (११) बहुमान अंग (१२) ग्रंथ अंग (१३) अर्थ अंग (१४) ग्रंथार्थ अंग (१५) उपधान अंग (१६) अनिह्नव अंग।

(३) सम्यक् चारित्र आराधना संबंधी तेरह अंगः—(१७) अहिंसा महाव्रत (१८) सत्य महाव्रत (१९) अचौर्य महाव्रत (२०) ब्रह्मचर्य महाव्रत (२१) परिग्रह त्याग महाव्रत (२२) ईर्या समिति (२३) भाषा समिति (२४) एषणा समिति (२५) आदाननिक्षेपण समिति (२६) प्रतिष्ठापना समिति (२७) मनो गुप्ति (२८) वचन गुप्ति (२९) कायगुप्ति।

(४) सम्यक् तप आराधना संबंधी बारह अंगः—(३०) अनशन तप (३१) अवमौदर्य तप (३२) वृत्तिपरिसंख्यान तप (३३) रसपरित्याग तप (३४) विविक्त शय्यासन तप (३५) कायक्लेश तप (३६) प्रायश्चित्त तप (३७) विनय तप (३८) वैयावृत्य तप (३९) स्वाध्याय तप (४०) ध्यान तप (४१) व्युत्सर्ग तप। ये सर्व-आराधनाके कुल इकतालीस भेद हैं।

सम्यग्दर्शन आराधना संबंधी आठ अंगोका स्वरूपः—

(१) निःशंकित अगः—जिनोपदिष्ट वचनोमे अटल श्रद्धा रखते हुए उनमें शंका न करना। अपने मनमे चल मलादि दोष पैदा न होने देना निःशंकित अंग है।

(२) निःकांक्षित अंगः—कांक्षा अभिलाषा या चाहको कहते हैं। "मैं देव हो जाऊं, यक्ष हो जाऊं या पृथ्वीका स्वामी राजा हो जाऊं" इस प्रकारकी चाहनाका होना कांक्षा कहलाती है। चारित्रकी आराधना, तपोंका आचरण आदि करते हुए सांसारिक विषयोकी अभिलाषाको हृदयसे निकाल फेंकना निःकांक्षित अंग कहलाता है।

(३) निर्विचिकित्साः—रत्नत्रयादिसे पवित्र किन्तु स्वभाविक रूपसे जो मैलसे अपवित्र और मैला हो रहा है उसको देख मनमे घृणा नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है।

(४) अमूढ़दृष्टि नामक अंगः—सर्वथा एकान्तवादी मिथ्यादृष्टियोंके दृष्टिकोणोंका मन वचन कायसे अनुमोदन समर्थन और क्रियात्मक सहयोग प्रदान करना, उनकी प्रशंसादि करना अमूढ़दृष्टि अंग कहलाता है।

(५) उपगूहन अंग.—अपने ही धर्मके आचरण करने वाले जातीय बन्धुसे यदि कोई धर्मकी निन्दा और अपवाद कारक बात बन गई हो तो धर्म रक्षाकी दृष्टिसे उसे दबा देना, दुनियांके सामने उस बातको नहीं आने देना, उपगूहन अंग है।

(६) स्थितिकरण नामक अंगः—दैव या प्रमादके वशसे सुमार्गसे विचलित हो रहा हो तो उस साधर्मी बन्धुको अपनी बुद्धि, विवेक, युक्त्यादिके द्वारा पुनः धर्ममे स्थापित कर देना, स्वयं भी दृढताके साथ धर्माचरणमे लगे रहना स्थितिकरण अंग कहलाता है।

(७) वात्सल्य नामक अगः—जैसे गाय अपने बछड़ेसे प्रेम करती है, अपने आपको संकटमे फंसाकर बच्चेको संकटसे निकालती है उसी प्रकार साधर्मी बन्धुके ऊपर प्रेमभाव रखना, उसके दुःखको अपना दुःख समझकर दूर करनेके लिये प्रयत्न करना वात्सल्य अंग है।

(८) प्रभावना नामक अंगः—अंतरंगमे पाये जाने वाले रत्नत्रयोका विकास करना तथा बाह्यमे विद्या, तप, पंचकल्याणकादि विशेष पूजाओं, दान आदिके द्वारा अज्ञान अन्धकारके नाश करने वाले जैनधर्मका प्रचार करना सो प्रभावना अग है। इस प्रकार ये आठ सम्यग्दर्शन आराधनाके अंग समझना चाहिये।

सम्यग्ज्ञान नामक आराधनाके आठ अंगः—

(९) काल या कालाचार नामक अंगः—गोसर्ग काल, आपराह्णिक प्रदोषकाल, मध्यरात्रिक प्रदोषकाल और विरात्रि काल रूप चार उत्तम कालोमे पठनपाठनादि रूप स्वाध्याय करनेको कालाचार कहते हैं। निषिद्ध समयोमे स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

(१०) विनय अंग या विनयाचारः—शुद्ध जलसे हाथ पैर धोकर,

शुद्ध कपड़े पहिन कर, शुद्ध स्थानमें पद्मासन मांढ़कर ज्ञानके साधन भूत शास्त्रादिका पठनपाठन करना विनय कहलाता है।

(११) बहुमान नामक अंग या बहुमानाचार:—ज्ञानके साधन भूत पुस्तक, ग्रंथ, शिक्षक आदिको सत्कार पुरस्कारादि प्रदान कर आदर प्रदान करना बहुमान कहलाता है।

(१२) ग्रंथ अंग या शब्दाचार:—समीचीन ज्ञान सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये ग्रन्थके सन्दर्भको व्याकरण शास्त्रके अनुसार पढ़ना, उसके अक्षरों, पदों, वाक्यों आदिका पठन पाठन बड़े यत्न पूर्वक करना शब्दाचार या ग्रंथ नामक अंग है।

(१३) अर्थ अंग या अर्थाचार:—शब्दोंके द्वारा कहे जाने योग्य अर्थका शुद्ध रूपसे अवधारण करना अर्थ नामक सम्यग्ज्ञानका अंग है।

(१४) ग्रंथार्थ अंग या उभयाचार:—ग्रंथके शब्दों और अर्थको ठीक ठीक तरहसे पढ़कर तथा समझकर अपने ज्ञानको बढ़ाना उभयाचार कहलाता है।

(१५) उपधान अंग या उपधानाचार:—शास्त्रोंमे बतलाये गये नियमोंके अनुसार आगम ग्रंथोंका इस ढंगसे अध्ययन करना जिससे कालान्तरमें उनका विस्मरण न हो जाय, उपधान नामक अंग कहलाता है।

(१६) अनिह्नवांग या अनिह्नवाचार:—समीचीन ज्ञानकी प्राप्ति जिस गुरूसे या जिस शास्त्रसे हो उसका दुराव छिपाव या गोपन न करना अनिह्नव अंग कहलाता है। ये ज्ञानाराधनाके आठ अंग हुए।

सम्यक्चारित्र आराधनाके तेरह अंग:—

(१७) अहिंसा महाव्रत:—कषाय और योगके निमित्तसे जो द्रव्य प्राणों और भाव प्राणोंका घात करना है उसे हिंसा कहते हैं। ऐसी हिंसाका मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना पूर्वक त्याग करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है।

(१८) सत्य महाव्रत —प्रमादके योगसे स्व और परको हानि-कारक, पीडोत्पादक, प्राणी प्राणघातक अनृत या झूंठ बचनोंको कहना असत्य कहलाता है। ऐसे असत्यका पूर्ण रूपसे परित्याग करना सत्य महाव्रत कहलाता है।

(१६) अचौर्य महाव्रतः—जिस वस्तु पर स्वामित्व या अधिकार नहीं है ऐसी दूसरेकी वस्तु पर अधिकार जमा लेना, बिना मालिकके दिये हुए दूसरेकी किसी वस्तुको ले लेना चोरी है। इस चोरीका पूरी तौरसे त्याग कर देना अचौर्य महाव्रत है। अचौर्य अहिंसामे दृढ़ता लाता है।

(२०) ब्रह्मचर्य महाव्रत—मैथुनका अर्थ है काम सेवनकी क्रिया के प्रति अभिलाषा। इसका पूर्ण रूपसे परित्याग करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

(२१) परिग्रहत्याग महाव्रतः—मोहनीय कर्मके उदयसे जो पर वस्तुमे ममकार रूप परिणाम होते हैं उसे मूर्च्छा कहते हैं। मूर्च्छाका नाम ही परिग्रह है। चौदह प्रकारके अंतरंग दस प्रकारके बहिरंग परि-ग्रहोंसे ममत्व हटाना, उनका सर्वथा त्याग कर देना परिग्रह विरति महाव्रत है।

(२२) ईर्या समितिः—चर्या, जिनदर्शनादिके निमित्तके वशसे सूर्योदयके बाद गज, अश्व, मनुष्यादिकके संचलनसे दलित मार्ग पर सावधानी पूर्वक जीवरक्षा करते हुए गमन और आगमनकी क्रिया करना ईर्या समिति कहलाती है।

(२३) भाषा समिति—जिससे प्राणीका अहित न हो, उसके हृदयको ठेस न पहुँचे ऐसे हिंसादि पापोंसे विमुख करने वाले तथा सुखके हितकारी मार्गको बतलाने वाले वचनोंको बोलना या कहना भाषा समिति है। इससे सकल संयमका साधक संयमित और सीमित वचनोंका प्रयोग करता है। वचन प्रयोगके समय पूर्ण सावधान रहता है।

(२४) एषणा समितिः—उद्गमादिक छियालीस दोषोसे रहित, संयमकी साधनामे सहायक होने वाले शुद्ध आहारका सावधानी पूर्वक ग्रहण करना, एषणा समिति है। साधु इससे आहार विषयकगृद्धताके परिणामोको हृदय पनपनेही नहीं देता।

(२५) आदान निक्षेपण समितिः—ज्ञान और संयमके साधनोंको पूरी सावधानीके साथ देखभालकर उठाना धरना आदान निक्षेपण समिति है।

(२६) प्रतिष्ठापना या व्युत्सर्ग समितिः—जन्तु रहित प्रासुक भूमिमें मल मूत्रादिका क्षेपण करना व्युत्सर्ग समिति कहलाती है। इसमे भी जीवरक्षाकी दृष्टि मुख्य है।

(२७) मनो गुप्तिः—सकल संयमकी विवेचना करने वाले शास्त्रोंमें उल्लिखित विधिके अनुसार मनको वशमें करना, उसको अपने नियंत्रण में रखना मनोगुप्ति है।

(२८) वचन गुप्तिः—सामान्य वाणोंकी अपेक्षा वचन बाण बहुत ही बुरी तरहसे बिंधते हैं ऐसा सोच कर भली तरहसे वाणीको नियंत्रणमें रखना वचन गुप्ति है।

(२९) काय गुप्तिः—अपने शरीरकी चेष्टाओंको इस ढंगसे संयमित रखना कि जिससे कोई आत्माका अहित न हो जाय, वह पतनके गहरे गर्तमे गिरकर रौरवीय यातनाओंको न भोगता फिरे। ऐसी संयमित शारीरिक प्रवृत्तिका ही नाम काय गुप्ति है।

सम्यक् तप—आराधनाके बारह अंग (छह बाह्यतप)

(३०) अनशन नामक तपः—खाद्य (खाने योग्य—उदर भरनेके लिये हाथसे खाने योग्य पूड़ी साग दाल रोटी आदि) स्वाद्य (स्वाद लेने योग्य—सुपारी पान आदि) लेह्य (चाटने योग्य) व पेय (पीने योग्य दुग्धादिक) रूप चार प्रकारके आहारोका चौबीस, छत्तीस, अड़तालीस आदि घंटोके लिये त्याग कर देना अनशन नामक तप कहलाता है।

(३१) अवमौर्य या ऊनोदर तपः—मनुष्यका साधारण तया

बत्तीस तथा स्त्रीका अट्ठाईस ग्रास आहार हुआ करता है। शरीरसे ममत्व हटाने तथा संयममे तत्परता रखनेकी दृष्टिसे सामान्य आहारमें से भी ग्रासोंकी संख्या कम कर देना, ऊनोदर या अवमौदर्य नामक तप कहलाता है।

(३२) वृत्तिपरिसंख्यान तप —भोजनके हेतु जब चर्या करने निकले उस समय गृहोंकी संख्याका नियम कर लेना या "अमुक प्रकारसे अमुक आहार मिलेगा तो भोजन ग्रहण करूंगा अन्यथा नहीं" इस प्रकारका जो नियम कर लेना है उसे वृत्ति परिसख्यान तप कहते हैं।

(३३) रसपरित्याग तप.—मात्र शरीर धारण और संयम प्रक्षाधनके हेतु जो भोजन ग्रहण किया जाता है उससे भी गृद्धताके भावोंको हटानेके लिये दूध, दही, घी, तेल, मीठा और नमक रूप छह रस वाले पदार्थोंका त्याग करना रसपरित्याग तप कहलाता है।

(३४) विविक्त शय्यासन तप —जन्तु रहित, प्रासुक, स्त्री, पशु आदि विषयी जीवोंके संचारसे रहित एकान्त स्थानमे सोना बैठना आदि विविक्तशय्यासन तप कहलाता है।

(३५) कायक्लेश तपः—आकस्मिक कोई विपत्ति आ जाय तो उसके सहनेका अभ्यास बना रहे, शरीरमे ममत्व बुद्धि पैदा न हो तथा इन्द्रियां और मन विषय वासनाओंकी ओर बेलगाम हो प्रवृत्ति न करने लग जाय इस दृष्टिसे गोदूहन, वीरासनादि आसनोंको लगाकर शरीरको कष्ट देना काय क्लेश नामका तप है। ये छह बाह्य तपके भेद हैं। इनको बाह्य इसलिये कहा जाता है कि इनका उद्देश्य-नित्यनैमित्तिक क्रियाओंमे इच्छाओंका निरोध करना-बाह्य तौर पर दिखलाई देता है साथ ही इनका स्वरूप भी दूसरेको ऊपरसे ही प्रत्यक्ष रूपमे प्रतिभासित होता है।

(३६) प्रायश्चित तप —प्रमादसे उत्पन्न हुए दोषोको प्रतिक्रमण आदि पाठ अथवा व्रत तप आदि अंगीकार कर दूर करना प्रायश्चित कहलाता है। इसमे मान कषायकी निवृत्तिके साथ ही निःशल्यता

ज्ञानादिगुणोंकी वृद्धि होती है। अंतरंग तपका यह प्रथम भेद है।

(३७) विनय तपः—आत्मामें पाये जाने वाले सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र गुणोंमें पूज्य बुद्धि रख आदर पूर्वक उन्हें धारण करना, तथा जो इन गुणोंसे युक्त आचार्यादिक हैं उनको भक्तिपूर्वक नमस्कारादि करना तीर्थक्षेत्र आदिकोकी वन्दनादि करना विनय तप है।

(३८) वैयावृत्य तपः—ज्ञान, तप आदिसे वृद्ध पुरुषोंकी सेवा चाकरी करना, उनके हाथ पैरोकी चम्पी करके सेवा करना, रोगादिक की निवृत्तिके लिये भोजनके साथमे औषधि पथ्यादि देना वैयावृत्य कहलाता है।

(३९) स्वाध्याय तपः—मन विषयोकी ओर प्रवृत्त न हो जाय, बुद्धि स्फुरित होती रहे, परिणामोमें निर्मलता बनी रहे तथा धर्मज्ञान, और आचारकी वृद्धि होती रहे इसके लिये जैन आगम ग्रंथोंको पढ़ना, उनका व्याख्यान करना आदि स्वाध्याय कहलाता है।

(४०) ध्यान तपः—समस्त चिन्ताओंका परित्याग करके धर्म तथा आत्म स्वरूपके चिन्तवनमे मनको लगा देना ध्यान है। इससे मन वशीभूत होता हुआ अनाकुल दशाको प्राप्त करता है तथा परम आनन्दमें निमग्न हो जाता है।

(४१) व्युत्सर्ग या उत्सर्गः—चौदह प्रकारके अंतरंग और दश प्रकारके बाह्य परिग्रहोमे जो अहंकार और ममकार रूप परिणामोंका परित्याग करना है उसे व्युत्सर्ग या उत्सर्ग तप कहते हैं। ये छह अंतरंग तप कहलाते हैं, चूंकि ये उपरीतौर पर दूसरेको दिखलाई नहीं देते हैं और अंतरंगमें मनके निग्रहसे साधे जाते हैं अतः अंतरंग तप कहलाते हैं।

सूत्र—मिथ्यात्वनपुंसकवेदनरकायुहुंडकसंस्थानासंप्रासासृपाटिकासंहननैकेन्द्रियस्थावरातापसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणद्वित्रिचतुरिन्द्रिय नरकगतिनरकगत्यानुपूर्व्योः स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलानंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभस्त्रीवेदतिर्यगायुदुर्भग दुःस्वरानादेय वज्रनाराचनाराचार्द्धनाराच-

कीलकसंहननन्यग्रोधस्वातिवामनकुब्जकसंस्थानाप्रशस्तविहायोगति तिर्यग्गतितिर्यग्गत्यानुपूर्व्योद्योतनीचैर्गोत्राणि सम्यक्त्वे बंधायोग्याः प्रकृतयः ॥४॥

अर्थः—सम्यक्त्व शब्दके द्वारा चौथे गुणस्थानका ग्रहण किया गया है। इस सूत्रमे उन इकतालीस प्रकृतियोंके नामोका उल्लेख किया गया है जो इस (चौथे) गुणस्थानमे आकर बंधके अयोग्य हो जाती है अर्थात् जिनका बंध नहीं होता है। प्रकृतियोंके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) मिथ्या प्रकृति (२) नपुंसक वेद प्रकृति (३) नरक आयु प्रकृति (४) हुंडक सस्थान प्रकृति (५) असंप्राप्तासुपाटिका संहनन प्रकृति (६) एकेन्द्रिय प्रकृति (७) स्थावर प्रकृति (८) आताप प्रकृति (९) शूक्ष्म प्रकृति (१०) पर्याप्त प्रकृति (११) साधारण प्रकृति (१२) द्वीन्द्रिय प्रकृति (१३) त्रीन्द्रिय प्रकृति (१४) चतुरिन्द्रिय प्रकृति (१५) नरकगति प्रकृति (१६) नरकगत्यानुपूर्वी प्रकृति (इन सोलहकी पहिले गुण स्थानमे बंध व्युच्छित्ति हो जाती है) (१७) स्त्यानगृद्धि प्रकृति (१८) निद्रानिद्रा प्रकृति (१९) प्रचलाप्रचला प्रकृति (२०) अनन्तानुबन्धी क्रोध प्रकृति (२१) अनन्तानुबन्धी मान प्रकृति (२२) अनन्तानुबन्धी माया प्रकृति (२३) अनन्तानुबन्धी लोभप्रकृति (२४) स्त्रीवेद प्रकृति (२५) तिर्यग् आयुप्रकृति (२६) दुर्भगप्रकृति (२७) दुःस्वर प्रकृति (२८) अनादेय प्रकृति (२९) वज्र नाराच संहनन प्रकृति (३०) नाराच संहनन (३१) अर्द्ध नाराच संहनन (३२) कीलक संहनन (३३) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान प्रकृति (३४) स्वाति संस्थान (३५) वामन संस्थान (३६) कुब्जक संस्थान (३७) अप्रशस्तविहायोगति प्रकृति (३८) तिर्यग गतिप्रकृति (३९) तिर्यग् गत्यानुपूर्वी प्रकृति (४०) उद्योत प्रकृति (४१) नीच गोत्र प्रकृति।

❀ बियालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकाय-द्वित्रिचतुपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता जीवसमासाः ॥१॥

अर्थः—इस सूत्रमें जीव राशि (संसारी) को ब्यालीस विभागोमें विभक्त कर रक्खा है। इन्हीं विभागोंको शास्त्रीय भाषा जीव समास कहते हैं। जीव समासोके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी निवृत्य पर्याप्त (३) बादर पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (५) सूक्ष्म पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त (६) सूक्ष्म पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (७) बादर अप् (जल) पर्याप्त (८) बादर अप् निवृत्यपर्याप्त (९) बादर अप् लब्ध्यपर्याप्त (१०) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (११) सूक्ष्म अप निवृत्य पर्याप्त (१२) सूक्ष्म—अप् लब्ध्यपर्याप्त (१३) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१४) बादर तेज निवृत्य पर्याप्त (१५) बादर तेज लब्ध्यपर्याप्त (१६) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१७) सूक्ष्म तेज निवृत्यपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेज लब्ध्यपर्याप्त (१९) बादर वायु पर्याप्त (२०) बादर वायु निवृत्यपर्याप्त (२१) बादर वायु लब्ध्यपर्याप्त (२२) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायु निवृत्यपर्याप्त (२४) सूक्ष्म वायु लब्ध्यपर्याप्त (२५) बादर वनस्पतिकाय पर्याप्त (२६) बादर वनस्पतिकाय निवृत्यपर्याप्त (२७) बादर वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (२८) सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त (२९) सूक्ष्म वनस्पति-काय निवृत्यपर्याप्त (३०) सूक्ष्म वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (३१) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (३२) द्वीन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३३) द्वीन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्त (३४) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३५) त्रीन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३६) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (३७) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३८) चतुरिन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३९) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (४०) पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त (४१) पञ्चेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (४२) पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त। ये बियालीस जीवसमास के भेद हैं।

सूत्र—सातासाते मनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकतैजस कार्माणशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गषट्संस्थानवज्रर्षभनाराचसहननस्पर्शरसगंध-वर्णागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगसुस्वरदुःस्वरादेय यशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरत्वान्युच्चैर्गोत्रं सयोगकेवलिन्युदययोग्याः प्रकृतयः ॥२॥

अर्थ.—सयोग केवलीके द्वारा तेरहवे गुणस्थानका बोध होता है। इसमें (गुणस्थानमे) उदय आने योग्य प्रकृतियोको इस सूत्रमे गिनाया गया है। प्रकृतियोकी सख्या ब्यालीस है, नाम अलग अलग उनके इस प्रकार हैं.—

(१) साता वेदनीय (२) असातावेदनीय (३) मनुष्य आयु (४) मनुष्य गति (५) पञ्चेन्द्रिय जाति (६) औदारिक शरीर (७) तैजस शरीर (८) कार्माण शरीर (९) औदारिक आङ्गोपाङ्ग (१०) समचतुरस्रसंस्थान (११) न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान (१२) स्वाति सस्थान (१३) वामनसंस्थान (१४) कुब्जक संस्थान (१५) हुंडकसंस्थान (१६) वज्रर्षभनाराच संहनन (१७) स्पर्श प्रकृति (१८) रस प्रकृति (१९) गंध प्रकृति (२०) वर्ण प्रकृति (२१) अगुरुलघु प्रकृति (२२) उपघातप्रकृति (२३) परघात प्रकृति (२४) उच्छ्वास प्रकृति (२५) प्रशस्त विहायोगति (२६) अप्रशस्त विहायोगति (२७) त्रस प्रकृति (२८) बादर प्रकृति (२९) पर्याप्त प्रकृति (३०) प्रत्येक प्रकृति (३१) स्थिरप्रकृति (३२) स्थिर प्रकृति (३३) शुभ प्रकृति (३४) अशुभप्रकृति (३५) सुभग प्रकृति (३६) सुस्वरप्रकृति (३७) दुःस्वर प्रकृति (३८) आदेय प्रकृति (३९) यशः कीर्ति प्रकृति (०४) निर्माणप्रकृति (४१) तीर्थंकरत्व प्रकृति (४२) उच्च गोत्र प्रकृति।

सूत्र—ॐ नमो जयविजयापराजितेमहालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् सुधाय स्वहा इति दुर्भिक्षादिभयवारणनिमित्तो द्वाचत्वारिंशदक्षरमत्रः ॥३॥

अर्थ—बियालीस अक्षरों वाला मंत्र इस सूत्रमे सूत्रित किया गया है। मंत्रके जापसे दुर्भिक्ष आदि संकटोसे उत्पन्न होने वाला भय हट जाता है, अर्थात् दुर्भिक्षके दूर करनेमे यह निमित्त होता है। मंत्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

ॐ न मो ज य वि ज या प रा जि ते म हा ल क्ष्मी अ मृ त वर् षि णी अ मृ त स्रा वि णी अ मृ तं भ व भ व व षट् सु धा य स्वा हा।

सूत्र—साव्यवहारिकपारमार्थिकप्रत्यक्ष स्मरणतिर्यगूर्द्ध्वतासामान्य-

गोचरप्रत्यभिज्ञानतर्काभासाः प्रतीत प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनस्मरण-तर्कनिराकृतानभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानाभासा उभयान्य-तरासिद्धविरुद्धनिर्णीतसंदिग्धविपक्षवृत्तिकहेत्वाभाससमुत्थानुमानाभासाः साध्यसाधनोभयधर्मविकलसंदिग्धसाध्यसाधनोभयधर्मोऽनन्वयाप्रदर्शिता-न्वयविपरीतान्वयासिद्धसाध्यसाधनोभयव्यतिरेकसंदिग्धसाध्यसाधनोभयव्य-तिरेकाव्यतिरेकाप्रदर्शितव्यतिरेक विपरीतव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमाना-भासाः पक्षसाध्यदृष्टान्तसाधनोपसंहारोपनयाभासनिगमनागमाभासाः प्रमाणाभासाः ।

अर्थ--इस सूत्रमे प्रमाणाभासोंको गिनाया गया है। ऐसे ज्ञान जिनमे प्रमाणका लक्षण तो घटित होता नहीं है किन्तु ऊपरी रंग ढंग दिखाव आदिसे जो प्रमाण जैसे जंचते हैं उनको प्रमाणाभास कहते हैं। प्रमाणाभासों, जिन्हें इस सूत्रमे संकलित किया गया है, की संख्या बियालीस है। उनके अलग अलग नाम यों हैः—

(१) सांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रमाणाभास (२) पारमार्थिकप्रत्यक्षप्रमाणाभास (३) स्मरणप्रमाणाभास (४) तिर्यक्सामान्यगोचरप्रत्यभिज्ञान-प्रमाणाभास (५) ऊर्द्ध्वतासामान्यगोचरप्रत्यभिज्ञानप्रमाणाभास (६) तर्क प्रमाणाभास (७) प्रतीत-प्रत्यक्षनिराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास (८) प्रतीत-अनुमाननिराकृत-अनभीप्सितसाध्य धर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास (९) प्रतीतआगमबाधित (निराकृत)- अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभास-जानुमानप्रमाणा भास (१०) प्रतीत-लोक निराकृत-अनभीप्सितसाध्य-धर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास (११) प्रतीत-स्ववचननिराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास (१२) प्रतीत- स्मरण निराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमान-प्रमाणाभास (१३) प्रतीत-तर्क निराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषण पक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास (१४) उभयासिद्धहेत्वाभाससमुत्थानानु-मानप्रमाणाभास (१५) अन्यतरासिद्धहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणा-

भास (१६) विरुद्धहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभास (१७) निर्णीतविपक्षवृत्तिकहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभास (१८) संदिग्धविपक्षवृत्तिकहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभास (१९) साध्यधर्मविकलदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२०) साधनधर्मविकलदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२१) उभयधर्मविकलदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२२) संदिग्धसाध्यधर्मदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२३) संदिग्धसाधनधर्मदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२४) संदिग्ध-उभयधर्मदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२५) अनन्वयदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२६) अप्रदर्शितान्वय-दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२७) विपरीतान्वयदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२८) असिद्धसाध्यव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (२९) असिद्धसाधनव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३०) उभयव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३१) संदिग्धसाध्यव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३२) संदिग्धसाधनव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३३) संदिग्ध-उभयव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३४) अव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३५) अप्रदर्शित-व्यतिरेक दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३६) विपरीत-व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३७) पक्षोपसंहारोपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३८) साध्योपसंहार-उपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (३९) दृष्टान्तोपसंहारउपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (४०) साधनोपसंहार-उपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (४१) निगमनाभासोत्थानुमानप्रमाणाभास (४२) आगमप्रमाणाभास।

प्रमाणाभासोंके स्वरूप जाननेके पहिले प्रमाणका लक्षण जान लेना चाहिये। सूत्रकारोंने "सम्यग् ज्ञानं प्रमाणम्" कह कर संशय, विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित समीचीन (वस्तुके स्वरूपकी ठीक २ जानकारी देनेवाले) ज्ञानको प्रमाण कहा है, तथा ऐसे ज्ञान, जिनमे

प्रमाणका लक्षण घटित न होते हुए मात्र ऊपरी रंग ढंग ही जिनका प्रमाण जैसा हो वे प्रमाणाभास कहलाते हैं आचार्य माणिक्यनन्दिने भी प्रमाणाभासका लक्षण इस प्रकार किया है " ततोऽन्यत्तदाभासम् " उससे (प्रमाणसे) अन्य स्वरूपवाले तदाभास या प्रमाणाभास हैं।

(१) सांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रमाणा भासः—सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके समान जो जचता हो किन्तु वस्तुतः वैसा नहीं हो उसे इस नाम वाला प्रमाणाभास कहते हैं। जो ज्ञान वास्तवमे प्रत्यक्ष नहीं हो, इन्द्रिय मनको सहायतासे पैदा होता हो किन्तु अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा स्पष्ट होनेसे लोकव्यवहारमे जो प्रत्यक्ष माना जाता हो उसे सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष कहते हैं। इससे विपरीत लक्षणवाला इसी नामका प्रमाणाभास है।

(२) पारमार्थिकप्रत्यक्षप्रमाणाभासः—इन्द्रियादिकोंकी सहायताके बिना जो ज्ञान केवल आत्मासे होता है उसे पारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं। इससे विपरीत लक्षणवाला इसी नामका प्रमाणाभास कहलाता है।

(३) स्मरणप्रमाणाभासः—जिस रूपमें जो वस्तु मालूम या ज्ञात की गई है उससे किसी भिन्न रूपमें ही स्मरण करना या उसमें सन्देह हो जाना स्मरणप्रमाणाभास कहलाता है।

(४) तिर्यक्सामान्यगोचर प्रत्यभिज्ञानप्रमाणाभासः—प्रत्यक्ष और स्मरण ज्ञानको सहायतासे उत्पन्न होनेवाला सादृश्य धर्म विशिष्ट जो ज्ञान होता है उसे तिर्यक्सामान्यगोचर प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इससेविपरीत लक्षणवाला अर्थात् सदृशको एक समझना रूप ज्ञान, इसी नामका प्रमाणाभास होता है।

(५) ऊर्द्ध्वतासामान्यगोचरप्रत्यभिज्ञानप्रमाणाभासः—दर्शन (प्रत्यक्ष ज्ञान) और स्मरण ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला जो एकत्वधर्मविशिष्टज्ञान होता है उसे ऊर्द्ध्वतासामान्यगोचरप्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इससे विपरीत लक्षण वाला अर्थात् एकको सदृश समझनारूप ज्ञान इसी नामका (ऊर्ध्वतासामान्य गोचर प्रत्यभिज्ञान) प्रमाणाभास है।

(६) तर्कप्रमाणाभासः—व्याप्ति या अविनाभावसंबंधके ज्ञानको

तर्क कहते हैं। और इससे विपरीतअसंबंधमे सम्बन्धकी कल्पना कर लेना तर्कप्रमाणाभास कहलाता है। जैसे किसी गड्ढेमे कीचड़ देख कर " जहां जहां गड्ढा है वहां वहां कीचड़ है " आदि अभी तक प्रत्यक्ष प्रमाण, स्मरण प्रमाण, प्रत्यभिज्ञान प्रमाण और तर्क प्रमाण संबंधी प्रमाणाभासोका स्वरूप लिखा जा चुका है। आगे सातवे भेदसे लेकर इकतालीसवें भेद तकके प्रमाणाभास अनुमान प्रमाण संबन्धी हैं। अनुमानके प्रमुख दो अंग हैं एक पक्ष, दूसरा हेतु। पक्षाभाससे उत्पन्न होनेवाले प्रमाणाभासोको अब लिखा जा रहा है। इसके सात भेद हैं—

(७) प्रतीत-प्रत्यक्षनिराकृत-अनभीप्सित साध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास'—साध्यको इष्ट अबाधित और असिद्ध होना चाहिये। यदि वह अनिष्ट, बाधित और सिद्ध हो तो पक्षाभास कहलायगा। सिद्ध (प्रतीत), प्रत्यक्षकेद्वारा बाधित तथा अनिष्ट (अनभीप्सित) साध्यधर्मविशेषणरूप पक्षाभाससे उत्पन्न होनेवाला अनुमान ज्ञानएतन्नामक प्रमाणाभास कहलाता है।

(८) प्रतीत-अनुमानबाधित (निराकृत)-अनभीप्सित साध्यधर्म विशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास'—सिद्ध, अनुमानके द्वारा बाधित और अनिष्ट साध्यधर्मविशेषणरूप पक्षाभाससे पैदा होनेवाला अनुमानज्ञान निर्दिष्ट नामवाला प्रमाणाभास कहलाता है।

(९) प्रतीत-आगमबाधित (निराकृत)-अनभीप्सित साध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणा भासः—जो ज्ञान या सिद्ध हो, आगमके द्वारा जिसमे बाधा आ रही हो तथा इष्ट नहीं हो ऐसे साध्य धर्मविशेषणवाले पक्षाभाससे उत्पन्न होनेवाले अनुमान ज्ञानको एतन्नामक प्रमाणाभास कहते हैं।

(१०) प्रतीत-लोकनिराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभासजानुमानप्रमाणाभास —जो पहिलेसे ही मालूम या सिद्ध हो, लोकके द्वारा बाधित हो तथा जो इष्ट भी नहीं हो ऐसे साध्यधर्मविशेषण वाले पक्षाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको यह नाम दिया जाता है।

(११) प्रतीत-स्ववचननिराकृत-अनभीप्सित साध्यधर्मविशेषणप-क्षाभासजानुमानप्रमाणाभासः—जो ज्ञात हो, स्वयके वचनोंके द्वारा ही जिसमें विरोध आ रहा हो और जो इष्ट भी नहीं हो ऐसे साध्यधर्म-विशेषण वाले पक्षाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमानज्ञानको प्रमाणा-भासकी इस कोटिमे रक्खा जाता है।

(१२) प्रतीत-स्मरण निराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षा-भासजानुमानप्रमाणाभासः—जो सिद्ध करने योग्य न होते हुए पहिलेसे ही सिद्ध और प्रतीत हो, जिसमें स्मरण प्रमाण द्वारा बाधा आ रही हो उससे बाधित हो और जो इष्ट भी नही हो ऐसे साध्यधर्मविशेषण वाले पक्षाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको एतत् नामक प्रमाणा-भास कहते हैं।

(१३) प्रतीत-तर्कनिराकृत-अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणपक्षाभा-सजानुमानप्रमाणाभासः—जो सिद्ध हो, तर्क प्रमाण द्वारा बाधित हो या उसके द्वारा खंडित हो और जो इष्ट भी नहीं हो ऐसे साध्य धर्म विशेषण वाले पक्षाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणा-भास की इस कोटि में रक्खा जाता है। ये सात पक्षाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान संबंधी प्रमाणाभास हैं। अनुमानका दूसरा अंग है हेतु। यही, हेतु लक्षणसे रहित होते हुए, जब हेतु जैसे प्रतीत होते हैं तो हेत्वाभास कहते हैं। इन हेत्वाभासोसे उत्पन्न होने वाले पांच अनुमानप्रमाणाभास होते हैं उनके स्वरूप इस प्रकारसे हैं।

(१४) उभयासिद्धहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभासः—जो हेतु सिद्ध न हो उसे असिद्धहेत्वाभास कहते हैं। उसके दो भेदोंमें से एक भेदका नाम उभयासिद्ध या स्वरूपासिद्ध है। इस उभयासिद्ध नामक हेत्वाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको एतन्नामक प्रमाणाभास कहते हैं।

(१५) अन्यतरासिद्धहेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभासः—अन्य-तर-असिद्ध नामक हेत्वाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको

प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत रखते है।

(१६) विरुद्ध हेत्वाभाससमुत्थानुमानप्रमाणाभास —जिस हेतुकी व्याप्ति या अविनाभा व सबंध साध्यसे विरुद्धके साथ निश्चित हो उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। ऐसे हेत्वाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदके अतर्गत रक्खा जाता है।

(१७) निर्णीतविपक्षवृत्तिकहेत्वाभाससमुत्थ-अनुमानप्रमाणाभास - निर्णीत विपक्षवृत्तिक हेत्वाभासका ही दूसरा नाम निश्चितवृति अनैकान्तिक हेत्वाभास है। पक्ष व सपक्षमें रहते हुए जिस हेतुकी वृत्ति (पाया जाना) विपक्षमे भी निश्चित होती है उसे निश्चितवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। इस नाम वाले हेत्वाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस नाम वाले भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(१८) संदिग्धविपक्षवृत्तिक हेत्वाभाससमुत्थअनुमान प्रमाणाभास —जिस हेतुकी वृत्ति पक्ष सपक्षमे होती हुई भी, उसकी विपक्ष व्यावृत्तिके विषयमे शंका बनी रहे उसका निर्णय न हो तो ऐसे हेतुको शंकितवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। इस हेत्वाभाससे पैदा होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस नाम वाले भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है। हेत्वाभाससे उत्पन्न होने वाले पाच प्रमाणाभास हो चुके। अब दृष्टान्ताभासोसे उत्पन्न होने वाले अनुमान प्रमाणाभासोको लिखा जा रहा है। उन्नीसवे भेदसे लेकर छत्तीसवे भेद तक के प्रमाणाभासके अठारह भेद दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान संबंधी है अर्थात् अनुमानप्रमाणाभास है।

(१९) साध्यधर्मविकलदृष्टान्ताभासोत्थानानुमान प्रमाणाभास - दृष्टान्तमें साध्य और साधनकासद्भाव या असद्भाव दिखलाया जाता है। इनमेंसे अगर अन्वय दृष्टान्तमे किसी एकका अभाव हो या व्यतिरेकमे किसी एकका सद्भाव हो अथवा अन्वय व्याप्तिके साथ व्यतिरेक दृष्टान्त या व्यतिरेक व्याप्तिके साथ अन्वय दृष्टान्त

दिखलाया जाय तो वह दृष्टान्ताभास कहलाता है। ऐसे दृष्टान्ताभाससे जिनमें साध्य धर्मका अभाव होता है, उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको एतत् नामक (साध्यधर्म विकलदृष्टान्ताभासोत्थानुमान) प्रमाणाभास कहते हैं।

(२०) साधनधर्मविकल दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमें साधन धर्मका अभाव हो ऐसे दृष्टान्ताभासोसे उत्पन्न हुआ अनुमान ज्ञान, प्रमाणाभासके इस नाम वाले भेदके अंतर्गत आता है।

(२१) उभयधर्म विकल दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमें साध्य और साधन दोनोकी ही विकलता पाई जाती हो ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमानको उपरि निर्दिष्ट नाम वाला प्रमाणाभास कहते हैं।

(२२) संदिग्ध साध्य धर्मदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमे साध्य धर्मके विषयमे सन्देह पाया जाता हो ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासका यह नाम प्रदान किया जाता है।

(२३) सदिग्ध साधनधर्मदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमे साधन धर्मके विषयमे संदेह पाया जाता हो ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(२४) संदिग्ध उभय (साध्य साधन) दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमे साध्य और साधन दोनोंके विषयमे सन्देह पाया जाता हो ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(२५) अनन्वय दृष्टान्ताभासोत्थानुमान प्रमाणाभासः—जिसमे अन्वय व्यक्ति न दिखाई जावे ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(२६) अप्रदर्शितान्वय दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—

ऐसे दृष्टान्ताभाससे, जिसमे अन्वय व्याप्ति प्रदर्शित या दिखलाई न गई हो, उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको यह नाम दिया जाता है।

(२७) विपरीतान्वयदृष्टान्ताभासोत्थानुमान प्रमाणाभास:—ऐसे दृष्टान्ताभाससे, जिसमे अन्वय व्याप्तिको उलटे ही रूपमें अर्थात् साधनके सद्भावमे साध्यका सद्भाव न बतलाकर साध्यके सद्भाव (मौजूदगी) में साधनका सद्भाव बतलाना, दिखलाया गया हो, उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(२८) असिद्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास:—जिसका साध्य ही सिद्ध नहीं है ऐसी व्यतिरेक व्याप्तिसे उत्पन्न होने वाले दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न हुआ अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासकी इस कोटिमे आता है।

(२६) असिद्ध साधन व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास—जिसका साधन ही सिद्ध नहीं है ऐसी व्यतिरेक व्याप्तिसे उत्पन्न हुआ जो दृष्टान्ताभास, उससे उत्पन्न हुआ अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदके अतर्गत आता है।

(३०) असिद्ध उभय (साध्यसाधन) व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास—ऐसी व्यतिरेक व्याप्तिसे, जिसमे साध्य और साधन दोनो ही असिद्ध हों, उत्पन्न होने वाला कोई दृष्टान्ताभासहो तथा उससे पैदा हुआ जो अनुमान ज्ञान होता है वह प्रमाणाभासकी उस कोटिमे आता है।

(३१) संदिग्ध साध्य व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास:—जिस व्यतिरेक व्याप्तिके साध्यके विषयमे सन्देह बना रहे ऐसी व्याप्तिसे उत्पन्न होने वाले दृष्टान्ताभाससे पैदा हुआ अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासकी इस कोटिमे आता है।

(३२) संदिग्धसाधन-व्यतिरेक दृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभास:—जिस व्याप्तिके साधनके विषयमे संदेह रहे ऐसी व्यतिरेक

व्याप्तिसे पैदा होने वाले दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न हुआ अनुमानज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदके अंतर्गत शामिल किया जाता है।

(३३) संदिग्ध-उभय (साध्य-साधन)-व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्था-नुमानप्रमाणाभासः—जिस व्यतिरेक व्याप्ति संबंधी साध्य और साधन के विषयमें संदेह बना रहे उस व्याप्तिसे उत्पन्न होने वाले दृष्टान्ताभास से पैदा हुआ अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदमें शामिल किया जाता है।

(३४) अव्यतिरेक दृष्टान्ताभासोत्थानुमान प्रमाणाभासः—ऐसे दृष्टान्ताभाससे, जिसमें व्यतिरेक व्याप्ति ही नहीं पाई जाती हो, पैदा होने वाला अनुमानज्ञान प्रमाणाभासकी इस कोटिमें रक्खा जाता है।

(३५) अप्रदर्शितव्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—ऐसे दृष्टान्ताभाससे, जिसमें व्यतिरेक व्याप्तिकी संभावना रहते हुए भी जिसे प्रदर्शित न किया गया हो, उत्पन्न होने वाला अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदमें शामिल किया जाता है।

(३६) विपरीत व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—जिसमें व्यतिरेक व्याप्तिको उल्टा करके रक्खा गया हो ऐसे दृष्टान्ताभाससे उत्पन्न होने वाला जो अनुमानज्ञान होता है, वह प्रमाणाभासके इस भेदके अन्तर्गत आता है। ये दृष्टान्ताभास जन्य अठारह अनुमान प्रमाणाभास हो चुके।

अब उपनय, जो कि अनुमानका ही एक अंग है, संबंधी चार प्रमाणाभास बताये जा रहे हैं।

(३७) पक्षोपसंहार उपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—पक्ष और साधनमें दृष्टान्तकी सदृशता दिखलानेको उपनय कहते हैं। मात्र पक्षमें ही दृष्टान्तकी सदृशता दिखाना, साधनमें नहीं, पक्षोपसहार उपनयाभास कहलाता है उससे उत्पन्न हुआ अनुमान ज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदमें शामिल किया जाता है।

(३८) साध्योपसंहार-उपनयाभासोत्थानुमान प्रमाणाभासः—मात्र

साध्यकी सदृशता ही बतलाकर उपसंहार करना साध्योपसंहार उपनयाभास है। उससे उत्पन्न होने वाला अनुमानज्ञान प्रमाणाभासकी इस कोटिके अंतर्गत रक्खा जाता है।

(३६) दृष्टान्तोपसंहार-उपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—पक्ष और साधनकी सदृशताको न बतलाते हुए मात्र दृष्टान्तकी सदृशताके बल पर उपसंहरण करना रूप उपनयाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमान ज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदमें शामिल किया जाता है।

(४०) साधनोपसंहार-उपनयाभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—मात्र साधनकी सदृशताके बलपर उपसंहरण करना रूप उपनयाभाससे उत्पन्न होने वाले अनुमानज्ञानको प्रमाणाभासके इस भेदमें रक्खा जाता है।

(४१) निगमनाभासोत्थानुमानप्रमाणाभासः—अनुमानके पांच अंग होते हैं। उनमेंसे अंतिम अंग या अवयवका नाम निगमन है। अनुमानके प्रयोगमे किसीका साधन करते हुए व साधनका फल कहते हुए प्रतिज्ञाको दुहराना निगमन कहलाता है। निगमनके स्वरूपसे रहित किन्तु ऊपरसे निगमन जैसा दिखाई देने वाला जो निगमनाभास है उससे उत्पन्न होने वाला अनुमानज्ञान प्रमाणाभासके इस भेदके अन्तर्गत रक्खा जाता है।

(४२) आगमप्रमाणाभासः—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग देवके द्वारा प्रणीत आगम (शास्त्र या जिनवाणी) से जो वस्तु स्वरूपका समीचीन ज्ञानका होना है उसे आगम कहते हैं। जो रागी हो, बाह्याडम्बरोंसे युक्त हो, ऐसे असर्वज्ञ देवाभासोंके द्वारा रचित हिंसासे युक्त ग्रंथोंके आधार पर असमीचीन ज्ञानका होना आगम प्रमाणाभास है।

इस प्रकार जैन न्याय या जैन दर्शनमें माने गये मुख्य दो प्रमाणों और उनके भेदोंके आधार पर बनने वाले छह प्रमाणो (प्रत्यक्ष प्रमाण, स्मृति परोक्ष प्रमाण, प्रत्यभिज्ञान परोक्ष प्रमाण, तर्क परोक्ष प्रमाण, अनुमान परोक्ष प्रमाण, आगम परोक्ष प्रमाण) से विपरीत अप्रमाणों-

भूत किन्तु प्रमाण जैसे जंचने वाले बियालीस प्रमाणाभासोंका संक्षेपमें स्वरूप विवेचित किया जा चुका है।

❀ तेतालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—अशुभनामकर्माश्रवसमत्रिशद्धेतुविपरीता धार्मिकदर्शनसंभ्रमसद्भावानयनसंसरणभीरुताप्रमादवर्जनासमेदचरिताजातीयाः शुभनामकर्माश्रवहेतवः ॥१॥

अर्थः—जब तक प्राणी संसारमें है तब तक शरीरका संबंध सुनिश्चित है। प्राणी नाना पर्यायोमे जन्म लेता फिरता है और उन उन पर्यायोंमे पाये जाने वाले नाना सुन्दर असुन्दर शरीरोको अपने कर्मके अनुसार धारण करता फिरता है। इस शरीरकी सुन्दरता, सुभगता आदिमें शुभ नाम कारण हुआ करता है। इसी शुभ नाम कर्मके आश्रवोंके कारणोको इस सूत्रमें गिनाया गया है। कारणोकी सख्या तेतालीस है, उनके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) सम्यग्दर्शन (२) अपिशुनता (३) सत् मान करण (४) सत् तुला करण (५) अप्रतिरूपण (६) स्थिरचित्त स्वभावता (७) सरल सत् साक्षित्व (८) आङ्गोपाङ्ग अच्यावन (९) वर्णगंधरसस्पर्श-अनन्यथाकरण (१०) यंत्र पंजर अकरण (११) द्रव्यान्तरविषय असंबंध (१२) अनिकृतिभूयिष्ठता (१३) आत्मनिन्दा (१४) परप्रशंसा (१५) सत्य वचनत्व (१६) पर द्रव्य त्याग या अग्रहण (१७) अल्प-आरम्भ (१८) अल्प परिग्रह (१९) उज्वल वेष रूप अमद (२०) मृदु सत्यालाप (२१) अनाक्रोश (२२) अमौखर्य (२३) सौभाग्य-अनुपयोग (२४) वशीकरण अप्रयोग (२५) पर कुतूहल अनुत्पादन (२६) अलंकार अनादर (२७) चैत्यप्रदेशगंधमाल्यधूपादिअमोषण (२८) अविडम्बनोपहास (२९) इष्टका पाक अप्रयोग (३०) दवाग्नि अप्रयोग या दवाग्नि प्रयोग परित्याग (३१) प्रतिमा-आयतन निर्माण (३२) प्रतिश्रयाराम-उद्यानादि निर्माण (३३) अतीव्र क्रोध (३४) अतीव्रमान (३५) अतीव्रमाया (३६) अतीव्रलोभ (३७) पुण्य कर्मोप जीवित्व (३८) धार्मिकदर्शन

(३९) धार्मिक संभ्रम (४०) सद्भावानयन (४१) संसरणभीरुता (४२) प्रसादवर्जन (४३) असंभदेचरितज्ञाति नामक शुभनामकर्माश्रव हेतु।

(१) सम्यग्दर्शन नामक हेतुः—दर्शनका अर्थ अवलोकन है किन्तु प्रकरणके अनुसार वह अर्थ न लेते हुए यहां श्रद्धान रूप अर्थ ग्रहण करना चाहिये। केवलज्ञान सम्पन्न वीतरागी देव द्वारा जो जीवादिक द्रव्योंका स्वरूप विवेचित किया गया है। उसमे विना किसी शंकाके स्थिर मनसे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। प्रशम, सवेग, अनुकम्पा आदि रूप भावनाएं सम्यग्दर्शन सम्पन्न सत्पुरुषमे पाई जाती है। ऐसी भावनाओंसे व्यक्ति शुभ नाम कर्मका आश्रव करता है।

(२) अपिशुनता नामक हेतुः—पिशुनताका अर्थ चुगलखोरी है। यहांकी वात वहां और वहाँकी वात यहाँ नमक मिर्ची लगाकर कहना, परस्परमे वैमनस्य पैदा करा देना भी पिशुनतामे शामिल है। इसका परित्यागकर परस्परमे मैत्री भाव रखना, दूसरेकी समृद्धि देख हर्षित होना, आदि अपिशुनता कहलाती है। यह भी शुभ नाम कर्मके लिये कारणीभूत है।

(३) सत् मान करण नाम हेतुः—दैनिक व्यवहार या व्यापारमे काम आने वाले फुट, गज, गिरह आदि मापनेके साधनोको छोटा या बड़ा न रखते हुए उनका राज्य निर्दिष्ट या राज्य सम्मत प्रमाण रखना सत् मान करण नामक हेतु है।

(४) सत् तुला करण नामक हेतु—जिनसे तोला जाता है ऐसे मन सेर छटॉक आदि वाटोको, तराजूको या ऐसे ही अन्य साधनोंको छोछा वड़ा न रखते हुए बिलकुल राज्यसम्मत प्रमाणके अनुसार बराबर रखना सत् तुला करण कहलाता है।

(५) अप्रतिरूपण हेतु—बहुमूल्य वस्तुके साथ अल्प मूल्य वाली तत्सदृश वस्तुको रख बहुमूल्य वस्तुके रूपमे देना, नकलीको असली वतलाकर ग्राहकको देना प्रतिरूपण कहलाता है। इसका सर्वथा त्याग

कर देना अप्रतिरूपण नामक हेतु है।

(६) स्थिरचित्तस्वभावता नामक हेतुः—अपने चित्तमें से चंचलता को हटाकर, किसी भी काममे (सत्कर्म) दृढ़ता और पूरी मुस्तैदीके साथ लग जाना स्थिरचित्तस्वभ वता है। शुभ नाम कर्मकी प्राप्तिमें यह भी एक हेतु है।

(७) सरल सत् साक्षित्वः—दूसरे प्राणीके प्राणोंका घात न हो जाय इस दृष्टिको रखते हुए प्रशस्त वातको जैसा उसे देखा हो वैसा विना किसी छल कपटके साथ, गवाहीके रूपमें, आवश्यकता पड़ने पर, कहना सरल सत् साक्षित्व नामक हेतु है।

(८) आङ्गोपाङ्गअव्यावन नामकः—ऐसे कामोंके करनेसे अपना हाथ खींच लेना, उनका सर्वथा त्याग कर देना जिनमे प्राणियोंके अंगों अथवा उपागोंको तोड़ना मरोड़ना पड़ता हो। ऐसे कामोंसे दूसरे प्राणी को दुःख तो होता ही है किन्तु साथमे आत्म परिणामोमें भी संक्लेश होता है।

(९) वर्णगंधरसस्पर्श अनन्यथाकरणः—जो वस्तु स्वाभाविक रूप से जिस वर्ण गंध रस स्पर्शादिसे संयुक्त उसको उसी रूपमे रखना, उसमें विकृति पैदा नहीं करना, जिससे कि अल्प मूल्य वाली होती हुई धोखेसे वहुमूल्यमे वेचा जा सके। वहुतसे निकृष्ट व्यापारी लाल रंग गिंडोलियो (ज्वारके डंडेकी-ठंठरेकी पोर) को वारीक काटकर थोड़ासा केसरका रंग देकरकेशरके रूपमे वेचते हैं यह एक घृणित कर्म है। ऐसे कामोका त्याग कर देना वर्ण रस गंध स्पर्श अनन्यथा करण कहलाता है। इससे शुभ नाम कर्मकी प्राप्ति होती है।

(१०) यंत्र पजर अकरणः—प्राण विघातक, स्वतंत्रताका अपहरण करने वाले यंत्रों, पीजड़ों आदि नहीं वनाना, उनके प्रचारको रोकना आदि कर्म यत्र पंजर अकरणके अंतर्गत आते हैं।

(११) द्रव्यान्तरविषय-असम्बन्धः—एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका विषय संवंध करना अर्थात् छल या मायासे भिन्न द्रव्यका भिन्न द्रव्यके

साथ स्वरूप विपर्यास करना द्रव्यान्तर विषय सघंध कहलाता है। इसका त्याग कर देना, एक अच्छी बात है और उससे शुभ नाम कर्म की प्राप्तिमे सहायता मिलती है।

(१२) अनिकृतिभूयिष्ठता नामक हेतुः—निकृति ठगौरी या छल कपटको कहते हैं। इसका न होना ही अनिकृति है। अर्थात् अपने मन वचन कायकी क्रियाओमे कुटिलताका त्याग कर सरल परिणामिताकी वृद्धि होना अनिकृति भूयिष्ठता है।

(१३) आत्मनिन्दा नामक हेतु—स्वयंमे अनेकों ही अच्छी बातें पाई जाती हैं किन्तु उनका किसी भा प्रकारसे गर्व न करते हुए और अपनेमें पाई जाने वाली कमजोरियोको सोचते हुए स्वयंकी निन्दा करना आत्मनिन्दा नामक हेतु कहलाता है।

(१४) परप्रशंसा नामक हेतु—दूसरे व्यक्तिमे यद्यपि अपनेसे थोड़े गुण पाये जाते हैं अथवा जो भी गुण पाये जाते हैं उनका समुचित विकास नहीं है फिर भी उनकी प्रशंसा करना। दूसरेमे पाई जाते वाली अच्छी बातोको अपने जीवनमे उतारना पर प्रशसा नामक हेतु कहलाता है।

(१५) सत्य वचनत्व नामक हेतु—प्राणिहित कारक वचनोंको बोलना सत्य वचनत्व कहलाता है।

(१६) पर द्रव्य त्याग या अग्रहण नामक हेतु—जिस वस्तु पर अपना अधिकार या स्वामित्व नहीं है उसे उसके स्वामीकी आज्ञाके बिना नहीं लेना परद्रव्य अग्रहण कहलाता है। इससे शुभनाम कर्मकी प्राप्ति होती है।

(१७) अल्प आरम्भ नामक हेतुः—आरम्भके द्वारा हिसा परिपूर्ण क्रियाओंका ग्रहण होता है। यद्यपि गृहस्थ होते हुए आरम्भ करना आवश्यक है फिर भी जहां तक हो सके आरम्भोंकी सख्या कम करना और जो भी आरम्भ करना पड़े उसमे कमसे कम, त्रसहिंसाका परित्याग कर, स्थावर हिसा हो ऐसा ध्यान रखना अल्प आरम्भ कहलाता है।

(१८) अल्पपरिग्रह नामक हेतु:—"यह वस्तु मेरी है, मैं इसका स्वामी हू" इस प्रकार अपने पनका जो अभिमान होना है उसे परिग्रह कहते है। इस परिग्रह (अंतरंग और बाह्य दोनो प्रकारके ही परिग्रह) का त्याग करना, और नहीं तो कमसे कम उससे ममकार बुद्धि रखना अल्प परिग्रहत्व कहलाता है। शुभनाम कर्मकी प्राप्तिमे यह भी एक कारण है।

(१६) उज्वलवेष रूप अमद:—स्वयंका सुन्दर रूप है, वेशभूषा भी उज्वल और आकर्षक है फिर भी उसका गर्व नहीं करना उज्वल-वेशरूप असद है।

(२०) मृदु सत्यालाप नामक हेतु:—जब भी किसीके साथ बात-चीत करनेका मौका आये तब उसके प्रति प्रेम भाव रखते हुए कोमलता के साथ बातचीत करना, उसमे दुराव छल कपट आदिको न रखना तथा समीचीन वार्ता करना मृदु सत्यालाप नामक हेतु हैं। इससे सुन्दर शरीर प्राप्तिमे सहायता प्राप्त होती है।

(२१) अनाक्रोश नामक हेतु—भयोत्पादक जोरका प्रलाप करना आक्रोश है और उसकी ओरसे अपने आपको विमुख कर सरलताके साथ काम करना अनाक्रोश कहलाता है। यह भी शुभनाम कर्मके लिये कारणीभूत है।

(२२) अमौखर्य नामक हेतु:—वचनोंको नियंत्रणमें रखते हुए जितनेसे अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाता है उतने ही वचन बोलना। व्यर्थमे ही जरूरतसे ज्यादा नहीं बोलना बकवास नहीं करना और न व्यर्थमे ही गाल बजा थूक उड़ाना अमौखर्य नामक हेतु कहलाता है।

(२३) सौभाग्य-अनुपयोग नामक हेतु:—रात दिन अपने आपको छैल छबीले और विलासितामे न फंसाये रखना सौभाग्य अनुपयोग है। सौभाग्योपयोगसे इन्द्रिय विषय लम्पटता, कामुकतादिकी वृद्धि होती है इसके विपरीत आत्म हित, शांति और विरागताके परिणामोंकी वृद्धि इससे होती है जिससे कि शुभनामकर्मका आश्रव होता है।

(२४) वशीकरण अप्रयोग नाम हेतु—ऐसे प्रयोगोको करनेके लिये प्रयत्नशील नही होना जिससे दूसरोकी स्वतन्त्रताका अपहरण होता है, उनको परवशतामे पडना पड़ता हो। वशीकरणके हेतु किये जाने वाले प्रयत्नोसे विमुख रहना वशीकरण-अप्रयोगता कहलाती है।

(२५) पर कुतूहल अनुत्पादन नामक हेतु—जिनसे दूसरोको कुतूहल या आश्चर्य पैदा हो ऐसे कार्योंको नहीं करना, यदि कोई कर रहा हो तो उसमे सहयोग नहीं देना और न दूसरोसे करना, पर कुतूहल अनुत्पादन कहलाता है।

(२६) अलंकार-अनादर नामक हेतु—अलंकार प्रियता जहां गृह कलह और अशान्तिका कारण है वहीं उससे अनेको ही बुरी वाते प्राणीमे आ जाती हैं और परिणाम यह होता है कि प्राणीको अशुभ फल भोगना पड़ता है। इससे विपरीत अलंकारोसे उदासीन होने पर न चक चक, न ईर्ष्या, न द्वेष और न लड़ाई झगड़ा ही होता है। शान्ति रहती है परिणामोमे। इसके फल स्वरूप प्राणीशुभनाम कर्मका आश्रव करता है।

(२७) चैत्यप्रदेशगंध्यमाल्यधूपादि-अमोषण नामक हेतुः—चैत्यालयोसे, जिनमे नानाप्रकार सुगंधित पदार्थ, केशर चंदनादि, माला, दशागीधूप आदि वस्तुए पाई जाती हैं उनमेसे, द्रव्योका अपहरण नहीं करना, उनको चोरीसे नहीं ले जाना आदि चैत्यगध्यमाल्यधूपादि अमोषण कहलाता है।

(२८) अविडम्बनोपहास नामक हेतु—एक तो उपहास ही नहीं करना और करना ही पड़े तो किसी की विडम्बना या मजाक उड़ाते हुए करना अविडम्बनोपहास कहलाता है। इससे भी शुभनाम की प्राप्ति होती है।

(२९) इष्टकापाक-अप्रयोग नामक हेतुः—जिसमे बहुत ज्यादा जीवघात, आरम्भ और परिग्रह करना पड़ता है ऐसे ईंटोके भट्टे आदि को नहीं लगाना, उनको पकाने के लिये प्रयोग नहीं करना इष्टकापाक

अप्रयोग कहलाता है।

(३०) दवाग्नि-अप्रयोग नामक हेतुः—कोयले आदिके व्यवसायके लिये जंगल आदिमे आग लगाना दवाग्नि प्रयोग है। इससे अनेकों ही प्राणियोंको विकलता हो जाती है। ऐसे कार्योंको नहीं करना, दवाग्नि अप्रयोग नामक हेतु है।

(३१) प्रतिमा आयतन निर्माण नाम हेतुः—जिनमे पूजनीय प्रतिमाएं स्थापित की जा सके ऐसे मन्दिरोंको बनवाना, शुभनामकर्मके आश्रवमे सहायक होता है।

(३२) प्रतिश्रयारामोद्यान निर्माण नामक हेतुः—प्राकृतिक प्रकोप से पीडित प्राणी जिसकी छायामे आकर अपना ताप, संताप क्लेशादि भुला सके ऐसे आनन्ददायक बाग बगीचो उपवनो आदिका निर्माण कराना, सुन्दर शरीर प्राप्तिमे सहायक होता है।

(३३) अतीव्रक्रोध नामक हेतुः—जब तक प्राणी संसारमे है उसके कषायोका पाया जाना स्वाभाविक है, हां! उसमे तरतमता कृत अन्तर अवश्य पाया जाता है। जब प्राणी तीव्र गुस्सा नही करता और प्रायः शान्त रहता है तो उससे शुभनाम कर्मकी प्राप्ति होती है।

(३४) अतीव्र मान नामक हेतुः—घमण्डको न करते हुए अपने आपको विनयशील बनाये रखनेसे भी प्राणी शुभनाम कर्म जन्य सुन्दर शरीरको प्राप्त करता है।

(३५) अतीव्रमाया नामक हेतुः—मन वचन और कायकी प्रवृत्तियोंमे कुटिलता न लाते हुए सीधा सरल व्यवहार रखना अतीव्रमायिक या अमायिक व्यवहार कहलाता है। शुभनाम कर्मके आश्रवके कारणो मे से यह भी एक है।

(३६) अतीव्रलोभ नामक हेतुः—ऊंचे दर्जेके लोभका न पाया जाना। धन सम्पत्ति आदिसे ममताको कम करना अतीव्रलोभ कहलाता है।

(३७) पुण्यकर्मोपजीवित्व नामक हेतुः—अपने व अपने आश्रित

जनोंकी आजीविकाके लिये ऐसे कर्मोंका आश्रय लेना जिसमे हिंसा या पाप न लगता हो पापकर्मोपजीविकात्याग या पुण्यकर्मोपजीवित्व कहलाता है।

(३८) धार्मिक दर्शन नामक हेतु:—धर्माचरणसे युक्त व्यक्तियोंको देख हृदयमे हर्षित होना, उनके दर्शनोके लिये जाना आदि क्रिया धार्मिक दर्शन नामक हेतुके अंतर्गत आती है।

(३९) धार्मिक संभ्रम नामक हेतु—जो धर्मात्मा हैं सदाचारी है, उनके प्रति आदर भाव रखना, उनकी आवभगतके लिये बड़ा उत्साह दिखलाना धार्मिक संभ्रम कहलाता है।

(४०) धार्मिकसद्भाव-आनयन नामक हेतु.—धर्म परायण पुरुषो के प्रति प्रशस्त भावोको रखना उनके प्रति सद्भावनाओंको करना धार्मिक सद्भाव आनयन नामक हेतु कहलाता है।

(४१) संसरणभीरुता नामक हेतु:—संसारमे ममत्व न रखते हुए उससे सदा ही भयभीत बने रहना, संसरणभीरुता कहलाती है।

(४२) प्रमादवर्जन नामक हेतु.—दैनिक धार्मिक क्रियाओंके प्रति आलस्य, उदासीनता आदिका परित्याग करना। सतत सावधानीके साथ आत्महित साधनाओमे लगे रहना प्रमाद वर्जन कहलाता है। प्रमाद वर्जनसे प्राणी न उद्धत होता है और न मदमत्त। शुभभावनाओ का संचार होता है। इसीलिये इसे शुभनाम कर्मके आश्रव हेतुओमे गर्भित किये हैं।

(४३) असभेदचरित नामक हेतु:—किसी प्रकारकी शिथिलता या अतिचार संबंधी, चारित्रमे भेद (विघात) न करते हुए चारित्रको अभिन्न रूपसे पालन करना असभेदचरित कहलाता है। इससे तथा ऐसे ही अन्य कारणोसे शुभनाम कर्मका आश्रव होता है।

सूत्र—पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायहिंसाविरतयःस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोविषयाविरतयःअप्रत्याख्याख्यानप्रत्याख्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदाः सत्या-

सत्योभयानुभयमनोयोगसत्यासत्योभयानुभयवचनयोगौदारिकवैक्रियककाययो-गा मिश्रे आश्रवाः ॥२॥

अर्थः—मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) नामके तीसरे गुण स्थानमें जिन कारणोसे आश्रव होता है उन कारणोंको एक सूत्रमे सूत्रित कर यहाँ रक्खा गया। आश्रव द्वारोकी संख्या तेतालीस है। नाम उनके अलग अलग इस प्रकारसे हैं:—

(१) पृथ्वी काय-हिंसा-अविरति नामक आश्रव हेतु (आगेके नामोके साथ भी "नामक आश्रव हेतु" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) अप्कायहिंसा-अविरति (३) तेज (अग्नि) कायहिंसा-अविरति (४) वायु (पवन) कायहिंसा-अविरति (५) वनस्पति कायहिंसा-अविरति (६) त्रसकायहिंसा-अविरति (७) स्पर्शन-इन्द्रियविषय-अविरति (८) रस-नेन्द्रियविषय-अविरति (९) घ्राणेन्द्रियविषय-अविरति (१०) चक्षुरिन्द्रियविषय-अविरति (११) श्रोत्रेन्द्रियविषय-अविरति (१२) अनीन्द्रिय (मन) विषय-अविरति (१३) अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय (१४) अप्रत्याख्यानावरण मानकषाय (१५) अप्रत्याख्यानावरण मायाकषाय (१६) अप्रत्याख्यानावरण लोभकषाय (१७) प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय (१८) प्रत्याख्यानावरण मानकषाय (१९) प्रत्याख्यानावरण मायाकषाय (२०) प्रत्याख्यानावरण लोभकषाय (२१) संज्वलन क्रोधकषाय (२२) संज्वलन मानकषाय (२३) संज्वलन मायाकषाय (२४) संज्वलन लोभकषाय (२५) हास्य नोकषाय (२६) रति नोकषाय (२७) अरति नोकषाय (२८) शोक नोकषाय (२९) भय नोकषाय (३०) जुगुप्सा नोकषाय (३१) पुंवेद नोकषाय (३२) स्त्रीवेद नोकषाय (३३) नपुंसकवेद नोकषाय (३४) सत्य मनोयोग (३५) असत्य मनोयोग (३६) उभय मनोयोग (३७) अनुभयमनोयोग (३८) सत्य वचनयोग (३९) असत्य वचनयोग (४०) उभय वचनयोग (४१) अनुभयवचनयोग (४२) औदारिक काययोग (४३) वैक्रियक काययोग।

इन तेतालीस आश्रव द्वारोको संक्षेपमें कहना चाहें तो इस प्रकार

कहना होगा — (१-६) षट् काय-हिसा-अविरति (७-१२) छह इन्द्रिय-विषय-अविरति (१३-२४) पहिली चार छोड़कर बारह कषाय (२५-३३) नव नोकषाय (३४-४३) दस योग, ये कुल तेतालीस कर्मोंके आनेके रास्ते हैं जिनसे कर्म आकर मिश्र गुणस्थान वर्ती जीवको बंधनसे युक्त करते है।

(१ से ६ तक विरतिका अर्थ है उदासीन होना या छोड़ना। जब प्राणी विरतिसे रति कर अपने जीवनको गतिमान बनाता तो वह व्रती कहलाता है। इसके विपरीत यदि किसी काम या विषयसे विमुख न होकर और ज्यादा दिलचस्पी लेता है तो उसकी वह दशा अविरति कहलाती है। परिणाम यह होता है हिसादिक पापकर्मोंके करनेमे वह नहीं हिचकिचाता और आत्माके लिये अहितकारक कर्म परमाणुओं का संबध होने लगता। छह प्रकारके जीवो (पांच प्रकारके स्थावर काय और त्रस काय) की हिसाका त्याग न होनेसे तत् तत् नामकी ये छह-हिसा-अविरतिया होती है जिनसे प्राणी अन्धा हो अहितकी ओर अग्रसर होता है।

(७ से १२ तक) ये छह अविरतिया इन्द्रिय विषयोमे तन्मयता रखनेसे होती है। प्राणीके सम्यक्त्व परिणामोमे स्थिरता न रहनेसे वह वैषयिक सुखाभासोसे सन्निकृष्ट हो उनकी ओर दौडता है और अविरति रूप वृत्तिसे कर्म बंधनमे और दृढ़ता लाता रहता है।

(१३ से २४) इनमे चार अप्रत्याख्यानावरणी, चार प्रत्याख्यानावरणी और चार सज्वलन सबधी कषाय सम्मिलित हैं। चूंकि सत् सम्यक्त्व ही अभी तक नही हो पाया है अत देशसंयम और सकलसयमकी बात सोचना ही व्यर्थ है। अत. यह प्राणी कषायोसे प्राणोको कषता रहता है, प्राणियोमे कलुपता और संक्लेषता रखता है तथा अशुभ कर्मोंका आश्रव कर अपने भारको और ज्यादा बोझीला बनाता रहता है। ये कषाय भी कर्माश्रव द्वार है।

(२५ से ३३) इनमें नव नो कषायोको सम्मिलित किया गया है।

ये वस्तुत: कषायोंकी पिछलग्गू या लगेठा जैसी हैं। कषायोंके रहते हुए ही ये कुछ अपना करिश्मा दिखा पाती है, वैसे दुःख पैदा करनेकी सामर्थ्य इनकी थोड़ी है। मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव इन नोकषायोंके जरिये भी कर्मोंको अपने पास बुलाता है और शृंखलाओंमे अपने आपको जकड़ता जाता है।

(३४ से ४३) इन दस आश्रव.द्वारोंमे चार मनोयोग संबंधी चार वचन योग संबंधी और दो काय योग संबंधी भेदोंको सम्मिलित किया गया है। कर्मोंका आस्रवण कर उनमें बंधत्व पैदा करने वाली कोई चीज है तो वह है योग और कषाय। योगोंकी प्रवृत्ति जितनी अशुभ, अशुभतर या अशुभतम होगी उतने ही निकृष्ट दर्जेके कर्मपरमाणु संयोगको प्राप्त होकर बंधनको प्राप्त होते रहेंगे। तो इस प्रकार योग भी कर्माश्रवके कारणोंमे गृहीत हुए है। मिश्रगुणस्थानमे दस ही योग संभवित है। औदारिक मिश्रकाययोग वैक्रयिक मिश्र काय योग और कार्माण काययोग तो इस गुणस्थानमे हो नहीं सकते क्योंकि ये मरण दशामे होते हैं। आहारक काय योग और आहारक मिश्र काययोग ये छटवें गुणस्थान वर्ती किसी विरले ही ऋद्धिप्राप्त मुनिके संभवित हो सकते हैं। इसलिये यहाँ इन काययोग संबंधी पांच भेदोंका ग्रहण नहीं किया गया है। अवशिष्ट योग भेद कर्माश्रवके कारणीभूत हैं।

सूत्र—ॐ उवसग्गहर पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहरविसणिण्णासिणं मगल कल्लाण आवासं ॐ ह्री नमः स्वाहा इति राज्य मान्यता निमित्तत्रिचत्वारिंशदक्षरमंत्रः ॥३॥

अर्थः—यह मंत्र तेतालीस अक्षरों वाला है। मंत्रका कलेवर यद्यपि छोटा रहता है किन्तु उसका असर या प्रभाव बहुत ज्यादा हुआ करता है। इस मंत्रके जपनसे प्राणीको राज्यमे सन्मान मिलता है। उसकी प्रतिष्ठामे वृद्धि होती है। साथमे लोक भी उसे गौरवकी दृष्टिसे देखता हुआ आदर प्रदान करता है। मंत्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकार लिखे जायेंगे:—

ॐ उ व स ग्ग ह रं पा सं व दा मि क म्म घ ण मु क्कं वि स ह र वि स णिर् णा सि णं मं ग ल क ल्ला ण आ वा सं ॐ ह्रीं न मः स्वा हा ।

साधारणतया जो सामायिक के समय मंत्र जपन किया जाता है उसकी अपेक्षा किसी निमित्त विशेषको लेकर किये जाने वाले मंत्र जपनमें विशेष प्रकारकी शुद्धि, वस्त्र, विधिविधान आदि करना पडते हैं, जप कर्ताको चाहिये कि जप करनेके पूर्व उन तमाम बातोंका परिज्ञान मन्त्रशास्त्रके ज्ञाता-जनोंसे प्राप्त करले । यदि ऐसा न करके दूसरा ही मार्ग अपनाया गया तो हित होनेकी संभावनाके बजाय अहित होनेकी आशंका बनी रहती है ।

❀ चवालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—ज्ञानप्रतिषेधसत्कारोपघातदानलाभभोगोपभोगवीर्यस्नानानुलेपनगन्धमाल्याच्छादन विभूषणशयनासनभक्ष्यभोज्यलेह्यपेयपरिभोग विघ्नकरणविभवसमृद्धिविस्मयद्रव्यापरित्यागद्रव्यासंप्रयोगसमर्थनप्रमादावर्णवाददेवतानिवेद्यानिवेद्यग्रहण निरवद्योपकरणपरित्यागपरवीर्यापहरणधर्मव्यवच्छेदकुशलाचरणतपस्विगुरुचैत्यपूजाव्याघातप्रव्रजितकृपणदीनानाथवस्तुपात्रप्रतिश्रयप्रतिषेधक्रियापरनिरोधबंधनगुह्याङ्गच्छेदनकर्णनासिकोष्टकर्तनप्राणिवधजातीया अन्तरायाश्रवहेतवः ॥१॥

अर्थः—अन्तराय कर्म, आठ कर्मोंमे से एक है । इसके उदय रहनेपर प्राणीको इष्ट वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो पाती है । इस अंतराय कर्मका आश्रव जिन कारणोंसे होता है उनको ऊपर लिखे हुए सूत्रमें सूत्रित किया गया है । कारणोंकी संख्या चवालीस है । इन्हीं कारणोंको द्वार या दरवाजा भी कहते हैं कारण इसका यही है कि जैसे यहां वहां घूमने वाला व्यक्ति दरवाजेमे से प्रविष्ट होता हुआ मकानमे आता है उसी प्रकार लोकाकाशमे विहार करने वाले पुद्गल परमाणु कर्म रूप परिणत होते हुए नीचे लिखे नाम वाले दरवाजोंमे से घुस कर आत्म मंदिरमे जा अपना अड्डा जमा लेते हैं । मंदिर धूलके कारण गंदा हो

जाता है और रागद्वेषादि रूप कीटाणु (Germs) वहां पैदा होकर भवभ्रमण नामक भयंकर व्याधिको पैदा कर देते है। कारणो या द्वारोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं:—

(१) ज्ञान प्रतिषेध नामक अन्तरायाश्रव हेतु (२) सत्कारोपघात (इसमें और आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक अन्तरायाश्रव हेतु" पद जोड़ते चले जाना चाहिये) (३) दानविघ्नकरण (४) लाभविघ्नकरण (५) भोगविघ्नकरण (६) उपभोगविघ्नकरण (७) वीर्यविघ्नकरण (८) स्नानविघ्नकरण (९) अनुलेपनविघ्नकरण (१०) गंधाच्छादन विघ्नकरण (११) माल्याच्छादन विघ्नकरण (१२) विभूषण विघ्नकरण (१३) शयन विघ्नकरण (१४) आसन विघ्नकरण (१५) भक्ष्योपभोग विघ्नकरण (१६) भोज्यापभोग विघ्नकरण (१७) लेह्योपभोग विघ्नकरण (१८) पेयोपभोग विघ्नकरण (१९) विभव समृद्धि विस्मयकरण (२०) द्रव्य अपरित्याग (२१) द्रव्य असम्प्रयोग (२२) द्रव्य अपरित्याग और द्रव्य असंप्रयोगका समर्थन (२३) प्रमाद (२४) अवर्णवाद (२५) देवता निवेद्य ग्रहण (२६) देवता अनिवेद्य ग्रहण (२७) निरवद्य-उपकरण-परित्याग (२८) पर वीर्य अपहरण (२९) धर्मव्यवच्छेद (३०) कुशलाकरण व्य घात (३१) तपस्वि पूजा व्याघात (३२) गुरुपूजा व्याघात (३३) चैत्यपूजा व्याघात (३४) प्रव्रजित वस्तुपात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध क्रिया (३५) कृपण वस्तु पात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध क्रिया (३६) दीन वस्तु पात्र प्रतिश्रयादि प्रतिपेध क्रिया (३७) अनाथ वस्तु पात्र प्रतिश्रयादि प्रतिषेध क्रिया (३८) अपर निरोध (३९) अपर बंधन (४०) गुह्यांगछेदन (४१) कर्ण कर्तन (४२) नासिका कर्तन (४३) औष्ठ कर्तन (४४) प्राणिवध और एतज्जातीयअन्य अन्तरायाश्रव हेतु।

(१) ज्ञान प्रतिषेधन नामक हेतुः—किसी व्यक्तिको ज्ञानकी प्राप्ति हो रही हो तो उन साधनों (पुस्तक, शिक्षक, शाला आदि) में अड़ंगे डाल देना। ज्ञान दान देने वाले शिक्षकको भड़का कर उसे शिक्षा देनेसे मना कर देना आदि ऐसी ही बाते ज्ञान प्रतिषेधनके अंतर्गत आती है।

(२) सत्कारोपघात नामक हेतुः—किसीको किसी तरहका सन्मान,

गौरव या इज्जत प्राप्त हो रही हो तो उसमे जबर्दस्तीके बखेड़े करके बाधा डालना, उस सत्कार क्रियाको न होने देना सत्कारोपघात नामक हेतु है।

(३) दान विघ्नकरण नामक हेतु—जिससे सामाजिक, शैक्षिक (शिक्षा संबंधी) दैशिक या राष्ट्रीय हित होनेकी संभावना है ऐसा कोई दान-चाहे वह छोटा या बड़ा हो-दे रहा हो या किसीको प्राप्त हो रहा हो तो उसमे बाधाओंके कांटे खड़े कर देना। उस सत्कृत्यको नहीं होने देना दानान्तराय है जो कि अंतराय कर्म संबंधी पुद्गलपरमाणुओंको खींचनेमे कारण होता है।

(४) लाभ विघ्नकरण हेतु—किसीको किसी हितकारी वस्तुका प्राप्त होना लाभ कहलाता है। उस लाभके होनेमे बाधा डालना लाभ विघ्न करण कहलाता है।

(५) भोग विघ्नकरण नामक हेतुः—जिस वस्तुका एक ही बार उपयोग किया जा सके ऐसी भोग्य वस्तुको भोग कहते हैं। उनमे बाधा डालना, भोग विघ्न करण कहलाता है।

(६) उपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—जिसको बार बार उपयोग मे लाया जा सके ऐसी वस्तुको उपभोग कहते हैं उपभोगोकी प्राप्तिमे अड़चनें डालना, उनकी प्राप्ति न होने देना उपभोग विघ्नकरण कहलाता है।

(७) वीर्य विघ्नकरण नामक हेतुः—वीर्यका अर्थ है बल शक्ति, सामर्थ्य। इसकी प्राप्तिमे विघ्न डाल देना जहाँ व्यायाम करते हों उस स्थानको खराब कर देना, व्यायामके साधनोको तोड़ देना आदि, वीर्य-विघ्नकरणके अंतर्गतकी जाने वाली क्रियायें हैं।

(८) स्नानोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—शरीर शुद्धि ताप शमनादिके निमित्तसे किये जाने वाले स्नानंका साधनोमे बाधायें लाकर खड़ी कर देना स्नान विघ्नकरण कहलाता है।

(९) अनुलेपन विघ्नकरण नामक हेतुः—अनुलेपनका अर्थ है तैलादिका मर्दन, उबटन आदि कराना। इसअनुलेपनकी क्रियामें बाधा

डालना अनुलेपन विघ्नकरण कहलाता है। इससे प्राणीको अगले भवमें अनुलेपादिकी प्राप्तिमे बाधा पड़ती है। यह भी अन्तरायके आश्रयका कारण है।

(१०) गंधाच्छादनोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—गंधके द्वारा सुगंधित चंदन केशरादिद्रव्योंके प्रयोगको ग्रहण किया जाता है। ऐसे गंध धारणमे उसके सेवनादिकमे बाधा डालना अंतरायके आश्रवका कारण है।

(११) माल्याच्छादनोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—मालाके द्वारा माला और ऐसी ही अन्य कोमल वस्तुओंका ग्रहण होता है। मालादिकके उपभोगमे अन्तराय डालना, उसकी प्राप्ति न होने देना आदि क्रियायें इसके अंतर्गत आती है। इससे भी अंतराय कर्मका आश्रव होता है।

(१२) विभूषणोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—जिससे शरीरको सजाया जाता है, उसे सुन्दर बनानेकी चेष्टाकी जाती है ऐसे वस्त्रवेश-भूषादिके धारण करनेमे, उनके उपभोगमे बाधा डालना भी अंतरायके आश्रवका हेतु है।

(१३) शयनोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—मानसिक और शारीरिक श्रमके उपशमन हेतु, तज्जन्य क्लान्तिको निवारण करनेके लिये प्राणी सोता है, उस शयनमे अड़चन डालना, हो हल्ला आदि करके सोने न देना शयन विघ्नकरण कहलाता है। अंतरायके आश्रव हेतुओंमे यह भी है।

(१४) आसनोपभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—आसनका अर्थ है बैठना, बैठनेके स्थान परसे आसनको हटा लेना, उसमें कांटे आदि लगा विघ्न पैदा करना आसनोपभोग विघ्नकरण कहलाता है।

(१५) भक्ष्यपरिभोग विघ्नकरण नामक हेतुः—रोटी दाल चावल आदि चबाने योग्य तथा उदर पूर्तिके काममें आने वाले जो पदार्थ हैं उन्हें भक्ष्य कहते हैं। भक्ष्योंके सेवन करनेमे बाधाये उपस्थित कर देना भक्ष्य विघ्नकरण नामक हेतु है।

(१६) भोज्यपरिभोग विघ्नकरण नामक हेतु—मात्र मुंहके स्वाद आदि सुधारनेकी दृष्टिसे ताम्बूल सुपारी, इलायची आदि द्रव्योंको खाया जाता है उन्हे भोज्य कहते हैं। उनकी प्राप्तिमे विघ्न पैदा करना अंतरायके आश्रवका कारण है।

(१७) लेह्यपरिभोग विघ्नकरण नामक हेतु—जो पदार्थ चाटकर सेवन करने योग्य होते है उन्हे लेह्य कहते हैं जैसे रबड़ी, चासनी आदि ऐसे लेह्य पदार्थों के सेवनमे बाधा डालना लेह्यपरिभोग विघ्नकरण कहलाता है।

(१८) पेयपरिभोग विघ्नकरण नामक हेतु—दूध, शर्बत, पानी आदि जैसे पदार्थ जो पीने योग्य हुआ करते हैं उन्हे पेय कहते हैं। पेय पदार्थों के सेवनमे अड़चन खड़ी कर देना पेयपरिभोग विघ्नकरण कहलाता है।

(१६) विभव समृद्धिविस्मय नामक हेतु—विभवका अर्थ है ठाठ बाठ, ऐश्वर्य आदि। दूसरे किसी व्यक्तिकी यदि विभव वृद्धि हुई है तो उसे देखकर आश्चर्य करना और ऐसे प्रयत्न करनेकी भावना होना जिससे उसका विभव नाश हो जाय। यह भी आश्रम हेतु है।

(२०) द्रव्य-अपरित्याग नामक हेतुः—अपने पासमें पाई जाने वाली धन सम्पत्तिका सत्यकर्ममे उपयोग नहीं करना, लोभ वश उसका परित्याग नहीं करना द्रव्य अपरित्याग नामक हेतु है।

(२१) द्रव्य-असंप्रयोग नामक हेतुः—द्रव्यका दानादि कार्योंमे प्रयोग नहीं करना, कोई दूसरा दे रहा हो तो उसमे बाधा डाल देना द्रव्य असंप्रयोग कहलाता है, इससे अंतराय कर्मोंका आस्रवण होता है।

(२२) समर्थन नामक हेतुः—कोई दूसरा व्यक्ति दान नहीं दे रहा हो, उसीकी बातका समर्थन करना और दान नहीं देनेके लिये प्रेरणा करना समर्थन कहलाता है।

(२३) प्रमाद नामक हेतुः—दानादि कार्योंमें सोत्साह भाग लेना चाहिये किन्तु ऐसा न करते हुए उसमे आलस्य शैथिल्यादि रूप प्रमाद

बतलाना दूसरेके उत्साहमे भी ढिलाई पैदा कर देना प्रमाद नामक हेतु है।

(२४) अवर्णवाद नामक हेतुः—किसी व्यक्तिमे कोई दूषण बिल्कुल नही है, फिर भी वे सिर पैरकी बाते खड़ी कर झूंठी बदनामी करना और उसे नीचे दिखानेकी कोशिश करना अवर्णवाद नामक आश्रव हेतु है।

(२५) देवता निवेद्य ग्रहण नामक हेतुः—निवेद्य वस्तुतः उस वस्तु जात (समूह) का नाम है जो देवताको चढ़ानेके लिये होती हैं जैसे चावल, खोपड़ा, बादाम, किशमिश, लोग आदि। इन वस्तुओंको देवताको न चढ़ाते हुए स्वयं हड़प कर जाना निवेद्य ग्रहण कहलाता है। इससे अंतराय कर्मका आश्रव होता है।

(२६) देवता-अनिवेद्य ग्रहण नामक हेतुः—जो वस्तु देवताके लिये तो हो पर उसे चढ़ाई न जाती हो ऐसे छत्र चमर भामंडल आदि उपकरणोंको अनिवेद्य कहते हैं। ऐसे अनिवेद्य द्रव्यका स्वयं उपयोग करने लग जाना, उसे वेच बांचकर अपने काममे ले लेना अनिवेद्य ग्रहण कहलाता है।

(२७) निरवद्य उपकरण परित्याग नामक हेतुः—बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे कोई शास्त्रोक्त विधिके अनुसार बना हुआ उपकरण प्रदान करनेके लिये लाया हो फिर भी उसको स्वीकार न करके वापिस कर देना उसे लेना नहीं उसका परित्याग कर देना निरवद्य उपकरण परित्याग कहलाता है। इससे दूसरे व्यक्तिकी धार्मिक भावनाओमे, श्रद्धामें, उत्साहादिमे विघ्न डाला गया है अतः अंतरायके आश्रव हेतुओमे इसे सम्मिलित किया गया है।

(२८) परवीर्योपहरण नामक हेतुः—दूसरे व्यक्तिकी शक्तिका किन्हीं उपायो या क्रियाओसे अपहरण कर लेना, उसके शक्ति संचयन में बाधा डालना परवीर्योपहरण कहलाता है।

(२९) धर्मव्यवच्छेदन नामक हेतुः—प्राणीके हित कारक कार्यों का करना धर्म है उसमे विघ्न पैदा कर देना अर्थात् कोई धर्म कार्य

होता हो तो उसमें बाधा या अड़चन पैदा कर देना धर्म व्यवच्छेदन कहलाता है।

(३०) कुशलाचरण व्याघात नामक हेतु—कोई निर्दोष या श्रेष्ठ आचरण कर रहा हो, उसके आचरण पालनमे कठिनाइयोंके कंटक पैदा कर देना कुशलाचरण व्याघात कहलाता है जो कि अश्रव हेतु है।

(३१) तपस्विपूजाव्याघात नामक हेतु—जो अनशनादि छह बाह्य तपो और प्रायश्चित्तादि छह अंतरंग तपोको पालते हैं उन्हें तपस्वी कहते है। तपस्वियोंकी पूजा सन्मानादिकके आयोजनोमे अडंगा खड़ा कर देना तपस्वी-पूजा व्याघात कहलाता है।

(३२) गुरु पूजा व्याघात नामक हेतु—छत्तीस गुणोंसे युक्त पूज्य जो आचार्यादिक गुरु जन हैं उनके प्रति किये जाने वाले सन्मान आदर संबधी आयोजनोमे विघ्न डाल देना, उन आयोजनोमे सम्पन्न न होने देना आदि क्रियाएं इसके अतर्गत आती हैं। इनसे अंतराय कर्मका आश्रव होता है।

(३३) चैत्यपूजा व्याघात नामक हेतु—चैत्यका अर्थ है पूजनीय प्रतिमाये। प्रतिमाओंकी अर्चना, वंदना, पूजा आदि करनेमे अड़ंगो या अड़चनोको उपस्थित कर देना चैत्यपूजा व्याघात कहलाता है।

(३४) प्रव्रजित-वस्तु पात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध नामक हेतु—जिसने साधु वेषधारणके लिये दीक्षा धारणकी है ऐसे धर्मात्मा व्यक्तिके लिये संयमके साधनीभूत कमंडलु आदि उपकरणो, शास्त्रादिक वस्तुओ, तथा जहां ठहर सकें ऐसी वसतिका निर्माण आदिके लिये मना कर देना यदि कोई दूसरा व्यक्ति कर रहा हो तो उसे भी बिचकादेना, उससे विमुख कर देना आदि क्रियाये इसमे निर्भित होती हैं। आश्रव हेतुमें यह भी गर्भित है।

(३५) कृपण- वस्तुपात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध नामक हेतु:—कृपणका अर्थ है लुब्धक या कंजूस। कंजूसको किसी वस्तु, पात्र या मकानादि की प्राप्ति हो रही हो तो उसके लिये विघ्न खड़ा कर मना कर देना कृपण प्रतिषेध क्रिया कहलाती है।

(३६) दीन-वस्तु पात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध नामक हेतुः—दीनका अर्थ गरीब है। यह गरीबी पैसे संबंधी हो सकती है और आङ्गोपाङ्ग संबंधी भी। अर्थात् जो लूले, लंगड़े, गरीब व्यक्ति हैं उनके वस्तु, वर्तन टापो आदिके लिये मना कर देना दीन प्रतिपध क्रिया कहलाती है।

(३७) अनाथ-वस्तु पात्र प्रतिश्रय प्रतिषेध क्रिया नामक हेतुः—जिनके माता पिता आदि कोई पालक या संरक्षक नहीं हो ऐसे असमर्थ बालक या बालिकाको अनाथ कहते हैं। उस अनाथके लिये आवश्यक पदार्थों, बर्तनों, रहने आदिके स्थानके मनाकर देना अनाथ प्रतिषेध क्रिया नामक हेतु है।

(३८) अपर निरोधक नामक हेतुः—दूसरे व्यक्तिको रोक लेना, उसके प्रयोजनको सिद्ध नहीं होने देना आदि क्रियाये इसमे शामिल हैं। अपर निरोध वस्तुतः एक नजर बंद-कैदके समान हैं। इसमे स्वतन्त्रताका अपहरण अवश्य किया जाता है किन्तु बंधन बध नहीं।

(३९) अपरबंधन नामक हेतुः—दूसरेको बंधनसे बांध कर रोके रखना जिससे इसे इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न हो सके। इसमे हाथ पांवमें हथकड़ियों बेड़ियों आदिका डालना, रस्सी आदिसे बांधा जाना आदि जेलखानेमें बन्द कैदी जैसी दशा दूसरे व्यक्तिकी होती है। दूसरे व्यक्तिकी स्वतन्त्रतामे इससे बाधा आती है।

(०४) गुह्यांगछेदन नामक हेतुः—प्राणी जिससे काम सेवनादि क्रियाएं करते हैं ऐसे गुह्य (छिपाने योग्य) अंगोंके छेदन भेदन आदि क्रियाओंके करनेसे अंतराय कर्मका आश्रव होता है। दूसरे प्राणीके कामसेवनादिक क्रियाओंमे इससे बाधा आती हैं, और तीव्र वेदनाको भी अनुभवन करना पड़ता है।

(४१) कर्ण कर्तन नामक हेतुः—कानको काट लेनेकी क्रियाका नाम कर्ण कर्तन है। इससे दूसरे प्राणीकी श्रवण शक्तिका ह्रास होता है।

(४२) नासिका कर्तन नामक हेतुः—शरीरकी सुन्दरताकी बहुत कुछ प्रसाधिका नासिका है। इस अंगका काट डालना अतरायके लिये

कारण होता है। दूसरा प्राणी असुन्दर होनेके साथ ही साथ अपनी घ्राण शक्तिको भी खो देता है।

(४३) ओष्ट कर्तन नामक हेतु.—ओष्ठ मुखकी सुन्दरताके साथ ही साथ वर्णोच्चारणमे भी सहायक सिद्ध हुआ करता है ऐसे अंगको काट डालना अंतराय कर्मके आश्रवका कारण होना है।

(४४) प्राणिवध नामक हेतु—प्राणीके आङ्गोपाङ्ग कर्तनके साथ ही साथ यदि कषायका प्रकोप बढ़ जाय और उसे प्राणोंसे वियुक्त कर दिया जाय तो ऐसी क्रिया भी अंतराय कर्मके आश्रवका कारण होनी उपरिलिखित जो क्रियाएं बतलाई हैं उनके अतिरिक्त किन्तु इन्हींसे मिलती जुलती जो चेष्टायें हैं, क्रूरता लिये हुए कृत्य हैं उनसे भी अंतराय कर्मका आश्रव होता है। कुचेष्टाएं करने वाला प्राणी दूसरोंको बाधा पहुचानेके साथ ही साथ अपने लिये भी गड्ढा खोद लेता है।

मत्र—"ॐ नमो श्रा श्रीं श्रूं श्रः जलदेविकमले पद्महृदनिवासिनि पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धि देहि मनोवाञ्छितं कुरु कुरु स्वाहा" इतिसर्पविष-दूरीकरणनिमित्त श्चतुश्चत्वारिंशदक्षरमंत्रः ॥२॥

अर्थ—चवालीस अक्षरों वाला यह मत्र है। इस मन्त्रका जाप सर्पके विष को दूर करनेमे सहायक हुआ करता है। मंत्रके अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं—

ॐ न मो श्रां श्रीं श्रूं श्र ज ल दे वि क म ले प द्म ह्र द नि वा सि नि प द्मो प रि सं स्थि ते सि द्धि दे हि म नो वां ञ्छि तं कु रु कु रु स्वा हा।

मत्रः—"ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय लंकाधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिन्तित कुरु कुरु स्वाहा" इतिसमुद्रभयनिवारण-निमित्तः ॥३॥

अर्थ—चवालीस अक्षर वाले मंत्रोंमे से यह भी एक है। इस मंत्रके जपनसे समुद्र सम्बन्धी भयको दूर हटानेमे सहायता प्राप्त होती है।

ॐ न मो रा व णा य वि भी ष णा य कुं भ क र णा य लं का धि प त ये म हा ब ल प रा क्र मा य म न श् चि ति तं कु रु कु रु स्वा हा ।

❀ पेंतालीसवां अध्याय ❀

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्सेजोवायुवनस्पतिकाय द्वित्रिचतुरिन्द्रियविकल सकलेन्द्रियपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता जीवसमासाः ॥१॥

अर्थः—जीवोंकी राशिको विभाग करके विवेचित करनेके कई तरीके या ढंग है। इस सूत्रमें भी एक ढंग बतलाया गया है कि जीव राशिको पेंतालीस विभागोमे विभक्त कर रक्खा जा सकता है। इन विभागोका नाम ही है जीव समास। नाम अलग अलग इस प्रकार हैः-

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी निवृत्य पर्याप्त (३) बादर पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (५) सूक्ष्म पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त (६) सूक्ष्म पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त (७) बादर अप् (जल) काय पर्याप्त (८) बादर अप् निवृत्यपर्याप्त (९) बादर लब्ध्यपर्याप्त (१०) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (११) सूक्ष्म अप् निवृत्य पर्याप्त (१२) सूक्ष्म अप् लब्ध्यपर्याप्त (१३) बादर तेज (अग्नि) काय पर्याप्त (१४) बादर तेज निवृत्य पर्याप्त (१५) बादर तेज लब्ध्यपर्याप्त (१६) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१७) सूक्ष्म तेज निवृत्यपर्याप्त (१८) सूक्ष्म तेज लब्ध्यपर्याप्त (१९) बादर वायु (हवा) काय पर्याप्त (२०) बादर वायु निवृत्यपर्याप्त (२१) बादर वायु लब्ध्यपर्याप्त (२२) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (२३) सूक्ष्म वायु निवृत्यपर्याप्त (२४) सूक्ष्म वायु लब्ध्यपर्याप्त (२५) बादर वनस्पति (वृक्षादिक) काय पर्याप्त (२६) बादर वनस्पतिकाय निवृत्यपर्याप्त (२७) बादर वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (२८) सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त (२९) सूक्ष्म वनस्पतिकाय निवृत्यपर्याप्त (३०) सूक्ष्म वनस्पतिकाय लब्ध्यपर्याप्त (३१) द्वीन्द्रिय पर्याप्त (३२) द्वीन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३३) द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (३४) त्रीन्द्रिय पर्याप्त (३५) त्रीन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३६) त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (३७) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त (३८) चतुरिन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त (३९) चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त (४०) विक-